ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ 20 06 1963 महात्मा ध्रुव की ध्रुव मण्डल की यात्रा

जीते रहो, देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज पुनः से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, जो आनन्द का स्रोत है। जब ऋषि मुनि योगस्थित होते हैं, तो हृदय में अगम्यवत हो जाते हैं। महान आन्तरिक प्रवृत्तियों को अपने में धारण करने वाले बन जाते हैं।

ओ३म् रूपी धागा

मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहते है, इनका वाक्य किसी काल मे मुझे प्रिय और सुंदर भी लगा करता है, कल हम कुछ विज्ञान की चर्चा कर रहे थे। हमारे यहाँ ऐसा कहा गया है कि महर्षि पिप्लाद से ऋषियों ने यह प्रश्न किया, कि यह ओ३म् क्या है? क्योंकि वेद के मन्त्र का प्रारम्भ करते है तो उस काल में भी ओ३म् का उच्चारण किया जाता है। कोई भी कार्य हो यह ओ३म् है क्या ? महर्षि पिप्लाद जी कहते हैं, कि यह जो ओ३म् रूपी धागा है, जिसको हम ओ३म् कहते हैं, कण कण में व्याप्त हो रहा है उसको तुम जानना चाहते हो? ऋषियों ने कहा कि वास्तव में हम इसको जानना चाहते हैं।

ऋषि पिप्लाद जी बोले, हे ऋषिवरयह जो ओ३म् है !, इसकी तीन प्रकार की प्रतिभा होती है। मानो तीन प्रकार से इसका चिन्तन होता है। एक वह मानव होता है जो कुछ परमात्मा का ओ३म् चिन्तन करता है। वह एक मात्रा का चिन्तन करता है, मानो वह मानवीयता में रमण करने लगता है। दूसरी वह मात्रा होती है जो मानव देववत होने के लिए तत्पर होने लगता है और तीसरी मात्रा वाला प्राणी उस मानव को कहा जाता है, जो प्रकृति के कण कण में, अपने में, दूसरे में, सभी में, उस महान ओ३म् की प्रतिभा को दृष्टिपात करने लगता है। वह मानव अपनी चेतना में, चेतना को प्रतिष्ठित कर लेता है। तो वह जो ओ३म् रूपी धागा है उसको वास्तव में हम मनकों में पिरोने वाला बनें।

जो मानव कुछ अपनाता है, वह लोक में प्रतिष्ठित होता है। मानव उसकी प्रतिष्ठा करते हैं, कि यह मानव बड़ा ही प्रभु का चिन्तन करने वाला है। उसके पश्चात जो मानव अपने मन में यह दृष्टिपात करने लगता है, कि समागच्छम रुद्राणि बूकचणाम रवेकृताणो रुद्रो ऐसा भी कहा गया है, जो मानव देवता बनने की प्रतिष्ठा करता है, वह परमात्मा में ही अपने को दृष्टिपात करने लगता है। वह देवलोक में जाने के लिए तत्पर हो जाता हैं। देवताओं में उस मानव की गणना हो जाती है। यदि वह कण कण में प्रभु को दृष्टिपात करने लगता है, और अपनेपन में जितना 'मैं' पन है उसे वह उस अग्नि में ओत प्रोत करा देता है। तो वह मानव प्रभु की जो तृतीय मात्रा होती, सर्वस्व मात्राओंका ज्ञाता बन जाता है। तो हमे विचारना है कि हम ओ३म् का चिंतन करने वाला बनें। ओ३म् को ही अपना स्वामीवत् स्वीकार करते चले जाएं। जिससे हमारा जीवन उन्नत होता चला जाए। मानव का जीवन उस काल में उन्नत होता है जब अपने में और प्रभु में एक चेतना और द्वितीय चेतना का मिलान करने की क्षमता हो जाती है। वह जनता में जनार्दन को दृष्टिपात करने लगता है। जनता जनार्दन में नहीं, प्रकृति के एक कण में दृष्टिपात करने लगता है। आगे चल करके, वह मानव एक महान तपस्वी और उज्ज्वलवत को प्राप्त हो जाता है।

आज का हमारा जो वेद पाठ है, वह ओ३म् की विवेचना करता चला जा रहा था। हे प्रभुकोई प्राणी कितना ही रूढ़िवादी हो !, परन्तु ओ३म् शब्द का उच्चारण करना, उसके लिए अनिवार्य हो जाता है। वास्तव मे करता क्योंकि रसना का जो प्रतिबिंब है रसना की जो रचना है, वह ऐसे आधार पर रची गई है, कि ओ३म् का उच्चारण होना स्वाभाविक हो जाता है।

योग्य राजा

मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे कई काल में स्मरण कराया आज भी उनकी प्रेरणा चल रही है जैसा मैंने कल के वाक्यों में कहा था कि नरोतृत्तम नरसिंह नाम वृधे अश्वाति रुद्रो भागा अपृत्तम लोकाः मेरे प्यारेमहानन्द जी यह उच्चारण कर रहे हैं !, कि आपने

जो कल का वाक्य प्रकट कराया था, उसमें नरसिंह भगवान ने अवतार लेकर के हिरण्यकशपु को नष्ट किया था। परन्तु मैं कहा करता हूँ कि मानव का स्वरूप नरसिंह बन जाता है। जो मानव मानव होता है, नर होता हुआ, पुरुष होता हुआ मानो जिसकी हिंसक प्रवृत्ति बन जाती है, किसी अपराधी को नष्ट करने कि प्रवृति बन जाती है तो वह मानव नरसिंह रूप परिवर्तित हो जाता है। मानव में जब क्रोध की मात्रा का जन्म होता है, जो सत्यता से मन के आधार पर क्रोध होता है, उसी को हमारे यहाँ नरसिंह रूप में परणित किया जाता है। जहाँ हम परमपिता परमात्मा को यह स्वीकार करते हैं, कि परमात्मा नरसिंह अवतार बन करके आ गया, यह भी वास्तव में सुन्दर है, और वह क्यों सुन्दर है? क्योंकि जनता में जनार्दन रमण करने वाला है। प्रभु रमणकरने वाला है जब सत्य मार्ग में चलने वाला समाज, उज्वल मार्ग को चल करके, राजा को चुना करता है, श्रेष्ठ पुरूष को जो प्रजा चुनती है, तो वह प्रजा नरसिंह अवतार का जन्म ले लेती है। मेरे प्यारेमहानन्द जी कई काल में यह कहा करते हैं !, कि जो साधारण प्रजा होती है, मूर्ख प्रजा होती है, अपठित प्रजा होती है, वह प्रजा जब राजा को चुनती है, तो वह राजा प्रजा को किसी भी काल में सुख को अनुभव नहीं करा सकता। क्योंकि उसका मूल कारण है देखो, जितना भी बुद्धिमान, यौगिक समाज होता है, पवित्र समाज होता है और वह अपने राजा को चुनता है, एक संगठन बना करके चुनता है, अपराधी को नष्ट करने की क्षमता हो जाती है, तो वह राष्ट्र पवित्र हो जाता है, प्रजा वहाँ सुखी होती है। राजा के राष्ट्र में मानव अजीर्ण नहीं हो पाता। उसकी प्रजा कर्तव्य का पालन करने के लिए तत्पर हो जाती है।

धर्म की मीमांसा

मैं वाक्य उच्चारण करता करता कहाँ चला गया, वाक्य प्रारम्भ हो रहा था, कि हम उस चैतन्य देव की उपासना करते चले जाएं, जहाँ मानव में एक सुगठित विचार होते हैं, अहिंसा परमोधर्मः विचार होते हैं। वहाँ उन विचारों में एक शक्ति होती है, ओज होता है, बल होता है। उसी बल के आधार पर राष्ट्र हो, समाज हो, किसी भी प्रकार का

समाज हो, धर्म हो, तो वह उन्नतिशील होता चला जाता है। जिस मानव के द्वारा सुगठित विचार नहीं होते, अहिंसा परमोधर्मः विचार नहीं होते, अपने में दूसरों की हिंसा करता रहता है, तो वह मानव, वह समाज, वह धर्म बिखर जाता है। जहाँ समाज और धर्म बिखर जाते हैं, वहाँ राष्ट्रीयता नहीं रह पाती। वहाँ धर्म को नष्ट भ्रष्ट कर दिया जाता है।

मैं तो यह कहा करता हूँ, कि धर्म किसी काल में भी नष्ट नहीं होता, क्योंकि धर्म एक ऐसी वस्तु है जिसको हम किसी भी काल में नष्ट नहीं कर पाते, परन्तु धर्म की मीमांसा को जानना हमारा कर्त्तव्य होता है। हम धर्म किसे कहते हैं? राष्ट्र का जो निर्माण होता है, राजा जो चुना जाता है, वह केवल धर्म की रक्षा करने के लिए चुना जाता है, और जहाँ धर्म का ह्रास किया जाता हो, जहाँ मानवता न हो, उसको राष्ट्र वाहक किसी भी काल में नहीं चुनना चाहिए। उसको राजा उच्चारण करना बुद्धिमानों के समाज में एक अपराध होता है। जहाँ धर्म और मर्यादा को नष्ट किया जाएं और मूर्खों के अनुकूल अपने विचारों को बनाया जाएं तो वह राष्ट्रवाद नहीं, वह एक हिंसावाद कहलाया गया है। हिंसा उस मानव के द्वारा होती है, जो मानव अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता। कर्त्तव्य क्या है? विचार यह कहता है कि कर्तव्य है क्या? जब मानव कोई कार्य करने के लिए चलता है, तो उसका जो आन्तरिक हृदय होता है, जो वह उच्चारण कर रहा है, उसी को कर्त्तव्यवाद कहा जाता है। हे मानव तेरे द्वारा ही तो कर्त्तव्यवाद रहता है। ! तेरा आनतरिक हृदय जिस वाक्य को उच्चारण कर रहा है, शुद्ध और अशुद्ध को विचार रहा है, कर्मठता को विचार रहा है, धर्म और अधर्म को विचारता है, हे मानव! वही हृदय तेरा शुद्ध, निर्मल और पवित्र हो करके, अहिंसा परमोधर्म और कर्त्तव्यवाद में परणित होता हुआ, तेरे राष्ट्र का सुन्दर निर्माणवेत्ता बन जाता है।

महात्मा ध्रुव

जहाँ राष्ट्र के द्वारा प्रमाद आ जाता है, वहाँ अराष्ट्रवाद छा जाता है। वह जो पाप और पुण्य को नहीं विचारता, उस राजा को सुकृत नष्ट हो जाता है। भक्त प्रहलाद की चर्चा

तो मैंने कल प्रकट की थी। मुझे महात्मा ध्रुव की चर्चा स्मरण आती रहती है, जिस ध्रुव ने अपने जीवन को माता के वाक्य के अनुसार प्रभु के आँगन में अर्पित कर दिया। जो मानव अपने जीवन को प्रभु को समर्पित कर देता है, वह मानव संसार में मानवीय समाज में पवित्रवत् को प्राप्त हो जाता है।

महात्मा ध्रुव के जो पिता थे, वह आलस्य और प्रमाद में परणित हो गए। जब वह केवल पांच ही वर्ष का बालक था, उस समय अपनी माता से कहा कि मैं पिता के दर्शन करने जा रहा हूँ। जब वह पिता के दर्शन करने पहुंचे, तो वह अपने द्वितीय बालक को, अपने आँगन में धारण कर रहे थे। बालक ध्रुव जब पिता के आँगन में जाने ही वाला था, तो उस समय उनकी सौतेली माता ने कहा अरे, अभागे बालक ध्रुव ! यदि तुझे राजा की गोद में पहुंचना था, तो तूने मेरे गर्भ से जन्म क्यों नहीं लिया? वह बालक इन वाक्यों को स्मरण करता हुआ, व्याकुल होता हुआ, अपनी माता के समीप जा पहुंचा और माता से व्याकुल हो करके बोला, कि मेरी द्वितीय माता ने मुझे यह कहा है, कि तूने मेरे गर्भ में जन्म क्यों नहीं लिया? जब तू राजा के आँगन में प्रविष्ट होने के लिए इच्छुक बना। माता मैं क्या करूं? माता बालक को सांत्वना देने लगा परन्तु बालक को शान्ति कहाँ आती । उस समय माता ने कहा हे बालक तूने ! यदि मेरे गर्भ से जन्म लिया है, तो तू वाक्य का स्मरण कर। पांच वर्ष के बालक के संस्कारों की उदबुद्धता हो गई, और कहा कि माता! आप उच्चारण करो, मैं वही कर पाऊंगा। उन्होंने कहा तो हे पुत्र तुम आज प्रभु का चिन्तन करो। प्रभु के मार्ग को ! अपना लो, क्योंकि यह तो केवल प्रजा के राजा हैं। आलस्य और प्रमाद के राजा हैं। हे बालक तू !महान उस प्रजा की गोद जा, जो संसार का अधिराज है। लोक लोकान्तरों का अधिराज है। मानो वह सूर्य का प्रकाश दे रहा है। करोड़ों वर्ष हो गए सूर्य को, इसी प्रकार सदैव अपने प्रकाश में रमण करता रहता है। चन्द्रमा अपनी क्रान्ति में रमण करता रहता है। वायु अपने वेग से भ्रमण कर रही है। अग्नि अपनी ज्योति से संसार को तपायमान कर रही है। पृथ्वी अपनी महान रजों के द्वारा, इस संसार को जीवन प्रदान करने वाली है। खाद्य और खनिज पदार्थों को उत्पन्न कर देती है। हे बालक तू उस !

महान देव की शरण में जा, जो संसार का पति है, जो संसार का कण कण का स्वामी कहलाया गया है तू उस राजा की शरण में चल।

बालक ने जब यह वाक्य श्रवण किया, तो बालक का जो जन्म जन्मान्तरों का संस्कार था, वह उद्बुद्ध हो गया। वह माता के चरणों को छुने लगा और कहा कि हे माता ! अब मुझे आज्ञा दो, मैं ब्रह्म के लिए जा रहा हूँ मै ब्रह्म की शरण में जाऊंगा। उस चेतना को जानूंगा, जिस चेतना से यह संसार चेतनित हो रहा है, जिससे राजा चेतनित है, मेरी प्यारी माता चेतनित है। मैं उस चेतना को जानूगा जिस चेतना से यह संसार चेतनित हो रहा है जिससे राजा चेतनित है मेरी प्यारी माता चेतनित है, यह जगत चेतनित है वह पाँच वर्ष का बालक माता के हृदय को प्रफ्फुलित करने वाला विचित्र बनाने वाला माता के चरणों को स्पर्श करते हुए यही कहा था माता मैं उस चेतना को जाने बिना, आपके दर्शन नहीं कर पाऊंगा। माता बड़ी हर्षित हो गई, और प्रसन्न होकर के कहा पुत्र तुम !जाओ, प्रभु की शरण में । वह जाने वाला ही था, कि इतने में महर्षि नारद के दर्शन हो गए। नारद ने बालक को आश्वासन दिया, हे बालकतुम कहाँ जा ! रहे हो? उन्होंने कहा कि हे प्रभु मैं !भयंकर वनो में जा रहा हूँ तपस्वी बनने के लिए, प्रभु का चिन्तन करने के लिए, क्योंकि जब तक मैं स्वयं निष्ठावान नहीं बनूंगा, तब तक मैं प्रभु को नहीं पा सकूंगा। प्रभु तो महान निष्ठावादी है, ऐसे ही स्वयं मुझे निष्ठावान बनना होगा। उसके पश्चात् मैं अपने प्रभु को पा सकूंगा। उसी बालक ने यह संकल्प धारण कर लिया। महर्षि नारद ने उन्हें नाना प्रकार के आश्वासन दिए और कहा कि अरे, ध्रुवतुम्हारे पिता ने तो तुम्हें ऐसा कहा है !, तुम तो राष्ट्र के स्वामी बनोगे। आधा राष्ट्र तुम्हारा है, क्योंकि राजा के दो ही पुत्र हैं। तुम कहाँ जा रहे हो? भंयकर वनो में, पर्वतों में तुम्हारा यह शरीर विदीर्ण हो जाएगा, यह सौंदर्य नहीं रहेगा। हे ध्रुव तू ! संसार के राष्ट्र को भोग और नाना प्रकार की पत्नियों को भोगने वाला बन। इससे तेरा जीवन उन्नत बनेगा, पितर लोकों को प्राप्त हो जाएगा।

बालक के हृदय में माता का वाक्य ऐसे स्थान पर गया जैसे प्रातः काल का सूर्य स्थिर होता है, प्रकाश में होता है। उसी समय बालक ने कहा हे ऋषिवर आप यह क्या !

वाक्य उच्चारण कर रहे हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि नारद मुनि तो तीनों लोकों का भ्रमण करने वाले हैं। नाना सौर मण्डलों में भ्रमण करने वाले हैं आप मुझे यह क्या प्रकट करने लगे हैं यह तो मिथ्या है। मेरे लिए न होने वाला शब्द है। मैं अपनी माता की आज्ञा का पालन करूंगा। संसार का वैभव मुझे नहीं चाहिए, वह मुझ से दूर हो गया है क्योंकि यह मानव को सुख के मार्ग पर नहीं ले जा सकता। अन्तरात्मा उस काल में पवित्र होता है जब अपने पिता को जान जाता है। जब तक आत्मा के पिता को नहीं जाना जाएगा। तब तक मैं यह कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। नाना पत्नियां आज मेरे समीप होनी चाहिए, राष्ट्र भोगना चाहिए, ऐसा आपने कहा है। यह कण कण मुझे जितना भी दृष्टिपात आ रहा है यह प्रभु का राज्य है जब मैं अपने अधिकार को अपना लूंगा, अपने प्यारे प्रभु ब्रह्म का पुत्र बन जाऊंगा उस समय ऐसे सुन्दर राष्ट्र में चला जाऊंगा, मेरे नाना जन्म भी होंगे उसके पश्चात् भी मैं उसके राष्ट्र से दूर हो ही नहीं सकूंगा।

मन की गति

जब यह वाक्य उस सुन्दर से बालक ने प्रकट किए, तो नारद ने उसे अपने हृदय का ग्राही बना लिया और यह कहा हे बालकतू तो वास्तव में पवित्र है !, महानता को लिए हुए है। आओ, तुम प्रभु का चिन्तन करो। देखो, गुरू मन्त्र भी प्राप्त हो गया। आज्ञा पाकर के भयंकर वनों में पहुंच गया। प्रभु का चिन्तन होने लगा। जब चिन्तन प्रारम्भ होने लगा तो देव ऋषि नारद उसी आश्रम में जा पहुंचे। वह ध्रुव को नाना उपदेश देते रहते थे। ब्रह्म का उपदेश लेते हुए एक समय ध्रुव ने कहा था कि प्रभु मैं यह जानना ! चाहता हूँ कि जैसेहम इस मण्डल में हैं, ऐसे ही और भी नाना मण्डल है परन्तु उसमें मानव किस प्रकार चला जाता है। उस समय कहा कि अरे, बालक क्या तुम यही ! जानना चाहते हो? क्या तुम्हें यह प्रतीत है कि तुम्हारे द्वारा जो मन है इस मन की कितनी गति है। यह मन अभी अभी यहाँ भ्रमण कर रहा है और एक क्षणभर नहीं लगता, जब यह मन चन्द्र मण्डल में चला जाता है। यही मन है, जो ध्रुव मण्डल की

परिक्रमा करने लगता है और सप्त ऋषि मण्डल में भ्रमण कर आता है। इसी प्रकार यदि तुम आज इसको जानना चाहते हो कि एक दूसरे मण्डल में किस प्रकार चले जाते हैं, तो मन के ऊपर तुम्हारा संयम होना चाहिए। जब तुम मन को अपना वाहन बना लोगे, तो इन नाना लोकों में भ्रमण करने के लिए तत्पर हो जाओगे।

अब विचार आता है, यह जो मन है जिसकी इतनी तीव्र गति है, इसकी वाहन कौन बनाता है? मानव बनाता है, आत्मा बनाता है। कौन बनाता है? पञ्चतन्मात्रा बनाती है। यह देखो, मानवीय प्रवृत्ति होती है। आज जिस स्थूलवत् में हम प्राप्त हो गए हैं इसमें स्वयं में होने वाला वही प्राणी कहलाता है, जो मन को स्थिर कर लेता है, और मन को कैसे स्थिर किया जाता है? यह जो मन है, इसकी चंचलता को जैसे देखो, बाहरीय इन्द्रियां हैं, इनका जो विषय है, यह मन में लीन हो जाता है और मन का जो विषय है, यह बुद्धि में लय हो जाता है और बुद्धि का जो विषय है यह चित्त में लय हो जाता है और चित्त का जो विषय है, वह अन्तरात्मा में लय हो जाता है। इस अन्तरात्मा को जानने से तुम एक दूसरे लोकों में भ्रमण करने वाले बन जाओगे।

जब यह यौगिक वाक्य प्रकट कराया, तो बालक ने कहा प्रभु अब मैं भौतिक विज्ञान ! को जानना चाहता हूँ। भौतिकवाद से मैं इन लोकों का कैसे भ्रमण कर पाऊंगा? उन्होंने कहा कि भौतिकवाद से आज तुम पृथ्वी वसुन्धरा के गर्भ में चले जाओ। वसुन्धरा के गर्भ में कैसे जाओगे? अपने मस्तिष्क से विचारते रहो कैसे विचारोगे? सबसे प्रथम तुम्हें यह विचारना है, कि मेरे मन की जो प्रवृत्तियां हैं, यह कहाँ जाती हैं? इनका स्वरूप क्या है? जब तुम इन स्वरूपों को प्रकृति के स्वरूप में परणित कर दोगे, और जो बाहरीय चंचल आभा बन गई है, संकीर्णवाद आ गया है, उसे प्रकृति के व्यापक गर्भ में परणित कर दो। व्यापक गर्भ क्या हैं? मानो परमाणुवाद है। जब तुम परमाणुवाद में इसी मनीराम को परणित कर दोगे। इसी मन में पञ्च तन्मात्राएँ होती हैं। पञ्च तन्मात्राएँ पांच ही प्रकार के परमाणु होते है। वास्तव में उन पांचों प्रकार का जो विभाजन किया जाता है तो सर्वस्व चौबीस प्रकार के परमाणु होते हैं, और एक एक परमाणु में से लगभग 99 परमाणुओं का निकास हो जाता है। उन परमाणुओं में से लगभग 000

इसी प्रकार अरबों खरबों परमाणु बन जाते हैं। जब हम श्वांस है तो घ्राण के द्वारा एक श्वांस के साथ में अरबों खरबों परमाणुओं का निकास हो जाता है। इतने परमाणु हम अपने में धारण कर लेते हैं। उन्हीं परमाणुओं के आधार पर हम विज्ञानीय क्षेत्र में परणित हो जाते हैं। आज हमें उन परमाणुओं को जानना है जो परमाणु हमारे मानव शरीर में ही बन रहे हैं और वह बाहरीय रूप को धारण कर लेते हैं। अन्तरिक्ष में तरंगे रमण कर रही हैं। हमारा जो शब्द है वह कितना व्यापक बन जाता है। उस शब्द की कितनी तीव्र गति बन जाती है। वह एक क्षण समय में अरबों खरबों योजन की दूरी तक चला जाता है। उसमें कितनी गति आ गई है, मानो उसके साथ में विद्युत प्राण रहता है। प्राण के साथ में मनीराम रहता है, क्योंकि शब्दों का जब भी विभाजन होगा, तो वह मनीराम के द्वारा होता है। जहाँ मन नहीं होगा, वहाँ शब्दों का विभाजन नहीं होगा, राष्ट्र का विभाजन नहीं होगा, विज्ञान का विभाजन नहीं होगा, एक दूसरे यन्त्र का निर्माण किसी काल में हो ही नहीं पाएगा। जब तक उसके साथ में मन नहीं होगा। राष्ट्रों के विभाजन हो जाते हैं, कारण क्या हैं? मन है, उसका कारण। मन ही है । मनुष्य के द्वारा जो घृणा उत्पन्न कर देता है। माता माता नहीं रहती, पिता पिता नहीं रहता, केवल एक स्वार्थवाद आ जाता है। यह भी एक मन ही है। मन ही गति के आधार पर, राष्ट्र के विभाजन हो जाते हैं, गृह विभाजन हो जाते हैं, मानव की प्रवृत्ति का विभाजन हो जाते हैं। इसी प्रकार मानव की मृत्यु हो जाती है, शरीर में नाना रूग्ण हो जाते हैं। मानसिक प्रवृत्ति जब अधिक प्रबल हो जाती है, मोह के कारण हो जाएं या क्रोध के कारण हो जाएं, उसमें ममता में जब मनीराम अधिक चला जाता है। उस समय मानव की प्रवृत्तियों का विभाजन स्वाभाविक हो जाता है।

अभाववाद

नारद जी ने कहा कि हे बालकआज तुम्हें यह प्रतीत होगा !, तुम आज प्रकृति के गर्भ में जाना चाहते हो। प्रकृति के गर्भ में इस मनीराम को परणित कर दोगे। तुम्हारी बुद्धि से जब मेघावी बुद्धि बन जाएगी। मेघावी बुद्धि उसे कहते हैं, जहाँ सत्यता होती है। और

सत्यता के आधार पर जब हम दृष्टिपात करते हैं, तो उसमें कल्पना तो होती है, और कैसी कल्पना होती है कि उसमें अभाव मात्र होता है। जैसे एक मानव मुझे दृष्टिपात कर रहा है, स्थूल में, परन्तु वह मुझे दृष्टिपात तो हो रहा है, नारद नाम का जो महापुरूष है, वह मुझे स्थूल रूप में दृष्टिपात आ रहा है, परन्तु उसमें मुझे अभाव प्रतीत होता है। अभाव क्या है? वह मानव आज है, परन्तु कुछ काल के पश्चात् वह उस रूप नहीं रहेगा। तो इसको अभाव कहा जाता है। उन्होने कहा की हे ध्रुव! आज तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा की अभाव मात्र भी होता है, इसी प्रकार जितना भौतिकवाद है, यह अभाव मात्र माना गया है। क्योंकि परमाणुओं से जिन वस्तुओं का निर्माण होता है, सुगठितता होती है उसमें अभाव मात्र होता है, और वह जो अभाव मात्र होता है, वह मानव को इतना उज्ज्वल नहीं बनाता, व्यापकता नहीं लाता, क्योंकि उसमें अभाव मात्र जो है, उसमें संकीर्णता होती है और जहाँ संकीर्णता होती है वहीं मृत्यु होती है और , मृत्यु जो होती है, यह मानव के विनाश का कारण बना करती है।

जब नारद ने यह वाक्य महात्मा ध्रुव को प्रकट कराया, तो वह शान्त हो गएं और नारद अपने आसन को भ्रमण करते आ पहुंचे। महात्मा ध्रुव तपस्या मे परणित हो गए, महा कठोर तपस्या में परणित हो गए । प्रभु का चिन्तन करते रहे, प्रकृति के नाना प्रकार के कष्टारोपण, उसके द्वारा होते नाना प्रकार की यातनाएं उन्होने अपने में धारण की और वे स्थिर रहे, जो मानव स्थिर बुद्धि होता ही अविचल होता है, उसके द्वारा प्राकृतिक गति नही होती मानो उसकी गति शान्त हो जाती है बाहरीय इन्द्रियों का विषय आन्तरिकता में परणित हो जाता है, और उस समय उसका जो आत्मिक हृदय होता है वह जो आत्मा होता ही उसका उत्थान होना प्रारम्भ हो जाता है और उसका हृदय अगम्यवत को प्राप्त होने लगता है।

ध्रुव मण्डल

कुछ समय के पश्चात् जब उनकी तपस्या में प्रबलता आ गई, तो नारद मुनि जी पुनः आ पधारे। नारद मुनि ने कहा बालक तुम महान हो, पवित्र हो। हे बालक तुम प्रश्न !

करो, तुम क्या जानना चाहते हो? उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं भौतिक विज्ञान में ध्रुव मण्डल की यात्रा करना चाहता हूँ। नारद मुनि मौन हो गएं और शान्त होकर बोले, हे बालकतुम भौतिक विज्ञान की इतनी कल्पना क्यों ! कर रहे हो? जिसमें अभाव है। इस अभाव के क्षेत्र में क्यों जा रहे हो। बालक ध्रुव ने कहा प्रभु ध्रुव मण्डल भ्रमण नहीं ! कर रहा है। ध्रुव स्थिर रहने वाला है, और जो स्थिर रहने वाला मण्डल है, मैं भी उसको अपने में धारण करना चाहता हूँ और उसके द्वारा पहुंचना चाहता ,हूँ। उन्होंने कहा कि तुम्हें प्रतीत है, कि ध्रुव मण्डल में कौन सा तत्त्व प्रधान है? उन्होंने कहा कि प्रभुयदि मुझे प्रतीत होता !, तो मैं आपसे प्रश्न क्यों करता। उन्होंने कहा कि यह जो ध्रुव है, इसमें अग्नि और जल दोनों प्रधानता में कहलाए गएं हैं। इसलिए यह ध्रुव तुम्हें स्थिर प्रतीत होता है, क्योंकि जिस लोक में अग्नि और जल दोनों की प्रधानता होती है, वह लोक तुम्हें स्थिर प्रतीत होने लगता है। आज तुम्हें जानना है, तो वायु के परमाणु और अग्नि दोनों के परमाणुओं को एकत्रित करने का प्रयास करो। उन्होने कहा कि प्रभु यह !मैं कैसे कर पाऊंगा? देव ऋषि नारद ने वह आभा सब प्रकट कराई, कि अग्नि का परमाणु इस प्रकार जाना जाता है, जिसमें व्यापकता होती है। क्योंकि प्रकृति में पांच ही प्रकार के गुण होते हैं, जिसमें प्रसारण, ध्रुवा, ऊर्ध्वा, व्यापकता और आकुंचन। व्यापक और प्रसारण प्रकृति के इन दोनों गुणों, को तुम्हें जानना होगा, दोनों के परमाणुओं को तुम्हें जानना होगा। जानकर जिसे हम आकुंचन कहते हैं, इनमें तुम स्वयं पुठ लगाते चले जाओ। तुम ध्रुव मण्डल को मानों अपृत कर सकते हो । मानो सफलवत को प्राप्त हो जाओगे। ऐसा उन्होंने वर्णन करते हुए कहा है।

ध्रुवेष्टि यन्त्र

नारद मुनि जी ने कहा कि यह विद्या प्रसारण करने योग्य नहीं है क्योंकि इस विद्या , से मानव में अभिमान आ जाएगा। तुम इस प्रकृति के क्षेत्र में जाना, एक सौभाग्य स्वीकार कर रहे हो, ध्रुव परन्तु मुझे यह शोभा नहीं देता। मेरे !योग्य यह शब्द नहीं, जो इन वाक्यों को प्रकट करूं। नाना प्रकार के वाक्यों को प्रकट करते हुए, महात्मा

ध्रुव ने कहा प्रभु मैं वास्तव में इसमें सफल हो जाऊंगा। उन्होंने भयंकर वन में नाना ! धातुओं को एकत्रित किया, क्योंकि जिनके सुयोग्य गुरू होते हैं, उनका जीवन महानता को प्राप्त हो जाता है। उस समय नारद मुनि राजा, महाराजाओं से नाना प्रकार की धातु, वसुन्धरा के गर्भ से लाने का प्रयास करते थे, वह नाना प्रकार की धातुएँ लाते । मानो कहीं से स्वर्ण लाते, कहीं से आकुंचन शक्ति अकृत लाते। इस वसुन्धरा के गर्भ से नाना यन्त्रों से धातुओं के लिए प्रयास करते। देव ऋषि नारद मुनि में कई विशेषता थी। हमारे यहाँ इस प्रकार के वैज्ञानिक होते हैं, जो इस पृथ्वी के कणों को लेकर के घ्राणशक्ति को जानने वाले प्राणी होते हैं, वह पृथ्वी के परमाणुओं को लेकर के, उसकी सुगन्ध से ही यह जान लेते हैं, कि इस भूमि में, इस स्थान में कौन सा तत्त्व अधिक है, किसमें स्वर्ण अधिक है, नाना प्रकार का जो खनिज है, किस प्रकार का खनिज मुझे कहां प्राप्त होगा, यह देव ऋषि नारद मुनि सब जानते थे। ध्रुव प्रति नाम का एक वज्र होता है, उस वज्र में यह विशेषता होती है, समागच्छम् बह्मे समालोकं ब्रह्मा आपः प्रति सुप्रज्यःकी यदि उसे अग्नि में तपा करके उसका कण कण कर दिया जाए अग्नि मे उसकी पुष्टि तो होने वाली नही थी क्योंकि अग्नि में परमाणु होने वाला ही वज्र कहलाया गया है, उसमें एक स्वादित नामक प्रधान नाम की एक सुरिलित औषधि होती है, उसका मिलान किया जाता है। मिलान करने से उसका विभाग एक एक कण हो जाता है, परमाणु परमाणु हो जाता है जब कण कण हो जाता है तो उसमें आकुंचन नाम का पुट प्रभे होता है। उसका और भी विभाजन हो जाता है, परमाणु हो जाता है। यन्त्रों के द्वारा उन परमाणुओं को दृष्टिपात किया जाता है। वह जो यन्त्र होते है उनके द्वारा, उन परमाणुओं में आंकुचन, प्रसारण शक्ति होती है, वायु में प्रसारण शक्ति हाती है। वायु के परमाणुओं को लेकर जब उनकी पुट लगाते है, तो इन परमाणुओं का पुनः से स्थूल रूप बन जाता है। स्थूल रूप बन करके उसकी व्यापनोति रूप बनकर के उसमें एक महानता की प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगती है।

आज मैं इस वाक्य को गम्भीर नहीं बनना चाहता हूँ। नारद मुनि ने उन्हें नाना प्रकार की धातु ला करके ध्रुवेष्टि यन्त्र का निर्माण किया। उस यन्त्र का निर्माण करते हुए वह

महात्मा ध्रुव, ध्रुव मण्डल की यात्रा करने के लिए चले। अन्तरिक्ष को चलने लगे। नारद मुनि प्रसन्नता से परणित होने लगे। ऐसा कहा जाता है कि महात्मा ध्रुव स्वयं ध्रुव मण्डल में परणित हो गएं जिसमें एक लाख के लगभग सूर्य समा जाते हैं ऐसा ध्रुव मण्डल प्रबलवत है।

आज जब हम इस वैदिक परम्परा को विचार विनिमय करने लगते हैं, तो विचार आता है, कि वास्तव में हमारी वैदिकता, हमारा जीवन क्या है? महात्मा ध्रुव, जब ध्रुव मण्डल की यात्रा करने लगे, उस समय नारद मुनि उनकी माता के समीप जा पहुंचे और माता सुनीति से कहा कि हे माताआज तेरा प्रिय बालक प्रभु का चिन्तन करता हुआ !, ध्रुव मण्डल की यात्रा कर रहा है। माता का हृदय मुग्ध हो गया, माता के हृदय में एक आनन्द छा गया। उसके हर्ष की कोई सीमा न रही।

तो मुनिवरोंवह मेरी पवित्र माता होती है !, जो अपने बालक के हृदय में निष्ठा को ओत प्रोत करा देती है। मानव को निष्ठावादी बनाना ही महान, उसका एक कर्त्तव्यवाद कहलाया गया है। हे मेरी माता! तू कितनी पवित्र है। हे मां तेरा हृदय कितना अगम्य ! है। जब तू अपने गर्भ स्थल से महात्मा ध्रुव और प्रहलाद को जन्म देती है, तो तेरा जीवन धन्य हो जाता है। तू अपने में महानता को स्वीकार करने लगती है। संसार में कीड़ों को जन्म देने से माताओं को लाभ नहीं होता। वह माता तपस्विनी होती है पवित्रता को प्राप्त हो जाती है।

आज के हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय है, कि हम प्रभु का चिन्तन करते हुए, अपनी उस महामना देवी की याचना करते चले जाएं, तो हमारे जीवन को उदबुद्ध करने वाली है। हमारे जीवन में एक महानता आ जाती है। उसी से हम प्रभु के द्वारा जाने के सुयोग्य बन जाते हैं। तो मानव को निष्ठावान बनना चाहिए और जब मानव निष्ठावान बन जाता है, वह कण कण में, चेतना को स्वीकार कर लेता है, वही ओ३म् का चिन्तन है, वही प्रभु का चिन्तन है। उसी को माला पाठ कहा जाता है। वही ओ३म् रूपी धागा है, जो प्रकृति का और विज्ञान का एक एक कण ओ३म् रूपी धागे में दृष्टिपात करता

है, वह अपनी महानता को प्राप्त करता हुआ, इस संसार सागर में पार हो जाता है। यह आज की अब वाक्य समाप्त हो गया है, कल समय मिलेगा, तो कल हम कुछ राष्ट्रीय चर्चा प्रकट करेंगे, कि राष्ट्रवाद का निर्माण क्यों होता है? आज विज्ञान की कुछ चर्चाएं, तुम्हारे समक्ष निर्धारित की हैं। नाना धातुओं का कुछ मैंने नामोच्चारण किया है। समय मिलेगा, तो यह वाक्य आते रहेंगे, स्मरण कराते रहेंगे, क्योंकि यह तो विज्ञान का पाठ है क्योंकि भारद्वाज का अश्वत है, भारद्वाज का पुरुषार्थ किया हुआ यह विज्ञान कांड प्रारम्भ हो रहा था। अब वेद का पाठ होगा, इसके पश्चात हमार वाक्य समाप्त हो गया, आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि मानव को निष्ठावान बन करके, अपने प्यारे प्रभु की गोद में जाना चाहिए, क्योंकि वहीं तो जीवन है, वही तो महानता को परणित कराता है। यह आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पाठ होगा। जोरबाग में दिया) (हुआ प्रवचन

२ 22 08 1969 पुष्प 13 चंद्र मण्डल तथा राष्ट्रवाद

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, जिन वेद मन्त्रों का आज हमने पूर्व से, पाठ किया। पठन पाठन का जो कर्म है, वह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हम सदैव उस परमपिता परमात्मा की महता का वर्णन किया करते हैं। जैसे माला में सुन्दर मनके होते है और वह एक धागे में पिरोएं हुए होते हैं, इसी प्रकार हम वाणी और मन के द्वारा इन वेद मन्त्रों को मनका बना लेते हैं और वाणी और मन के मध्य में जो अन्तर्द्वन्द्व है, उसे समाप्त करके उसका धागा बना लेते हैं, उस धागे का सम्बन्ध हमारी अन्तरात्मा तक रहता है। जब वाणी और मन के मध्य में अन्तर्द्वन्द्व नही रहता, तो मानव को वाणी और मन के मध्य में अन्तर्द्वन्द्व नही रहता, तो मानव को वाणी में महान अमृत की प्रतीति होने लगती है। जिसे हम अनुवाक् रस्सावादन कहते हैं, वह अमृत हमें वेद ज्ञान द्वारा प्राप्त होता है। आज मेरे प्यारे महानन्द जी को कुछ ! शब्दों का प्रतिपादन करना है। हम यह उच्चारण करते चले जा रहे थे। कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या और ऋषि मण्डल को वेद मन्त्रों की पवित्र माला बना लेनी चाहिए।

अपनी जो अन्तरात्मा है उसको धागा बना करके उसमें पिरो लेना चाहिए, मानव का अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार हम वेद रूपी ज्ञान से, अज्ञान रूपी अन्धकार को समाप्त करते चले जाएं। यह अन्धकार हमारी मृत्यु का कारण बनता चला जाता है।

ओ३म् का महत्व

तो मेरे प्यारेआओ !ऋषिवर !, हम प्रभु का गुणगान गाते चले जाएं। यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार होता है। जब प्यारा बालक माता के गर्भस्थल से पृथक होता है तो उस समय वह ओ३म् ओ३म् का पाठ करता है ओ३म् की ध्वनि उसके मुखारबिन्दु से उत्पन्न होती है संसार में किसी भी लोक लोकान्तर से हो, किसी भी पृथ्वी के भाग में, कोई भी प्राणी हो, परन्तु जब बालक का जन्म होता है तो गर्भ से पृथक होते ही व्याकुल होता है, ओ३म् ओ३म् का पाठ करता है। उसके गर्भ में ओ३म् की प्रतिभा होती है। इसीलिए हमें विचार विनिमय करना है कि यह जो ओ३म् शब्द है, यही तो हमें ज्ञान देता है और उस आँगन में ले जाता है कि वास्तव में यही वाणी के उच्चारण करने का स्वभाव है। आज कोई मानव प्रभु को स्वीकार नही करता परन्तु जब वह कोई वाक्य उच्चारण करता है तो ओ३म् का शब्द उसके मुखारबिन्दु से उत्पन्न होता है। नास्तिक भी उसे नष्ट नही कर पाता, क्योंकि ओ३म् जो शब्द है, वह वाणी का पर्यायवाची शब्द है, यह मन की प्रतिभा है मानो प्रभु की देन है।

अन्तरात्मा का स्वभाव ऊर्ध्वागति को जाना है, यदि इन्द्रियों की भी ऊर्ध्वागति होती है तो सुख अनुभव करती हैं, यदि ध्रुवा गति हो जाती है तो दुख का अनुभव करने लगती है। आज हम अपनी ऊर्ध्वागति बनायें, ऊर्ध्वागति ही मानव का जीवन है और ध्रुवा बनना ही मानव की मृत्यु है। आज मैं अधिक चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ। आज मेरे प्यारेमहानन्द जी अपने वाक्य प्रगट करेंगें। क्योंकि बहुत समय ! से इनकी उत्कट इच्छा हो रही है, मैं अपने प्यारे ऋषि से उच्चारण करूंगा, कि वह अपने उद्गम विचार

पक्षपात और घृणा को त्याग करके देने का प्रयास करें।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् मया दधिमा सर्वश्चम ब्रह्मे व्यापा गतम् अभ्यास्वतम् रूद्राः मेरे प्यारेपूज्यपाद गुरुद !ेव!मेरे प्यारे ! ऋषिमण्डल आज मेरे पूज्यपाद !भद्र समाज ! गुरुदेव ने बहुत समय के पश्चात यह अनुपम अवसर दिया है और आज्ञा दी है, कि मैं पक्षपात और घृणा को त्याग करके अपना वाक्य उच्चारण करूं। गुरुदेव ने यह वाक्य उच्चारण तो कर दिया, परन्तु घृणा के शब्द उच्चारण किए बिना, हमसे नही रहा जाता, क्योंकि आज के मानव समाज में इतनी घृणित प्रवृत्तियां बन गई हैं कि ओर उनको स्पष्ट उच्चारण करने को, गुरुदेव घृणित कहते हैं, वास्तव में ऐसा नही।

वैज्ञानिक विमर्श

आज हमारे दो विषय हैं, राष्ट्रवाद और लोकवाद । आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब वेदों का पठन पाठन कर रहे थे, तो बड़ी माधुर्यता के साथ चन्द्रमा के प्राणियों का वर्णन आ रहा था, जेठाय नक्षत्र में रहने वाले प्राणियों का वर्णन आ रहा था, मंगल में रहने वाले प्राणियों का वर्णन भी था, मैं उन प्राणियों के सम्बन्ध में इतनी धृष्टता में नही जाना चाहता । मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक सार्वभौम सिद्धान्त प्रगट किया था, कि जहाँ यह पञ्च महाभूत होते हैं, वहाँ प्राणी हुए बिना नही रह सकता। प्रभु की सृष्टि में कोई भी लोक लोकान्तर जहाँ वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और अन्तरिक्ष पांचों तत्त्व हों, वहाँ प्राणी न हो। हम विचार विनिमय करें कि जहाँ आकाश होगा, वहाँ तो मार्ग भ्रमण करने के लिए होगा और वही अप्रत्य होगा। जहाँ वायु होगी वहाँ श्वास लेने वाली प्राणी अवश्य होंगें। जहाँ पृथ्वी के अंकुर होंगें और जल के अंकुर होंगें वहाँ उसी प्रकार के प्राणी होंगें। प्रभु की चार प्रकार की सृष्टि है, अण्डज, उदभिज, जरायुज, और जंगम, जहाँ जल होगा वहाँ प्राणी अवश्य होगा। यह सार्वभौम सिद्धान्त है, इसे कोई काट नही सकता, यह वेद क सिद्धान्त है और वेद का ज्ञान सर्वत्र है, जैसे प्रभु की प्रतिभा सर्वत्र है, जैसे मानव के शरीर में मन की प्रतिभा सर्वत्र है, बिना पञ्च महाभूत के लोक की प्रतिभा नही बनती, उसकी मीमांसा नही कर पायेंगें। मीमांसा वहीं होती हैं, जहाँ पञ्च

महाभूत होते हैं।

आज मैंने अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा श्रवण किया है, कि आज का प्राणी यह कह रहा है कि चन्द्रमा में जीवन नही हैं आज के प्राणी ने वहाँ जाकर किया ही क्या है, हमारा परम्परा का विज्ञान तो यह कह रहा है कि राजा रावण के पुत्र नारायन्तक का एक पुस्तकम् था, जिसको विज्ञान अपरित कहा जाता था और उनका एक हस्त लिखित पुस्तकम् था जिसको चन्द्र अपरिती यात्रा कहते थें, क्या करें आज वह पुस्तकें प्राप्त नही हो रही हैं, संसार के मानव का दुर्भाग्य है, कि वह सब पुस्तकें अग्नि के मुखारबिन्दु में चली गईंर। लेखनीबद्ध करने वाले भी समाप्त हो गये। मैं वाक्य सदैव उच्चारण करने के लिए तत्पर रहता हूँ कि आज के प्राणी ने विज्ञान में दृष्टिपात ही क्या किया है? आज मानव के हृदय में यह संशय आ जाता है, कि वह मानव इस प्रकार से विज्ञान में प्रगति करता रहा, तो मानव परमात्मा को शान्त कर देगा। यह वाक्य मानव को अपने से दूर कर देना चाहिए। आज मानव नास्तिकवादी तो बन जाता है, परन्तु नास्तिकवादी में उसे कोई वस्तु जरूर प्राप्त करनी होगी। वह जो कह रहा है, कि यह सब संसार प्राकृतिक है, परन्तु प्रकृति का मूल भी कोई न कोई स्वीकार करना ही होगा। प्रकृति में स्वयं ज्ञान की कोई प्रतिभा नही हैं, ज्ञान का कोई न कोई प्रतीक तुम्हें स्वीकार करना होगा।

आज के विज्ञानवादी ने चन्द्रमा में जाने वाला यन्त्र बनाया, परन्तु उस यन्त्र में वह ज्ञान की प्रतिभा न दे सके। जब ज्ञान की प्रतिभा दे देवेंगें तो हम स्वीकार कर सकते हैं, कि प्रतिभा शान्त हो सकती है, ज्ञान की प्रतिभा को मानव बना नही सकतां। आज पृथ्वी में जो स्वर्ण बनता है, उस स्वर्ण के कणों को कोई वैज्ञानिक नही बना सकता, वह उन कणों का मिलान कर सकता है, कण अनादि माने जाते हैं। जब हम कणों की प्रतिभा अनादि स्वीकार करते हैं और उनके बनाने वाला केवल एक चेतना से प्राप्त होता है। मैं

इस वाक्य को अधिक प्रतिभा में नही ले जाऊंगा।

चन्द्रमा में जीवन

आज का प्राणी यह उच्चारण कर रहा है कि मैं चन्द्रमा में गया, वहाँ जीवन नही है। उन भोले प्राणियों को यह स्वीकार कर लेना चाहिए, कि उनका आगमन केवल उत्तरी भाग में हुआ है, उत्तरी भाग क्रोथकुत लेख एक रेखा है, उस रेखा के कुछ पार पंहुचने का इसको अवसर प्राप्त हुआ है, आगे चल करके जीवन प्राप्त होगा, यहाँ तो केवल पृथ्वी के, वायु के अप्रीति जनो के कुछ कणों की ही प्रतिभा प्रतीत होती है। आगे चल करे जलाशय भी हैं और गृह भी हैं जहाँ जलाशय होगा, वहाँ पृथ्वी की प्रतिभा है। परन्तु जैसा वहाँ पार्थिव जीवन मानव का है, इस प्रकार का जीवन चन्द्र मण्डल में नही स्वीकार किया जाता। हम भी नही करते हैं, क्योंकि जैसे यहाँ इस पृथ्वी मण्डल में पार्थिव तत्त्व और वायु तत्त्व दोनों प्रधानता में स्वीकार किए गएं हैं। वहाँ जल तत्त्व और वायु तत्त्व अधिक प्रधानता में माने गएं हैं हमारे धर्मज्ञ शास्त्रों में और वेद में उसको पिशाच मानव कहते हैं, क्योंकि पिशाचम बृव्हे आकृति मानो यह जो पिशाच योनियां हैं, उनका जैसे मानव का शरीर होता है, उसी प्रकार का है परन्तु यह जो मानव पृथ्वी मण्डल का है उसको वह दृष्टिपात आना सम्भव हो जाता है।

अब जीवन मानव को कैसे प्राप्त होगा? मानव को जीवन उस काल में प्रतीत होगा, जब वह उसी प्रकार वाणी से उच्चारण करेगा। रहा यह वाक्य, धर्मज्ञ प्रधे अस्ति मानो उनका धर्म क्या है उनका धर्म मानवता है जैसे यहाँ हम मानवता की प्रतीति स्वीकार करते हैं उसी प्रकार वहाँ भी प्रतीति किया करते हैं चन्द्रमा में जीवन स्वीकार करने से ही चन्द्रमा को लोक व गृह कह सकते हैं। क्योंकि गृह की मीमांसा ही यह है, कि जहाँ प्राणी भ्रमण कर सकता हो, गृह का निर्माण कर सकता हो, आगे चल करके हमारे यहाँ यह भी स्वीकार करते हैं, कि इस पृथ्वी मण्डल का पार्थिव तत्त्व वाला प्राणी, जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है, चन्द्रमा में केवल उसका जीवन छह माह से अधिक नही चल सकेगा। क्योंकि वायु उसे शुष्क कर सकती है क्योंकि वहाँ वायु की प्रधानता

है, और वहाँ जल की प्रधानता अधिक होने के नाते, अधिक तत्त्व अग्रात और तत्त्ववादी अग्रह समाप्त हो जाते हैं, परन्तु उस काल में रह सकेंगें। जब पृथ्वी की जो कृतिकि होती है, मानो उसकी जो तरंगें होती हैं, उनको एकत्रित करके जब ले जाएंगें, तो वहाँ उसके द्वारा जीवित रह सकेंगें, अन्यथा उसका जीवन समाप्त हो जाएगा। मैं यह उच्चारण करने के लिए तत्पर हो जाता हूँ, कि आगे चल करके यह प्राणी भ्रमण कर सकते हैं, परन्तु जहाँ जीवन की मीमांसा है, कि जीवन रहेगा अथवा नही, वहाँ कृषि होगी, गृह बनायेंगें कार्यालय होंगें और क्या क्या होगा, परन्तु यह पृथ्वी मण्डल के प्राणियों के लिए असम्भव बात है।

चन्द्रमा के प्राणियों का आहार

अब प्रश्न यह आता है कि जैसे हम इस पृथ्वी मण्डल पर अन्न आहार करते हैं, तो चन्द्र मण्डल के प्राणियों के द्वारा कौन सा आहार है? वहाँ वायु प्रधान और जल प्रधान दोनों के मिश्रण से जो अन्न उत्पति होती है, उस अन्न को पान करते हैं, जो उसके अनुकूल होता है। जैसे वहाँ के अन्न में पृथ्वी के कण अधिक होते हैं, वहाँ उसमें वायु और जल के कण अधिक होते हैं और उसको पान करना ही उनके लिए अनूकुल होता है। अब रहा यह वाक्य कि यह इस पृथ्वी मण्डल का प्राणी कितने समय में भ्रमण कर सकता है? परन्तु इसको अभी अधिक समय लगेगा। शीघ्रता में अभी भ्रमण करने में इतनी सफलता नही पा सकेगा। क्योंकि आगे चल करके नाना प्रकार की बाधाएं, नाना प्रकार के गृहस्थी, नाना प्रकार के पर्वतों की ऊँची ऊँची आकृति उनके समीप आयेंगी। उनसे जाना इनके लिए एक महान कठिन कार्य होगा। उन मार्गों को प्राप्त करने से सफलता को अवश्य प्राप्त हो जाएंगें, परन्तु उसके लिए समय की आवश्यकता रहेगी। इस सम्बन्ध में आगे की चर्चा क्यों प्रगट करूं? इससे मुझे क्या प्रयोजन है

मैं यह सदैव उच्चारण करने के लिए तत्पर रहता हूँ, कि चन्द्रमा में भी जीवन है, बृहस्पति में भी जीवन है, मंगल में पार्थिव तत्त्व प्रधान है, सहानूभूति लोकों में भी तत्त्व प्रधान पृथ्वी ही मानी जाती है। बृहस्पति मण्डल में अग्नि और वायु की प्रधानता है, इसी प्रकार

ध्रुव मण्डल में अक्रिति और आसवानी इन दोनों तत्त्वों का अधिक मिश्रण रहता है, जेठाय में अगति और पार्थिव तत्व प्रधान स्वीकार किया गया है। सूर्य मण्डल में अग्नि तत्त्व स्वीकार करते हैं। वेद में सम्पन्न विद्याओं का वर्णन आता रहता है। जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने हमें वर्णन कराया है, इस संसार का और प्रकृति का, स्वतः ही ब्रह्म की चेतना से अपनी प्रक्रियाओं में प्रक्रियायें करते रहते हैं, अपने अपने आसन पर भ्रमण करते रहते है।

चन्द्रमा का समाज

आज मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह चर्चा प्रगट कराई, कि चन्द्रमा में प्राणी रहते हैं, उनके कार्यालय हैं, उनका राष्ट्र भी है उनकी प्रजा भी है, वहाँ नाना प्रकार के भोग विलासों की सामग्री उनके अनूकुल होती है, जो सब प्राणी मात्र के लिए होती है। ऐसा ऐसा व्यापार होता है, अब मानव अपनी अल्प बुद्धि से न जान सके, तो वह द्वितीय वाक्य है। एक मानव यह उच्चारण कर सकता है, कि आज हम इसको कैसे स्वीकार करें, कि चन्द्रमा में प्राणी रहते हैं, जब आज का वैज्ञानिक, प्रकट नहीं कर रहा है इसका उत्तर यह है कि आज का वैज्ञानिक जब अभी तक वहाँ पंहुच ही नही पाया है, तो वह तुम्हें उत्तर भी क्या दे दे। जब उसे प्रतीति ही नही हुई। यन्त्रों के द्वारा तो उत्तर भी क्या दे सकता है। अब यदि हमें कोई उच्चारण करने लगे कि आप जो उच्चारण करते हैं, वही सत्य है, यह कैसे स्वीकार हो? इसका सार्वभौम वेद प्रमाण है, वेद कहता है चन्द्रो वृतं प्रभा अस्ते प्राणी अगृत रुद्रा अस्ते सु प्रजाम् मनु वाञ्छाम् प्राणी भ्रमणः अस्ति सुप्रजा मैं तो वेद के आधार पर यह वाक्य प्रगट कर रहा हूँ। मैं अपने अनुभव की चर्चा क्यों उच्चारण करूं, यह मेरा स्वभाव नही हैं। मैंने सूक्ष्म शरीर के द्वारा यह दृष्टिपात किया है, अथवा नही किया, इसको उच्चारण करने का क्या लाभ है। परन्तु मैने सार्वभौम सिद्धान्त प्रथम ही वाक्यों में प्रगट किया है, कि जहाँ भी पञ्च महाभूत होंगें वहाँ प्राणी भी होंगें। यह द्वितीय चर्चा है कि वहाँ कौन सा तत्त्व प्रधान है। रहा यह वाक्य कि परमात्मा के राष्ट्र में हम आत्मा कितनी स्वीकार करें? तो यह बहुत अल्पबुद्धि वाला

प्रश्न है, क्योंकि जैसे परमपिता परमात्मा अनन्त है, वैसे ही प्रकृति भी अनन्त है इसकी कोई सीमा नही होती और न कोई इसे सीमा में कटिबद्ध कर सकता है। इसी प्रकार आत्मा अनन्त है। आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है कि हम यह विचार विनिमय कर सके, कि हमारा जो सार्वभौम सिद्धान्त हैं, उसकी प्रतिभा को हम सदैव स्वीकार करें और ब्रह्म की चेतना के साथ हम अपनी चेतना को उसमें मिश्रण करने का प्रयास करें, जिससे हम इन नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में सफल हो सकें।

राष्ट्रवाद

आज हमारा कुछ सूक्ष्म सा राष्ट्रवाद का भी विषय है कि राष्ट्रवाद की जो परम्पराएं हैं, उनकी जो प्रतिभाएं हैं, वह हमें क्या आज्ञा देती चली जा रही हैं, आज का जो राष्ट्रवाद है, उसकी जो प्रक्रियाएं हैं, वह कितनी घृणात्मक हैं, इनके ऊपर विचार विनिमय करना हमारा बहुत अनिवार्य होता है। वेद हमें राष्ट्र के लिए क्या कह रहा है? आज का मानव राष्ट्रवाद के लिए कहाँ जा रहा है, आज का जो राष्ट्रवादी प्राणी है, वह अपने स्वार्थ में लगा हुआ है, उसके प्रत्येक कार्य के करने के गर्भ में स्वार्थवाद प्रथम है और कर्म उसके पश्चात रहता है, वेद कहता है कि सबसे प्रथम राष्ट्र के नियम लो और उसके पश्चात जब तुम्हारे राष्ट्र के कर्म सुन्दर होंगे, तो तुम्हारा जो स्वार्थ है, वह उसका गुण ही जाता है। क्योंकि कर्तव्यवाद में ही मानव को सुख प्रतीत होने लगता है। आज के राष्ट्रवाद में कर्म करने से पूर्व स्वार्थ भावना आ जाती है। आज वह जो पद की लोलुपता है, यह तेरे से दूरी न चली जाएं। आज जब राष्ट्रवाद का मस्तिष्क ही वृद्धपन को प्राप्त हो जाता है, तो उनका मस्तिष्क राष्ट्र के नियम के लिए क्या कार्य कर सकता है? यह विचारने का विषय है। जब से इस भारत भूमि में, इस पृथ्वी मण्डल पर ब्राह्मणों और बुद्धिमानों का चुनाव समाप्त हो गया है और साधारण प्रजा जिसे ज्ञान नही होता, स्वार्थ प्रतिभा होती है, वहाँ मस्तिष्क भी वृद्धपन को चुना जाता है। वह राष्ट्र का नियम क्या बन सकेगा। वेद का सिद्धान्त कहता है कि सार्वभौम प्रजा में सुख होना चाहिए परन्तु प्रजा में सुख किस काल में होगा। जब राजा ऊँचा होगा। राजा मस्तिष्क नवीन होगा।

नवीन मस्तिष्क उस काल में होगा, जब वह अपने चरित्र और मानवता की रक्षा करेगा, मैं यह नही कह रहा हूँ, कि शरीर से मानव वृद्धपन को प्राप्त हो जाता है। अथवा आयु से वृद्धपन को प्राप्त हो जाता है, जब तक मानव शरीर को त्यागता है, तब तक मानव का मस्तिष्क नवीन रहता है, परन्तु जहाँ स्वार्थ और चरित्रहीनता होती है, वहाँ कोई मानव उच्चारण करे, कि मानव का मस्तिष्क वृद्धपन को प्राप्त नही हुआ है, तो यह केवल उसकी विडम्बना है यह उसका पाखण्ड स्वीकार होता है।

समाज का भविष्य

जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं, तो हमें आश्चर्य होता है, कि इस समाज का भविष्य क्या कर रहा है। समाज का भविष्य कह रहा है, कि अग्नि प्रदीप्त होने जा रही है, क्योंकि जब मानव का स्वार्थ अधिक प्रबलता को प्राप्त हो जाता है, तो उस समय स्वार्थ की जो अग्नि है, वह बाह्य रूप धारण करती है और वह उसका विराट स्वरूप होता है। जब विराट रूप होता है तो मानव को ऐसे निगलती चली जाती है जैसे सूर्य की किरणों रात्रि को निगल जाती हैं आज हम कहाँ जा रहे हैं, इसके ऊपर विचार करना है यह जो मार्ग आज राष्ट्रवाद ने अपनाया है, यह मार्ग इस प्रकार है कि यह मार्ग मानव को स्वयं निगलता जाएगा। जहाँ मानव के मस्तिष्क की विचारधारा को नष्ट कर दिया जाता है, पराधीन कर दिया जाता है, तो यह किस काल तक पराधीन रह सकेगी? परमात्मा ने मानव को विचार स्वतन्त्र बनाया है, कार्य करने में स्वतन्त्र बनाया है। तो यह किस काल तक एक दूसरे मानव के प्रभाव में आकर के वह धृष्टता में रह सकेगा, उसके प्रभाव में रह सकेगा, उसी काल तक रह सकेगा, जब तक उसकी अन्तरात्मा की जो घृणा है, वह अधिक पराकाष्ठा पर नही पंहुच जाती है, जब उसका व्यापक रूप बन जाता है, तो आगे चलकर, वह उसी प्राणी को निगल जाता है, जिस प्राणी की, उसे पराधीन रखने की उसकी चेष्टा बन गई थीं।

इसी प्रकार हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेवएक मानव संसार में क्षुधा से पीड़ित रहता है !, अन्न नहीं प्राप्त होता, क्योंकि जो द्रव्य के द्रव्यपति बन जाते हैं वह मानव को निगलते चले

जाते हैं, जब उसे अन्न प्राप्त नही होता, तो एक समय वह होता है, कि उसके नाना सहयोगी, उसकी सहायता में पंहुच जाते हैं। और उनकी जो भावना है, वह एक समय अग्नि का स्वरूप धारण कर लेती है और वह मानव जो क्षुधा से पीड़ित है, वह उस द्रव्यपति के अन्तःकरण को निगल जाती है। उसकी प्रतिभा को निगल जाती है, मैं यह वाक्य अधिक उच्चारण नही करूंगा। परन्तु मुझे स्मरण आता रहता है, देखो, राजा रावण के राष्ट्र में, प्रजा बहुत कष्ट में रहती थी, परिणाम क्या हुआ, कि प्रजा को सुखी बनाने के लिए चरित्रवानों की उत्पति होने लगी।

मानव का कर्म

आज के राष्ट्रवाद में क्या हो रहा है, आज के राष्ट्रवाद की प्रतिभा क्या है कि तेरा द्रव्य तेरे से न चला जाएं, चाहे राष्ट्र किसी मार्ग को चला जाएं, प्रजा किसी मार्ग को चली जाएं, परन्तु द्रव्य नही जाना चाहिए। अहाजब तेरा राष्ट्र नही रहेगा !, तेरा विचार नही रहेगा। तेरी स्वतन्त्रता नही रहेगी, तो यह जो द्रव्य है यह कहाँ रह सकेगा। वह द्रव्य भी तो उसके साथ रमण करता रहता है, प्रायः मानव कहते हैं कि मानव का प्रारब्ध होता है, भोग भोगने का, मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ परन्तु इसमें नाना प्रकार की विडम्बना मेरे हृदय में उत्पन्न होती रहती है, मानव का जो कर्म है, वास्तव में इसके ऊपर इसकी मीमांसा कर लेनी चाहिए कि प्रारब्ध से ही मानव भोग भोगा करता है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि प्रारब्ध भी होता है, परन्तु जो कर्मठ प्राणी होते हैं, उनका जो प्रारब्ध होता है, वह सूक्ष्मता को प्राप्त हो जाता है। मानव यदि प्रारब्ध के ऊपर विराजमान रहेगा, तो उससे कर्म भी नही हो सकेगा। कर्म की विशेषता समाप्त होती चली जाती है इसीलिए प्रारब्ध कर्म के साथ साथ होता है। एक मानव दूसरे के रक्त का पान करता चला जा रहा है, उसका प्रारब्ध जो बनेगा, वह रक्त ही बनेगा । यह विचारों, कि उसका प्रारब्ध तपस्वी बन जाएगा, तो यह असम्भव है। एक वैद्यराज है, वह चिकित्सा करता है और यदि रूग्ण प्राणी के रक्तपान करने की, उसके हृदय में चेष्टा आ जाएगी, तो वह अवश्य प्राप्त करता रहेगा, परन्तु उस वैद्यराज का अन्तःकरण

यह कह रहा है, कि तेरी जो औषधि है, अधिक मूल्य पर जा रही है, अधिक मूल्य पर जाने से वह जो अधिक मूल्य है, वह तेरे अन्तःकरण को निगल जाएगा, क्योंक वैद्यराज की उपाधि हमारे यहाँ महापुरूषों मे चुनौती प्रदान की गई है।

राजा का कर्तव्य

राजा जब वैश्य का कार्य करना प्रारम्भ कर देता है, तो वह राजा नही हो सकता क्योंकि उसका क्षत्रियपन समाप्त हो जाता है। उसका व्यापार करने का कार्य नही, कृषि उद्गम कार्यऊक नहीं रह जाता है उसको तो केवल प्रजा को ऊँचा बनाना है, द्रव्य वैश्यों से आयेगा और उसे मानव के चरित्र में, धर्म के कार्यों में लगाना, क्योंकि राष्ट्र की जो उत्पत्ति है वह धर्म की रक्षा करने से उत्पन्न होती है। आज कोई मानव यह कहता है कि राष्ट्र के पिछले भाग में धर्म है, तो यह असम्भव है क्योंकि धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र की उत्पति होती है, राष्ट्र की आवश्यकता कर्तव्य विहीनता के कारण उत्पन्न होती है। आज मानव कहता है कि धर्म और राष्ट्र दोनों पृथक पृथक वस्तु माने गएं हैं इसीलिए संसार का विनाश अवश्य होगा। यह वाक्य स्वीकार करने वाला नही।

धूर्तवाद

आज के राष्ट्रवाद को हम धूर्तवाद उच्चारण कर सकते हैं, धूर्त उसको कहते हैं जो सर्प की भांति द्रव्य का स्वामी बन जाता है। द्रव्य को नीचे दबा लेता है, वह प्रजा कहीं चली जाओ। उसको क्या कहेंगें? उसको धूर्तों का राष्ट्र कहा जाता है क्योंकि राजा का क्षत्रिपन उसके कर्तव्य में हैं, और उसके साथ साथ उसके राष्ट्रवाद उसका ब्रह्मचर्यतव और उसका चरित्र है, जिस राजा के राष्ट्र में मेरी पुत्रियां अपने श्रृङ्गार को नष्ट करके अपने उदर की पूर्ति करती है, क्या वह कोई राष्ट्र कहलाया जाता है, वह कोई राष्ट्र नही कहलाया जाता है वह कोई राष्ट्र नही होता। उसको दुराचार का राष्ट्र कह सकते हैं, जहाँ मेरी पुत्रियां अपने श्रृङ्गार की रक्षा नही कर सकती, मानव अपने चरित्र की रक्षा नही का सकता, क्या वह राष्ट्र कहलाया जा सकता है उसको हम दैत्य राष्ट्र कहा

करते हैं, राक्षसों का राष्ट्र कहा करते हैं।

मुझे बहुत से प्राणी उच्चारण करते होंगें, कि यह मूर्ख क्या उच्चारण कर रहा है परन्तु वास्तव में आज के संसार में सत्यवादी को मूर्ख ही कहा जाता है। उसको चुनौती नही दी जाती, परन्तु ऐसे नष्ट कर दिया जाता है, जैसे मार्ग में पड़े हुए कीड़े को मानव नेत्रों से दृष्टिपात न करके उसको नष्ट कर देता है। आज यथार्थ प्राणियों की यह दशा होती चली जा रही है, इस संसार का क्या बनेगा? मैंने तो बहुत पूर्व काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन कराते हुए कहा है, कि आज का संसार भयंकर अग्नि के मुखारबिन्द में जा रहा है, जहाँ कुछ ही समय रह रहा है, जब वह अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी।

आज मैं द्रव्यपतियों की निन्दा नही करने जा रहा हूँ, केवल यह कि राजा व्यापार का कार्य करके वैश्य बन जाएगा, वह राष्ट्र का पालन नही कर सकता और वैश्य यह चाहता है कि मैं राष्ट्र का पालन करूं परन्तु वास्तव में वह दूसरों की रक्षा करने में असमर्थ हो जाएगा। आज का राष्ट्र उसी प्रणाली को अपना रहा है, परन्तु यह प्रणाली सुन्दर नही है, जब तक वैदिक परम्परा और धर्म आगे नही होगा और राष्ट्रवाद उसके पीछे नही होगा, तो तब तक यह राष्ट्र और समाज किसी काल में ऊँचा नही बन सकेगा। वेद का वाक्य कहता है राष्ट्र दा राष्ट्र मम देहि एक मानव प्रार्थना करता है कि हे प्रभु मुझे ! प्रजा के पालन करने की शक्ति दो, जिससे मैं अपने क्षत्रियपन से ब्रह्मचर्य की रक्षा करता हुआ, प्रजा की उन्नति कर सकूं। हमारे यहाँ राजा महाराजा पूर्व काल में इस प्रकार के थे। देखो, भगवान राम का जीवन कितना सर्वोपरि, भगवान कृष्ण का जीवन कितना सर्वोपरि, जिन्होंने जीवन में कोई पाप नही किया, वेदज्ञ थे। नीति सुन्दर होनी चाहिए, और वह नीति धर्म के साथ साथ होनी चाहिए।

त्याग से राष्ट्र

राष्ट्र उन मानवों से ऊँचा नही बनेगा, जो मानव मृत्यु के मुखारबिन्द में जाकर स्थान को नही त्यागना चाहते। ऐसे यह राष्ट्र और समाज ऊँचा नही बनेगा। जो संन्यास को जाने योग्य है, वह राजा कैसे? वह राष्ट्र का कार्य कैसे करेगा, क्योंकि उनका मस्तिष्क

वृद्धपन को प्राप्त होने जा रहा है उन्हें संन्यास को प्राप्त हो जाना चाहिए। हमारे यहाँ राजा महाराजा संन्यास धारण करते थे, वन को प्राप्त होकर ऋषि मुनियों की शिक्षा और उनके योग की प्रतिभा को पान करना, किसने नही किया? महाराजा भीष्म, सदा ब्रह्मचारी रहे संन्यास में रहे। कितने उज्ज्वल थे, उनका मस्तिष्क कितना प्रबल था, महाराजा नयूस अपने जेठे पुत्र को राज देकर भयंकर वन को चले गये। देखो, उस समय तृतीय अवस्था थी, जाकर महाराजा जड़ भरत से मोक्ष के लिए शिक्षा पाने के लिए तत्पर हो गये। आज के मानव ने यह स्वीकार कर लिया है, कि यह जो तुम्हें जनता का पालन करने का अधिकार है यह परमात्मा ने तुम्हें ही प्रदान कर दिया है। ऐसा आज का मानव स्वीकार करने लगा है, इसीलिए समाज में, राष्ट्र में, विद्यार्थीवाद में, शिक्षकों में अशान्ति का वातावरण है कहीं मानव मानव को निगलने के लिए तत्पर हो रहा है। जब मानव अनधिकार चेष्टा करता है, तो राष्ट्र में नाना प्रकार की क्रान्तियां उत्पन्न होने लगती है।

तो यह आज का हमारा वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कल समय देंगें तो मैं लोक लोकान्तरों की चर्चायें कल अधिक प्रगट कर सकूंगा। आज का तो मुझे इतना ही समय प्रदान किया गया था, मेरे शब्द वास्तव में कटुता को तो प्राप्त होते ही रहते हैं, क्योंकि यथार्थवाद में कटुता प्रायः होती रहती है, आज मैं यह उच्चारण करूं कि मैं यथार्थवाद में रमण करता हूँ, परन्तु यह नही। मेरे पूज्यपाद बहुत मधुरपन यथार्थ उच्चारण कर देते हैं, वह कटुता को मधुरता में परिवर्तित कर देते हैं, इतना ही केवल अन्तर हम दोनों में स्वीकार करते रहते हैं, परन्तु दोनों की वेदना एक ही तुल्य स्वीकार की गई है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः (हास्य के साथ) बेटावाक्य तो तुम्हारा ! बहुत ही सुन्दर रहा, परन्तु वह जो कटुता है, वह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार ही है, उसमें कोई सन्देश नही रहता। वास्तव में ऐसे शब्दों का प्रतिपादन करना सुन्दर नही हैं, सभ्य समाज में यह शब्द हानिकारक होते हैं, कोई बात नही हैं चन्द्र मण्डल की चर्चाएं तुमने प्रगट की हैं। आज

का वैज्ञानिक यह उच्चारण करता है कि चन्द्रमा में जीवन नही हैं?

पूज्य महानन्द जीः हाँ भगवन !

पूज्यपाद गुरुदेवः तो यह किस आधार पर स्वीकार करता है?

पूज्य महानन्द जीः भगवान अधिकरम् बृहस्ति अश्वन नमामि असो प्रति अस्मत क्योंकि उनके यन्त्रों ने कोई वाक्य स्वीकार नही किया।

विश्व संग्राम

पूज्यपाद गुरुदेवः तो अपने यन्त्र के आधार पर तो अब यह ऐसा है, कि बहुत समय के पश्चात पृथ्वी मण्डल के प्राणी को प्रतीत होगा, कि चन्द्रमा में जीवन है। जीवन की धाराएं वैसे ही प्राप्त नही होती। जहाँ प्राणी का शरीर, विचारधारा, आहार व्यवहार अच्छी प्रकार उसके अनुकूल नही होती, तो इसीलिए उनके जीवन की प्रतीति कुछ समय के पश्चात हुआ करती है, जब वह सर्वस्व मण्डल में भ्रमण कर लेते हैं। परन्तु जैसा तुमने उच्चारण किया था, कि किसी तट पर पंहुचे हैं, उत्तरी भाग में जिसको तुमने कोई रेखा भी उच्चारण की है, उसको हमारे यहाँ वेदों में, स्वनित नाम की रेखा कहते है। जो चन्द्रमा की अक्रुति स्वीकार की गई है। जहाँ पृथ्वी और चन्द्रमा दोनों की आकर्षण शक्ति का मिलान होता है उसको सोमभुक नाम का प्रतीक स्थान उसको कहते हैं इसी प्रकार चन्द्रमा और चन्द्रमा के ऊपरला भाग मण्डल है, जिसको हमारे यहाँ सोमधुक निधित मण्डल स्वीकार कहते हैं। जहाँ दोनों की आकर्षण शक्ति को स्वीकार करके हैं उस को माननतनित नाम की रेखा कहते हैं, जिसका वर्णन किसी काल में लोक लोकान्तरों की रेखाओं के वर्णन के समय में करेंगें। यह रेखाओं का प्राण और विश्वेभान मन, जिसको मैंने चर्चायें प्रगट की थी, उसके आधार पर होता रहता है। उसी के आधार पर मानव को पंहुचना बहुत सहज हो जाता है, बेटाउसकी प्रतिभा उसकी सर्वस्व वा !तांओं को जानने के लिए समय की आवश्यकता होती है। समय की प्रतिभा आती रहेगी। और मानव उसकी जानकारी को प्राप्त हो सकता है। परन्तु कितने समय में यह तुम कल उच्चारण कर सकोगे। समाज की जानकारी दृष्टिपात करो, कि कितने समय तक यह

विज्ञान प्रगतिशील होता रहेगा। क्योंकि हमने ऐसा स्वीकार किया है, कि जब चन्द्रमा को अच्छी प्रकार जानने का समय आता है, तो कोई न कोई विश्व संग्राम हो जाता है, जैसे राजा रावण का काल था, जैसे महाभारत का काल समाप्त हुआ है, सतोयुग में महाराज हिरण्यकश्यप का राष्ट्र था, उस काल में भी ऐसा हुआ। उसके पूर्व भी बहुत से काल ऐसे आते चले गएं हैं, जहाँ भौतिकवादी वैज्ञानिक चन्द्रमा में जाने के लिए तत्पर हुए हैं, जहाँ स्वर्श मण्डलों में भ्रमण करना मंगल का भ्रमण करना बुद्ध का भ्रमण करना, जिन पर इस पृथ्वी मण्डल का भौतिक वैज्ञानिक पंहुच पाता है, और पंहुचने के कुछ काल के पश्चात विश्व संग्राम हो जाता है, ऐसा प्रायः रहा है।

बेटाआगे की वार्त्ता तो प्रभु ही जानता ! है, आगे कैसा समय आयेगा। अब वाक्य यह कह रहा है कि चन्द्रमा पर जाने का लाभ क्या है? लाभ नही हो, परन्तु मानव की जो अन्तरात्मा है, मस्तिष्क है, हृदय है इसकी उत्कट इच्छा होती है, कि तू इस वस्तु को जानने का प्रयास कर, श्रवण करने का प्रयास कर। जैसे एक मानव किसी विज्ञान को नही जानता, परन्तु विज्ञान की वार्त्ताओं में उसके श्रोत्र कहते हैं, कि इसको श्रवण कर। उसकी अन्तरात्मा की वाणी होती है, हृदय की उत्कट इच्छा होती है, उसको जानने की, मानव शरीर में आ करके, उसको जानने के लिए यह उत्कट इच्छा होती है और यह जन्मसिद्ध अधिकार होता है परन्तु उसको जानता कोई कोई है, किसी किसी का मस्तिष्क होता है, जो बहुत सूक्ष्मता से प्रारब्धों के आधार पर बना हुआ होता है और कुछ प्रकृतिवाद में आ कर प्रयत्न करता है और प्रयत्न करते हुए उसमें सफल हो जाता है। यह उसकी जानकारी के लिए बहुत सुन्दर है। द्रव्य होता है, वह उस कार्य में लग जाता है क्योंकि द्रव्य जहाँ का था, वही लग गया, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का जन्म इसी जानकारी के लिए होता है। इसी आधार पर जन्म होता रहता है।

बेटाआज का वाक् जब समाप्त हो चला। तुमने यह जान पाया होगा !, कि जानकारी जो होती है वह मानव की उत्कट इच्छा होती है, एक मानव परमात्मा की संध्या उपासना कुछ नही कर पाता परन्तु उसकी इच्छा होती है, कि संध्या के प्रति तू कुछ श्रवण कर। इसी प्रकार भौतिकवाद में उसे इच्छा होती है। तत्त्व वह जानता है, कि

जल में कितनी तरंगें उत्पन्न होती हैं, अग्नि में कितनी तरंगें और वायु में कितनी तरंगें होती हैं, इन सब तरंगों को जानने के लिए, कितने प्रकार की तरंगे होती है जैसे हम ही है, हम किसी काल में यज्ञ के कर्म में बड़े दक्ष रहे, अब वार्त्ता हमसे दूर चली गई, हम यह जानते थे किस किस समिधा में कितने प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं, , कितने परमाणुओं का उसमे सें जन्म होता है। अग्नि के परमाणु कितने होते हैं, जल के परमाणु कितने होते हैं और उसमें वायु के कितने परमाणु मिश्रण करते हैं। और पृथ्वी में कितने परमाणु चले जाते हैं, तो यह मानव की जानकारी होती है। जानकारी करना हमारा कर्तव्य होता है और मानव को करना चाहिए।

तो आज का हमारा वाक्य समाप्त, कल बेटा सूक्ष्म समय तुम्हें प्रदान किया जा ! सकेगा। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है, कि वेद जो पवित्र ज्ञान है, उसको मनके बना लेना चाहिए और मन और वाणी दोनों का समन्वय करते हुए, धागा बना करके वेद रूपी ऋचाओं के मनकों को उसमें पिरो लेना चाहिए। वह एक प्रकार की माला बन जाएगी। वाणी से उच्चारण करो, मन उसको श्रवण करने वाला हो और प्राण उसको प्रत्येक श्वास के द्वारा वायुमण्डल में प्रसारण करने वाला हो, तो मानव ज्ञान और विज्ञान में पारंगत हो जाता है उसकी व्यापक प्रवृत्ति बन जाती है। यह आज का वाक् समाप्त हो गया, अब वेद पाठ होगा।

३ 23 08 1969 पुष्प 13 चंद्रमण्डल तथा पवित्रवाद

देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व की भांति जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, वेद की परम्परा अथवा उसका ज्ञान और विज्ञान और उसकी प्रतिभा का सुन्दर वर्णन आता रहता हैं। आज हम प्यारे प्रभु की याचना करते चले जा रहे थे, जो परमपिता परमात्मा प्राणी मात्र का, आनन्द प्रदान करने वाला है और वह सदैव महान आनन्द को प्रदान करता ही रहता है। आज हम उस प्यारे प्रभु का गुणगान गाते चले जाएं। हे परमात्मन् ! तू अनन्त है, तेरी जो रचना है, वह भी महान और अनन्त है, तू नियन्ता है, ब्रह्माण्ड

को सुन्दर रूपों से और केवल संकल्प मात्र से रचता है। उस प्रभु का जो संकल्प है, वह कितना महान है, आज जब हम प्रभु का गुणगान गाते है, तो हमारा हृदय गद गद हो जाता है।

प्रभु की महिमा

कल मेरे प्यारेमहानन्द ने बहुत सुन्दर विवेचनाएं की !, परन्तु जब हम वेद की प्रतिभा को विचार विनिमय करते लगते हैं, तो कितना ही संसार का विशेषज्ञ और व्याख्याता हो, वह केवल सूर्य के एक सूक्ष्म से प्रकाश के तुल्य ही रहता है, क्योंकि उसका ज्ञान अनन्त है और महानता से परणित है। आज हम प्रकृति में प्रभु का सन्निधान मात्र ही स्वीकार करते हैं, और प्रकृति को स्वभाव उमड़ने लगता है, परन्तु जब हम यह विचारते हैं, कि मानव विज्ञान में क्या, किसी भी आँगन में अभिमान का अधिकारी नही होता, वह अपने गौरव से यह नही उच्चारण कर सकता, कि मैंने इस वस्तु को जाना है, उस पर वह अभिमान नही कर सकता, उसे अधिकर ही नही हैं, क्योंकि जिस वस्तु को मानव जानने का प्रयास करता है, वह जो प्यारा देव प्रभु है, वह इतना महान और अलौकिक है, कि उसने उन वस्तुओं को तेरे विचारने से पूर्व उनका निर्माण कर दिया, उनको उत्पन्न कर दिया है एक मानव यह विचारने लगता है, कि मैं लोक लोकान्तरों की यात्रा करता हूँ, परन्तु मानव के द्वारा मेरे प्यारेप्रभु ने मन को ऐसा रचा है !, जिसकी गति इतनी तीव्र है, जिसका हमारे द्वारा कोई प्रमाण ही नही हैं। कोई भी वैज्ञानिक उस मन की गति को नही जान सकता, कि उसमें कितनी गति है, इसमें गति क्यों हैं? क्योंकि प्रभु के संकल्प और सन्निधान मात्र से है।

परन्तु जब वह विचारने लगते हैं कि वह प्रभु कितना महान और अलौकिक है तो मानव को अभिमान, विडम्बना का यहाँ कोई स्थान नही रह जाता है, क्योंकि वह तो इतना देव है, कि उसके देवतव का वर्णन नही कर पा सकते। एक योगी है, यौगिकता में रमण कर जाता है, वह यह जानने लगता है, कि मैंने अमुक वस्तु को जाना है, अमुक ज्ञान को जाना है, परन्तु जो ज्ञान तूने जानने का प्रयास किया है योगेश्वर! वह जो वेदों

में पुनः था। तेरी प्रारब्ध और तेरे जो ऊँचे संस्कार थे, परमात्मा से मिलन के तेरे हृदय में वेदना हुई, उसी वेदना के साथ तूने पवित्रता और उस महान प्रभु की प्रतिभा को जानने का प्रयास किया, वह तुझे प्राप्त हो गई, वह सर्वश नही होती, सूक्ष्मता से, क्योंकि वाणी का माप नही हो सकता, बुद्धि का कोई माप नही है, अंत में मानव नेति नेति उच्चारण करता है।

प्रभु की अलौकिकता

आज मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ अपने लोकों की चर्चायें प्रगट करेंगें। उससे पूर्व हम ! यह उच्चारण कर दें, कि वह प्रभु कितना अलौकिक है, कितना देव है एक मानव राष्ट्रवेत्ता बन जाता है, राष्ट्रीयता को धारण करने में वह दक्ष रहता है, और उसके द्वारा स्वार्थ की मात्रा आने से उसकी दक्षता भी समाप्त हो जाती है, परन्तु यदि राजा यह विचारने लगे, कि मैंने राष्ट्र का निर्माण किया और मैं राष्ट्र पिता हूँ, तो अरे, मानव! तू राष्ट्र पिता क्या बन सकता है? जो वह प्रभु है, उस प्रभु की राष्ट्रीयता पर विचार विनिमय करो, कि प्रभु ने जो लोक सृष्टि के प्रारम्भ में रचा दिया और जो उनमें जितनी अंतर्द्वंता है वह सृष्टि के अन्त तक उसी प्रकार उसकी प्रक्रिया रहेगी। कितन नियम है, कितना नियन्त्रण है, हे मानव तू तो आज राजा बन करके अपने स्वार्थ में कामातुर हो करके ! भी तेरा संकल्प भंग हो सकता है, परन्तु प्रभु की विचित्रता देखो, एक दूसरा लोक दूसरे से मिलन नही कर पाता और पृथ्वी अपने मार्ग में भ्रमण कर रही है। वसुन्धरा के गर्भ में नाना प्रकार का खनिज और खाद्य उत्पन्न होता रहता है, परन्तु उसका मूल वह प्रभु है, वह देव है, वह चेतना है जिस चेतना के आधार पर यह सर्वश ब्रह्माण्ड क्रियाशील हो रहा है।

मेरे प्यारे !ऋषिवर! आज के वेदपाठ में कितने कितने सुन्दर लोकों की रचना का और उनकी प्रक्रियाओं का, वहाँ के प्राणियों का वर्णन आता रहता है। वेदों का ज्ञान कितना सर्वोतम और कितना परिपक्व है, इस ज्ञान के ऊपर विचार विनिमय और अनुसन्धान करना प्रत्येक मानव का कर्तव्य हो जाता है। मैं आज कोई अधिक चर्चा प्रगट नही

करूंगा, केवल यह कि आज हम प्रभु की रचना पर विचार विनिमय और अनुसन्धान करें। मेरे प्यारेमहानन्द जी ! यह विचार करेंगें, प्रकृति से स्वाभाविक क्या क्या कार्य होता है।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् शन्नः गृत्यां रथि बन्धना व्याकृति देवम् नमः भी नमुस्त्वते नमः। ....धन्यवाद

नम्रता

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अथवा ऋषि मण्डलः !! मेरे भद्र समाज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ! कितने करूणामयी हैं, उन्होंने पुनः यह समय प्रदान किया। इस समय कितनी सुन्दर उनकी वार्त्ता थी, प्रभु की महती पर उनका विचार विनिमय और विचारकों के लिए उन्हें बड़ा सुन्दर ज्ञान प्राप्त होता है। जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं, कि हमारा ज्ञान अल्पज्ञ है, पूर्णत्व नही हैं। वह जो पूर्ण ज्ञान का भण्डार है वह अनुपम देव है मैंने अपने पूज्याद गुरुदेव का वर्णन कराते हुए कहा था, कि आज हम सभी प्रकृति के क्षेत्र में आए हैं और यहाँ यौगिकवाद, मानववाद, राष्ट्रवाद, आत्मवाद, नाना प्रकार के वाद ही वाद हैं मानव को यह विचार विनिमय करना है कि हमें रूढ़िवाद से दूर होना है। जब मानव विज्ञान के गर्भ में जाता है, वहाँ रूढ़ि नही रहती। जब मानव यौगिकवाद में जाता है, तो वहाँ वाद और रूढ़ि नही रहती। रूढ़ि समाप्त हो जाती है। प्रकृति और ब्रह्म दोनों ही ऐसे हैं, जिनकी गोद में जाने से मानव की रूढ़ियां समाप्त हो जाती हैं। परन्तु एक वाक्य है, कि प्रकृति की गोद में जाने से रूढ़ि तो रहती नही, परन्तु अभिमान की मात्रा उत्पन्न हो जाती है यौगिकवाद में जाने से रूढ़ि भी नही रहती और अभिमान भी नही रहता और नम्रता की उत्पति हो जाती है यह वाक्य अनुभव का है।

वायुमण्डल का अन्तर्द्वन्द्व

आज का मानव विचारता है, कि मैंने नाना प्रकार के यन्त्रों को रचा है कि एक दूसरा मानव कहीं का कहीं वाक्य प्रगट करने लगता है और मैं यन्त्रों के द्वारा दूसरे लोकों में जाता हूँ और वहाँ के चित्र भी यन्त्रों के द्वारा प्रकाशित होने लगते हैं, परन्तु जब प्रभु

की रचना पर विचार विनिमय किया जाता है और यह विचारा जाता है कि प्रभु की महता कितनी उत्तम है आज जो मानव ने जाना है वह पुनः मानव के मस्तिष्क में है, क्योंकि प्रभु ने वह जन्मते ही मस्तिष्क में ओत प्रोत करा दिया है। एक मानव है, वह अपने मार्ग में भ्रमण कर रहा है, द्वितीय मार्ग से मानव आता है वह उसका नामोच्चारण करता है और वही मानव उसके समीप आने लगता है। इसी प्रकार वायुमण्डल में तरंगें भ्रमण कर रही हैं, क्योंकि वह वायुमण्डल का अन्तर्द्वन्द्व था, अन्तरिक्ष का अन्तर्द्वन्द्व उनके मध्य में होने के कारण वही मानव कहता है कहिए भगवन आप मुझे वाणी से ! उच्चारण कर रहे थे, मेरा नामोच्चारण करते हुए। तो इसी प्रकार जब नामोच्चारण होता है, तो वह मानव उसके समीप आ जाता है, समीप आने के पश्चात उनकी विवेचनाएं होती हैं अहा और क्यों नही उच्चारण करता उन वाक्यों को? इसीलिए नही करता, क्योंकि वाणी का जो सम्बोधन था, वह केवल उसी मानव से सम्बोधित था, इसी प्रकार एक मानव मानो यन्त्र बनाता है। और यन्त्र से अपनी वाणी को प्रसारित कर देता है, वह तरंगित हैं यन्त्र के द्वारा, अब जो यन्त्र उस यन्त्र से सम्बन्धित होगा, वह शब्द उसी के द्वारा आते रहते हैं, उसी यन्त्र में आयेंगें। क्यों नही आते, दूसरे यन्त्रों में? इसीलिए नही आते, क्योंकि वह उसी को सम्बोधित करते हैं। यह है प्रभु की रचना, कि एक मानव दूसरे मानव से सहस्रों योजन दूरी पर विद्यमान है परन्तु, जब वह अपनी मानो मानसिक वेदना से उसको स्मरण करता है, तो उसकी वेदना की, इतनी तरंगें होती हैं, कि एक क्षण भर में तरंगें उसके समीप पंहुचा देती हैं। समय नही प्राप्त होता, परन्तु मन जान लेता है, मन की जो कल्पना है, वह जान लेती है, इसी प्रकार यह जो प्राण के ऊपर जो शब्द है, मानो जो वस्तु इसके ऊपर सवार हो जाती है, वह बहुत तीव्र गति से भ्रमण करती है।

संस्कारों का केंद्र

आज चन्द्रमा की यात्रा करने वाला प्राणी, यह वाक्य उच्चारण करने के लिए तत्पर हो रहा है, कि मैं जो वहाँ वाक्य उच्चारण करता हूँ, मैंने जो वहाँ विश्राम किया है, उसका

चित्र पृथ्वी मण्डल पर आता है। यह तो प्रभु ने पूर्व ही रचना रच दी है, क्योंकि मानव के शरीर में जो चित्त नाम की वस्तु है, उस चित्त में जन्म जन्मान्तरों के ऐसे संस्कार होते हैं, एक मानव जो बाल्यकाल में किसी नगर को दृष्टिपात किया है और वह मानव उस नगर का स्मरण होने जा रहा है, तो मानव के मस्तिष्क में पुनः उस नगर की स्मरण शक्ति उसके समीप आने लगती है उसका क्या कारण है? क्योंकि वह जो चित्त का अन्तःकरण है, वह संस्कारों का केन्द्र हैं, इसी प्रकार जब इतनी तीव्रगति है और मन एक क्षण समय नही लगाता, परन्तु चित्त लाता रहता है और मानव के चित्त में कितनी विचित्रता है, सर्वश राष्ट्र उसके अन्तःकरण में समाहित हो जाता है, समाहित होने के पश्चात मानो इसी प्रकार चन्द्रमा में जाने वाले व्यक्तियों की प्रबल अस्वस्थ गति मानी गई है। जब हम विचारने लगते हैं, कि वास्तव में भौतिक विज्ञान में और आध्यात्मिक विज्ञान में अन्तर्द्वन्द्व है, परन्तु दोनों एक ही तुल्य माने जाते हैं, परन्तु जब योगी आगे जाता है, तो विज्ञान से आगे चला जाता है, इस भौतिकवाद से आगे चला जाता है, उसकी अग्रहणी गति बन जाती है, क्योंकि उसमें नम्रता, मानवतव, सूक्ष्मता और विज्ञान की प्रतिभा एक महानता में परणित हो जाती है।

चन्द्रमा में जीवन

इसी प्रकार जब यह विचार विनिमय किया जाता है, कि चन्द्रा मृते अस्ते आज का मानव यह भी उच्चारण कर सकता है, परन्तु मैं भी यह उच्चारण कर सकता हूँ, मैं आज उन वाक्यों को उच्चारण तो करना नही चाहता, परन्तु किए देता हूँ। वह यह है कि आज का मानव यह वाक्य भी उच्चारण कर सकता है कि आज हम चन्द्रमा में जाएंगें, तो क्या हम उन प्राणियों को दृष्टिपात कर सकते हैं, जो चन्द्रमा में विश्राम करने वाले है? क्या उनके कार्यालयों को हम दृष्टिपात करेंगें? क्या यन्त्रों के द्वारा जाने के पश्चात, यन्त्रों के द्वारा हम वहाँ भ्रमण कर सकते हैं? कार्यालयों में जा सकते हैं? या हमें किसी यन्त्र की आवश्यकता होगी उन प्राणियों को दृष्टिपात करने के लिए? तो मैंने इसका उत्तर बहुत पूर्व काल में दिया था और वह यह था कि जब यहाँ का प्राणी जाता है, वह यन्त्र

के द्वारा भी वहाँ के प्राणी को दृष्टिपात कर सकता है और बिना यन्त्र के भी दृष्टिपात कर सकता है, कार्यालयों को भी दृष्टिपात कर सकता है, जब तुम्हें वहाँ पृथ्वी दृष्टिपात आती है, तो तुम्हें वहाँ के प्राणी भी दृष्टिपात आयेंगें, परन्तु उनका वातावरण, उनकी जो वाणी है उसको तुम जान नही पाओगे। उनकी वाणी में अन्तर है। परन्तु यह भी माना गया है, दृष्टिपात किया गया है, कि वहाँ का जो सुन्दरवाद है मानो वह बहुत ही सुन्दर है। इतना सुन्दर है, कि मानव अप्प्रतियों में रमण कर सकता है।

मैंने कल के वाक्यों में कहा कि मानव केवल यन्त्रों के द्वारा, अपनी कृति के द्वारा, पृथ्वी मण्डल के कुछ तत्वों को ले करके, वहाँ छह माह तक जीवित रहने की सम्भावना है, उसके आगे इस पार्थिव तत्त्व के मानव का असम्भव है, रहा यह वाक्य कि सूक्ष्म शरीर वाला कोई आत्मा रहना चाहता है, तो उसके लिए कोई असम्भव नही हैं, उसके लिए कोई भी लोक असम्भव नही है, उसके लिए सूर्य भी असम्भव नही हैं।

रहा यह वाक्य कि हम चन्द्रमा में जाना चाहते हैं, चन्द्रमा की यात्रा में हम सफलता को प्राप्त हुए। इसका तो मुझे बड़ा आनन्द हैं, मेरा हृदय तो बड़ा ही प्रसन्न रहता है, जब मैं यह दृष्टिपात करता हूँ कि आज का मानव चन्द्रमा के तट पर पंहुच गया है, मानधुक रेखा के समीप चला गया है, क्योंकि द्रव्य होता ही ऐसे कार्यों के लिए है। मानो द्रव्य भोग विलास के लिए अधिक नही होता। भोगविलास की सामग्री तो मानव के लिए नाम मात्र की होती है। आज जो इस प्रकार के भौतिकवादी होती है, उनमें अभिमान हो क्यों? प्रकृति के तत्त्व होने के नाते, परन्तु वह भी एक विशेष प्रकार के यागी होते हैं, जो अपने जीवन की आशा को त्याग करके, वह मृत्यु के मुखारबिन्द में जाते हैं, मृत्यु से उन्हें भय नही होता। योगी भी इसी प्रकार का होता है कि उसे भी मृत्यु का भय नहीं होता । मानो इन्हें तो जानकारी के लिए यह संसार से और प्रकृतिवाद में उदासीन उन कार्यों में होता है प्रकृतिवाद में क्या हैं? मानो ज्ञानवाद में ब्रह्म की चेतना नही है। दोनों की तुलना तो एक तुल्य नही होती, परन्तु मृत्यु से दोनों का भय नही होता। दोनों निर्भय होते हैं। भौतिकवादी भी और आध्यात्मिकवादी भी इसी प्रकार

मुझे बड़ी प्रसन्नता है।

मंगल मण्डल के प्राणी

आज मैं वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूँ मंगल मण्डल में जाईएं। मंगल मण्डल के प्राणियों के जीवन की कितनी धाराएं होंगी, वहाँ का वायुमण्डल, वहां का जो भोजन इत्यादि है, वह तुम्हें पृथ्वी मण्डल जैसा प्राप्त होगा, क्योंकि वहाँ पार्थिव तत्त्व अधिक माना गया है। वहाँ सुविधायें भी सुन्दर होती हैं, विज्ञान भी परिपक्व होता है। भौतिक विज्ञान यहाँ का पृथ्वी मण्डल से पराकाष्ठा को प्राप्त होता है और प्रबल होता है, क्योंकि उन्होंने ऐसी ऐसी धातुओं को, अब तक प्राप्त कर लिया है, मुझे स्मरण है कि वहाँ एक वैज्ञानिक जिसका नाम सोमनानिक नाम का वैज्ञानिक है, जो मंगल मण्डल का है, परन्तु उसका यन्त्र पृथ्वी मण्डल तक की यात्रा करता रहता है, जिसको सानभुति यन्त्र कहते है, सोमभावली यन्त्र कहते हैं, वह यन्त्र पृथ्वी मण्डल में और समुद्रों की यात्रा करता रहता है, उस यन्त्र में इतनी महान शक्ति होती है, कि यहाँ पृथ्वी मण्डल का वैज्ञानिक अब से सौ वर्ष के पश्चात, इतनी सूक्ष्म धातु को नही जाने पाएगा। मैं इन वाक्यों को अधिक नही उच्चारण करना चाहता। मंगल मण्डल का एक वैज्ञानिक है, जिसका नाम सौनिक है, उस वैज्ञानिक ने यह जाना है कि यह जो मेरा यन्त्र पृथ्वी मण्डल तक जाने को तत्पर होता है, तो यहाँ मंगल मण्डल का प्राणी पृथ्वी की परिक्रमा करके, पृथ्वी की सब जानकारी लेकर वापिस चला जाता है, आज तक देखो, एक सौ बीस समय वहाँ का प्राणी, वहाँ से यहाँ आया है और चला गया है।

मैं इन वाक्यों को अधिकता में नही ले जाना चाहता हूँ। केवल यह कि वहाँ का वैज्ञानिक बहुत ही सुन्दर है और महान भी है और उनके द्वारा महानता की प्रतिभा है वह वाक्य मैंने बहुत पूर्व काल में भी उच्चारण किया था, आज भी मुझे स्मरण हैं मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से एक समय प्रार्थना की थी, कि हे प्रभु लोक लोकान्तरों में क्या ! होता है, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बड़े रूपों में निरूपण किया है, आज मैं उन निरूपणों में क्यों ले जाऊं। आज मुझे समय प्राप्त हो नही रहा हैं। कि उन वाक्यों पर

टिप्पणी करता रहूँ। केवल वाक्य यह प्रारम्भ करना है, कि इसी प्रकार यहाँ का चन्द्र मण्डल ब्रह्म अस्ति देखो, चन्द्र मण्डल का वैज्ञानिक जिसको स्वानिन कहते हैं परन्तु वह जो स्वानिन है, वह भी वैज्ञानिक है। परन्तु वह शानाकृति लोक में उसका यन्त्र जाता रहता है, जिससे चन्द्रमा की प्रतिभा मिलान करती रहती है। आगे पृथ्वी तक आने के लिए, उनका जो वायु मण्डल है, उनकी जो अत्यन्त धातु है, वह यहाँ तक तो आने के लिए तत्पर रहती है, क्योंकि शक्तिशाली भी है, अग्निन भी है, अब रहा यह कि मैं इन वाक्यों में, विज्ञान के युग में क्यों जाऊं। मैं विज्ञान के युग में जाना नही चाहता। आज मानव को मैं इस वाक्य को इसीलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि मानव को यह अभिमान न हो जाएं, कि हम पृथ्वी मण्डल के प्राणी वैज्ञानिक हैं। संसार में जितना भी प्रभु का मण्डल है, जितना भी यह प्रभु का ब्रह्माण्ड है, जहाँ जहाँ प्राणी रहते हैं, उन सभी प्राणियों की इच्छा भी है, द्वेष भी है, वैज्ञानिक भी है आध्यात्मिक वेत्ता और योगी इत्यादि भी हैं। आज यही नही जान लेना चाहिए कि हम पृथ्वीवादी ही इस प्रकार के हैं, क्योंकि पृथ्वी मण्डल पर वास्तव में ऐसा होता रहता है, आज नही परम्परा से होता चला आया है । राजा हिरण्यकश्यप का जो पुत्र, जिसको प्रहलाद कहते थे, उसका जीवन मुझे स्मरण है। प्रहलाद जी थे, वह ध्रुव मण्डल तक पंहुच गएं थे। उस काल में, उनका इतना महान, प्रबल विज्ञान था। वह किस प्रकार जाते थे, वह विषय मेरा किसी काल में रहेगा. यदि पूज्यपाद गुरुदेव आज्ञा देंगें तो।

प्रकृति से स्वभाव

मैं यह उच्चारण करने जा रहा था, कि यह है आज का हमारा विज्ञानवाद । रहा यह वाक्य कि प्रकृति से स्वभाव उत्पन्न होता रहता है। जैसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया है। माता का पुत्र है। माता का पुत्र उसके समीप आते ही, माता की लोरियों से स्वाभाविक दुग्ध उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार यह जो प्रकृति है। जब इसके तत्त्वों को तुम जानने लगोगे, मानो इसमें नाना प्रकार की धातुओं को एक दूसरे में मिलान करने की शक्ति तुमें आ जाएगी, उस समय आप से आप ही मानो उसके स्वभाव से

ही, क्योंकि जैसे प्रभु का सन्निधान मात्र है, इसी प्रकार नाना प्रकार के परमाणुवाद को एक दूसरे से मिलान करने से प्रकृति का स्वभाव उमड़ आता है, वह प्रकृति के स्वभाव के द्वारा ही नाना प्रकार के यन्त्रों की उत्पति हो जाती है आज जो चन्द्रमा में जाने वाले यन्त्र हैं उसमें कई धातु इस प्रकार की है, जो विशेष मानी गई हैं और मुझे स्मरण है कि इससे भी सूक्ष्म जो धातु है जैसे स्वानागृति आस्वानी धातु है, त्रिगण अनथ नाम की धातु है दोनों का मिलान करते रहो, तो यह जो विद्युत है, इस विद्युत से सहस्रों गुणी जो अधिक शक्तिशाली तरंगें वायुमण्डल में और अन्तरिक्ष में भ्रमण करती हैं, वह स्वाभाविक ही दोनों प्रकार के परमाणुओं के मिलान करने से वह परमाणु आने प्रारम्भ हो जाएंगें।

महर्षि भारद्वाज के आश्रम में पूज्य महानन्द जी

परन्तु वह जो मंगल मण्डल से, इस पृथ्वी मण्डल से यन्त्र आता है, उस यन्त्र से जो एक सौ पांच गुणा शक्तिशाली, वह यन्त्र कहलाता है। रहा यह वाक्य कि इन धातुओं को मिलाने वाले वैज्ञानिक होने चाहिएं मुझे स्मरण है जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आश्रम में शिक्षा अध्ययन करता था, उस समय मेरा जीवन तो एक आश्चर्यजनक रहा है, परन्तु जीवन को क्यों उच्चारण करूं, केवल वाक्य यह उच्चारण करना है कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय मुझे आज्ञा दी, कि आप भारद्वाज आश्रम में पंहुचो। जब मैं उनके आश्रम में पंहुचा तो उनके आश्रम में महर्षि रेवक और महर्षि पिप्लाद दोनों ऋषि विराजमान थे। वह ब्रह्म और प्रकृति की चर्चा करने आए थे। जब दोनों यह चर्चा करने लगे, तो मैं भी वहाँ पंहुचा। वहाँ एक दूसरी धातु का मिलान हो रहा था, महर्षि भारद्वाज की विशेष विज्ञानशाला थी, जहाँ ब्रह्मचारियों की विद्या अध्ययन कराते थें, महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारियों से यह भी कहा करते थे, कि तुम इस विद्या को जान लो और इसका प्रयोग भी कर लो, इसको सब कुछ करो, परन्तु इससे आचरण की भ्रष्टता हो जाती है, इसीलिए इसके ऊपर तुम अधिक न जाओ। ब्रह्म की चेतना को अधिक

जानने का प्रयास करो।

महर्षि भारद्वाज जी ने जब ऐसा कहा, तो मैं बड़ा व्याकुल होकर के अपने गुरुदेव के द्वार आया और प्रश्न किया, कि महर्षि भारद्वाज ऐसा क्यों उच्चारण कर रहे हैं, क्योंकि संसार में मानव का विकास विज्ञान से होता है, जितना विज्ञान होता है उतनी ही सुविधायें होती है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि नही, पुत्र! ऐसा नही होता है। उन्होंने इसीलिए कहा है, क्योंकि ब्रह्म की चेतना से मानव की अंतरात्मा का विकास होता है तो अन्तरात्मा का जो विकास होता है, वह भौतिक विज्ञान से सहस्रों, लाखों गुणा अधिक होता है, इसीलिए उसको जानने के लिए अधिक बल दिया करते थे।

उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है कि हमारे ऋषि मुनि इस विद्या और इस विज्ञान को परम्परा से जानते हैं, हमारा तो जन्म सिद्ध अधिकार है, क्योंकि जिसने अपने सूक्ष्म, कारण और स्थूल तीनों शरीरों को जाना है, उसके यहाँ यह जो कहीं भौतिक विज्ञान है, वह उससे दूर नही होता। एक योगी सूक्ष्म शरीर वाला है और एक भौतिक विज्ञानवेत्ता है, वह केवल अपने यन्त्रों द्वारा जाता है, परन्तु सूक्ष्म शरीर वाला जो है वह सर्वश लोकों में भ्रमण कर आता है, अग्नि उसको भस्म नही कर सकती, जल उसको नष्ट नही कर सकता, वायु उसको तीव्र गति नही दे सकती। जब तीव्र गति नही दे सकती, क्योंकि वहाँ तत्त्वों का समूह रहता है और उसको अग्नि नष्ट नही कर सकती, तो उसके लिए चन्द्रमा की और सूर्य की यात्रा करना बहुत सहज हो जाता है। परन्तु आज का मानव कहता है, कि यह केवल कल्पनामात्र है, क्योंकि ऐसे योगी अब क्यों नही हैं? परन्तु योगी है, जो पर्वतों की कन्दराओं में विराजमान हैं, जो अपनी यात्रा कर लेते हैं, शान्त हो जाते हैं।

रहा यह वाक्य कि आज कोई मानव यह उच्चारण करे, कि इन बड़े बड़े ऊँचे गृहों में योगी प्राप्त हो जाएं, तो यह असम्भव है। क्या कहीं ऊँचे गृहों में, राष्ट्र गृहों में योगी प्राप्त होंगें, योगी तो कहीं वहाँ प्राप्त होंगे जैसे महर्षि रेवक मुनि को कहा था, महाराजा ज्ञानश्रुति जी ने अपृतं देखो, जैसा आक्रातम् ब्रह्मणे अस्ति देखो, उनके मन्त्री जी ने कहा था कि आप रेवक हैं?, हां महाराज! गाड़ी के नीचे अपने जीवन को व्यतीत करने वाले

थे। महर्षि लोमश के जीवन से मुझे प्राप्त होता है, कि वह एक आसन लिए रहते थें, सहस्रां वर्षों की अवस्था होते हुए एक आसन पर रहते थे। तो आज कोई मानव यह कल्पना करने लगे, कि आज मुझे योगी प्राप्त हो जाएं, परन्तु योगी तो जब प्राप्त होंगें, जब तुम योगी के जिज्ञासु बनोगे। आज जब जिज्ञासा नही हैं, जिज्ञासा तो भोग विलासों की हैं, जिज्ञासा तो रसना की पूर्ति करने की है, रसना तो दूसरे के रस को पान करने की है, आज मानव यह कल्पना करे, कि वह ऋषि आज क्यों नही है? वह सूक्ष्म शरीर वाली आत्मा तुम्हें कैसे प्राप्त हों, जब तुम्हारे ज्ञान के द्वारा ही अन्तर्द्वन्द्व समाप्त नही होता। आज का मानव यह कहता है कि मांस का आहार करने वाले ही चन्द्रमा पर जा पंहुचे और जो अहिंसा का उपदेश देते हैं, वह यहाँ से यहाँ भी नही जा सकते। यह वाक्य बहुत सुन्दर हैं, आज इन विडम्बनाओं में मानव क्यों जाने लगा। इसीलिए जाने लगा, क्योंकि उसे भी अपनी रसना की पूर्ति करनी है, उसी प्रकार जब उसके मन में यह विडम्बना रहती है, कि आज मांस का आहार करने वाला प्राणी कहाँ चला गया। देखो, जो भौतिक विज्ञान होता है, वह मानव के संस्कारों से ही होता है, यह मांस से सम्बन्धित नही होता। यह जो मानव के द्वारा प्रकृतिवाद है, इसमें मानव हिंसक बन जाता है। उसके मस्तिष्क पर हिंसक का इतना प्रभु नही होता क्योंकि वह प्रकृतिवाद में जो है, जब चेतना को जानोगे और चेतना वाला जो विज्ञान है, उसको जानोगे तो तुम्हें प्राप्त होगा कि मांस प्राप्त करने में कितनी हानि होती है और मुझे कितना सूक्ष्म बनना था।

अहिंसा परमोधर्म की मीमांसा

यह वाक्य कि चन्द्रमा में जाना है अथव मंगल में जाना है, यह भी तो सूक्ष्म विज्ञान है, मैं यह उच्चारण नही करता हूँ, कि यह सूक्ष्म नही हैं, परन्तु इसे अति सूक्ष्म नहीं कह सकते, परन्तु यह जो आहार व्यवहार है यह अति सूक्ष्मता में जाने से इसकी प्रतिभा का ज्ञान होता है। जहाँ तक एक दूसरी धातु के मिलान का प्रश्न है। और प्रकृति उसको देन देती है, तो मांस खाने से इसका कोई प्रश्न नही हैं, यह तो विषय ही दूसरे हैं,

आज का मानव यह उच्चारण करता रहता है, कि मांस खाने वाले ने चन्द्रमा की यात्रा कर ली और अहिंसा परमोधर्म का जानने वाला पर्वतों तक भी नही जा सकता, मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ कि अहिंसा परमोधर्म की मीमांसा क्या है? यह मानव को विचारना होगा। अहिसा परमोधर्म की मीमांसा, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराई है और बहुत सुन्दर रूपों में इसका निरूपण किया है। रहा यह वाक्य, कि मेरा जो विषय, दूसरा न बन जाएं। मैं इन प्रश्नों का उत्तर इसीलिए दे रहा हूँ, क्योंकि यह मेरा विषय है, मेरे हृदय में स्वयं यह उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है, हम यह जानने का स्वतः प्रयास करेंगें, कि हम अहिंसा परमोधर्म कहते किसे हैं, अहिंसा परमोधर्म की मीमांसा क्या है और यह जो चन्द्रमा में जाने वाले यन्त्रों की मीमांसा है, यह क्या है? भौतिकवाद की मीमांसा यह है कि भौतिकवाद केवल इस वाक्य को जानता है, परन्तु इस प्रकार का मांस पान नही करता, जैसे आज के प्राणियों ने, जहाँ का जो मानव है, वहाँ का वह मानव मांस पान करता है, परन्तु वह मांस को पान करता और उसकी जो सूक्ष्म तरंगें, जो वेदना होती है, वह अन्तरात्मा को ही प्रभावित करती हैं। परन्तु वहाँ जो नाना प्रकार के यन्त्र है, उसका उसके ऊपर कोई किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व, उस पर नही आता। जब अंतर्द्वंद्व ही नहीं आता तो उसका यहाँ प्रश्न ही उत्पन्न नही होता, परन्तु अहिंसा परमोधर्म की आवश्यकता मानव को आत्मिक ज्ञान में होती है, और मानव की मानवता में होती है, मैं इस विषय में आगे नही जाना चाहता हूँ, केवल वाक्य यह प्रगट करने जा रहा था, कि मानव को प्रत्येक वाक्य को बहुत विचारना है और सूक्ष्मता से विचारना है, मांस को और चन्द्रमा में जाने वाले का प्रश्न उत्पन्न नही होता। यहाँ प्रश्न है कि मानव यन्त्रों द्वारा चन्द्रमा में चला गया, यथार्थ है क्योंकि नाना प्रकार की धातु हैं, तरंगें हैं, इनको जानता है। इनको मैं भी जानता हूँ, मेरे पूज्यपाद ने मुझे आज से लाखों वर्षों पूर्व इस का ज्ञान करा दिया था और इन धातुओं का भी ज्ञान कराया था, परन्तु उनको उच्चारण करने से लाभ क्या? मैं चन्द्रमा में क्यों चला जाऊं? मुझे क्या लाभ है जाने में, मुझे कोई अन्तर्द्वन्द्व नही हैं, मेरे लिए स्पष्ट मार्ग है, मैं उस मार्ग को प्राप्त कर सकता हूँ, परन्तु उससे मुझे कोई लाभ प्राप्त नहीं होता। लाभ

तो केवल उस प्रभु की चेतना में हैं, क्योंकि प्रभु की चेतना सर्वत्र ओत प्रोत है, उसको जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है।

पुरोहित का कर्तव्य

मैं एक वाक्य और उच्चारण करना चाहता हूँ कि कल मैंने कुछ राष्ट्र की चर्चायें प्रगट की थीं, कि आज का राष्ट्र किस प्रकार का है। आज मुझे यह चर्चा प्रगट करनी है, कि आज के राष्ट्र को करना क्या है आज का राष्ट्र कैसे उन्नतिशील हो सकता है। राष्ट्र के समक्ष नाना प्रकार की समस्यायें होती हैं, उनको विचारना है सबसे प्रथम यह अपनी वैदिकता को लाने का प्रयास करें। वैदिकता का जो साम्राज्य है, मानो वैदिकता का जो साम्यवाद है, उसको लाने का मानव को प्रयास करना होगा, क्योंकि यह भारत भूमि परम्परा से ऋषि मुनियों की भूमि चली आई है। आज भी यह ऋषि मुनियों की भूमि ही रहेगी। यहाँ कणाद और गौतम और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यहाँ रहे हैं और भी नाना ऋषि रहे हैं, यहाँ रेवक इत्यादि त्यागी पुरूष हुए हैं उस काल में देखो, राष्ट्र व्यवस्था कितनी सुन्दर थी मुझे स्मरण है कि एक समय महाराज श्वेतकेतु की यह प्रतीति हुई, कि वास्तव में तुझे योगी बनना है, तो श्वेतकेतु ऋषि बन गएं और राजा के द्वार पर जाते तो राजा से यह कहते कि तू, अशुद्ध न चल। उस राजा को ऋषि मुनियों का भय था, जब वह राजा से उच्चारण करते कि संन्यासी बन जाओ, तो वह संन्यासी बन जाते थे, राष्ट्र को त्याग देते थे, अपने पुत्र को राज्य देते या किसी को प्रदान कर देते, यह सब बुद्धिमान ब्राह्मणों का कर्तव्य रह जाता था, आज के राष्ट्र में सबसे सूक्ष्मता है ब्राह्मण की, क्योंकि त्यागी तपस्वी नही हैं, ब्राह्मण तो बहुत हैं, उपदेश देने वाले बहुत हैं, परन्तु उनका स्वयं का जीवन इस प्रकार का नही हैं, जो वह राजा को यह उच्चारण कर सकें, क्योंकि वह यह जानते हैं कि तू केवल राजा को यह उच्चारण कर सकें क्योंकि वह यह जानते हैं, कि तू केवल राजा का एक खिलौना बना रहे, जिससे तेरी प्रतिष्ठा भी न जाएं और दूसरे स्थानों में कहता है कि अमुक राष्ट्र का जो स्वामी है, उसका मैं पुरोहित बन गया हूँ। अरे, पुरोहित बन गया, तो क्या बन गया, परमात्मा

नही बन गया। तेरे में कोई विशेषता नही आई है। तू केवल बना क्या है तू उसका ! एक प्रकार का जैसे सेवक होता है, ऐसा बन गया है। पुरोहित बनने का अभिप्रायः यह नही, कि तू सेवक बन। सेवक बनना मेरा कर्तव्य नही हैं, वह जैसा कहता है, वैसा हाँ में हाँ मिलाना तेरा कर्तव्य नहीं। जो वेद कहता है, कि वह तुझे ललकार के कहता है, तो उसमें तेरी प्रतिभा है, उसी में तेरी प्रतिष्ठता है और वही पुरोहितता तेरा कार्य रहेगा।

राष्ट्र कि उन्नति का आधार

आज मैं यह दृष्टिपात कर रहा हूँ, कि प्रत्येक विभाग का जो धिराज बना हुआ है, उसके उतने ही पुरोहित हैं, अब वह पुरोहित क्या करते हैं, कि अपने पत्नियों से जा करके कहा करते हैं, कि अमुक विभाग का जो नेतृत्व करने वाले हैं, मैं तो उनका पुरोहित हूँ और तुम भी वहाँ जाना। जब यह वाक्य आ जाता है ब्राह्मण प्रणाली में, तो ब्राह्मणत्व और पुरोहितपन नही रहते, उसमें अशुद्धवाद आ जाता है, उसमें केवल एक ऐसा शब्द आ जाता है, कि जो पराधीन का शब्द है, क्योंकि उसके अधीन बन गया, यहाँ आज के संसार में पुरोहितवाद उनका अधीन बन गया, द्रव्य की लोलुपता में, तो वह राजा को क्या उच्चारण करेगा। लंगोटधारी ब्राह्मण ही राष्ट्र को ऊँचा बना सकता है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज लंगोटधारी थे और राम कैसे सुन्दर थे। लंगोटधारी विश्वामित्र उनको चेतावनी देते थे और वह किसी प्रकार भयभीत नही होते थे, जब विश्वामित्र राजा दशरथ के यहाँ पंहुचे, यज्ञ की रक्षा के लिए, तो महाराज दशरथ आशा से निराशा में परिवर्तित होने लगे और यह कहा कि महाराज मैंने तो वृद्धपन में यह चारों पुत्र ! दृष्टिपात किए हैं और राम, लक्ष्मण मुझे अति प्यारे हैं, आप इनको ले जा रहे हैं, परन्तु मेरा अन्तरात्मा नही कहता। उस समय विश्वामित्र ने कहा अरे, तू राजा है, तू क्षत्रिय है, क्या, तुझे लज्जा नही आती, इन वाक्यों को उच्चारण करते हुए, तू इस राष्ट्र की क्या रक्षा करेगा, जब तू इन पुत्रों को किसी प्रकार की शिक्षा नही दिला सकता। जब ऋषि ने इस प्रकार का नाद किया, तो उसी समय राजा दशरथ नतमस्तक हो गएं और यह

कहा कि भगवन आप ले जाईएं। आपके पुत्र हैं। !

उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या है कि राजा वही होता है। परन्तु, जिस राजा के द्वारा वैश्यपन आ जाता है, द्रव्य के एकत्रित करने में लग जाता है, तो वह राष्ट्र प्रजा के लिए किसी प्रकार हितकर हो ही नही सकता, क्योंकि वेद नही कहता। राजा का कर्तव्य तो यह है कि राजा के राष्ट्र में जितने वैश्य हैं, उनका वितरण सुन्दर होना चाहिए। उनका वितरण इस प्रकार होना चाहिए, जैसा मनु पद्धति के आधार पर, उसका वितरण होना चाहिए। वितरण सुन्दर हो और जितना सुन्दर वितरण होगा, उतना ही प्रजा अपने को सुखी अनुभव करेगी और राजा भी स्वयं अपने को सुखी अनुभव करेगा। कल के वाक्यों में, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने उन वाक्यों के लिए कटु शब्द भी उच्चारण किया, परन्तु स्पष्ट उच्चारण करने में मुझे कोई संकोच नही होता क्योंकि मैं यह जानता हूँ, कि मेरी तो कोई मृत्यु कर ही नही सकता, क्योंकि मैं मृत्यु से दूर हूँ, मृत्यु कुछ होती ही नही। जब मेरी मृत्यु नही, तो मुझे स्पष्ट उच्चारण करने में भय भी क्या है? परन्तु यह मैंने कल भी उच्चारण किया था, कि जिस राजा के राष्ट्र में मेरी पुत्रियां अपने शृङ्गार को भ्रष्ट करके, अपने उदर की पूर्ति करती हों, क्या वह राष्ट्र है? वहाँ जो वैश्यवाद है, द्रव्यपति है, वह भी नष्ट हो जाना चाहिए। वह राष्ट्र नही होता। वह जो राजा है, वह द्रव्यपति को यह उच्चारण नही कर सकता, कि तू मेरी पुत्री को पुत्री स्वीकार कर। क्यों नही कर सकता? क्योंकि राजा जब स्वयं द्रव्य की लोलुपतता में आ जाता है। तो वह द्रव्यपति को यह वाक्य भी उच्चारण नही कर सकता, क्योंकि उसको अधिकार ही नही रह जाता है। मैं परम्परा से वेदों का अनुयायी हूँ, आज मुझे यह वाक्य उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। कि जो पृथ्वी मण्डल पर राज्य का विधान है, वह सुन्दर प्रतीत नही हो रहा है। इस भारत भूमि का मानव यह कहता है, कि यह जो सौनधुति राष्ट्र है, उसके मानव बड़ा सुखी, है क्योंकि वहाँ साम्यवाद आ गया है।

वास्तविक साम्यवाद

अरे, साम्यवाद की मीमांसा तो तुमसे आती ही नहीं, एक राजा वहाँ राजा क्यों बन गया

है? साम्यवाद की मीमांसा यह है, कि जहाँ कोई भी राजा न हो और प्रजा अपने कर्तव्य का पालन करती चली जाएं और वह प्रजा स्वयं अपने अधिकार को जाने, उसको साम्यवाद कहते हैं। साम्यवादी राष्ट्रों में जो राजा बना है, वह क्यों बन गया? उसको राजा बनने का अधिकार क्या है, उसे एक सुन्दर यन्त्र में भ्रमण करने का क्या अधिकार है, कोई अधिकार प्राप्त नही रह जाता। साम्यवादी का अभिप्रायः यह है, वेद का मन्त्र कहता है कि मानसी प्रजा अस्ति सुप्रजाः राजन्नमो अस्ति सुप्रजा व्यापनोति कामाः परन्तु मन्त्र, जो वैज्ञानिक ने निर्धारित किए हैं, उनमें एक निर्धन व्यक्ति को भ्रमण करना चाहिए। क्योंकि निर्धन व्यक्ति यह जाने कि वास्तव में यह यन्त्र हैं। अहां वहाँ भी निर्धन है, जो वहाँ भी उदर की पूर्ति इस प्रकार होती है, जैसे यहाँ होती हैं, यह मानव को केवल दिखावा दिखाने के लिए है और वह केवल भ्रमजाल में अपने को दृष्टिपात करके वह भी उस आँगन में भ्रमण करना चाहते हैं। तो यह मुझे सुन्दर प्रतीत नही होता। यथार्थ साम्यवाद की मीमांसा यह है जैसा वेद कहता है, वेद कहता है कि क्षत्रिय राजा तो इसलिए बनाया जाता है, वह वैश्य समाज को उत्तम बनाएं। वैश्य समाज जहाँ भी द्रव्य को एकत्रित करे, वही राजा को दण्ड देने का अधिकार है, उसे दण्ड दे और दण्ड देकर उसका वितरण सुन्दर होना चाहिए। आज कोई भी क्षुधा से पीड़ित नही रहना चाहिए। राजा के राष्ट्र में यही वास्तविक साम्यवाद कहलाया जाता है।

वेद का साम्यवाद

मुझे इस पृथ्वी मण्डल का सर्वश ज्ञान है, परन्तु मैं कहाँ तक उच्चारण करूं, समय इतना हैं नही, गुरुदेव मुझे आज्ञा दे नही रहे है। परन्तु वाक्य यह है, जैसा आज का मानव कहता है, ढ़ोल की पोल संसार की है इसी प्रकार की चलती रहती है परन्तु वास्तव में वेद का साम्यवाद यह नही कहता है, वेद का साम्यवाद कहता है कि हे राजनतू इतना चरित्रवान हो !, इतना चरित्र तेरे द्वारा हो, कि प्रजा में तेरे चरित्र की तरंगें ओत प्रोत हों और जब तू चरित्रवान होगा, तो न तो तेरे राष्ट्र में वैश्यजन अपने द्रव्य को एकत्रित कर सकेगा और उसका वितरण सुन्दर होगा, ब्रह्मचारी होंगें और

ब्राह्मण समाज उत्तम होगा, शिक्षा पद्धति सुन्दर होनी चाहिए। जब यहाँ एक राष्ट्र, अपनी राष्ट्र की किसी पद्धति को नही अपना सकता, तो वह राष्ट्र का पालन ही क्या कर सकेगा। यह मुझे प्रतीत नही होता है, जब एक मानव संस्कृति को लाने में असमर्थ रहता है, तो वह राष्ट्र के पालन करने में भी सदैव असर्मथ रहेगा। मैं यह वाक्य परम्परा से उच्चारण करता चला आया हूँ।

मैं किसी वाक्य को विरोधी नही, मानव समाज का विरोधी नही, मुझे किसी सम्प्रदाय से कोई अभिप्रायः नही, परन्तु जो वेद शास्त्र कहते हैं, दर्शन कहता है, उसका आश्रय यह है कि राजा पवित्र हो तो प्रजा वास्तव में पवित्र बनेगी। क्योंकि जिस बालक के माता पिता सुन्दर होते हैं, तो बालक भी पवित्र होते हैं जिस मेरी पुत्री की माता के हृदय में भ्रष्टाचार होता है, वह पुत्री उसी प्रकार की बनती है। यदि मानव भ्रष्टाचार के अंकुरों में विराजमान है, तो पुत्र भी उसी प्रकार का बनेगा, क्योंकि उसके संस्कार, उसके खान पान की जो तरंगें हैं, उसके मस्तिष्क में आ जानी बहुत अनिवार्य हैं। इसी प्रकार मानव को विचारना है, राजा जो होता है, वह राष्ट्र का पिता होता है। और जितना वह चरित्रवान होगा, उतनी ही प्रजा सुन्दर और मानवत्व में परिपक्व होगी।

दशरथ से राष्ट्रवाद का पतन

आज का हमारा वाक्य समाप्त होने जा रहा है, मुझे मेरे गुरुदेव ने अधिक समय नही दिया है, मुझे कल समय देंगें, तो साम्यवाद की मीमांसा कल और अच्छी प्रकार कर सकूंगा। परन्तु आज का वाक् यह है कि आज हम चन्द्रमा की यात्रा में जाएं, किसी भी लोक लोकान्तरों की यात्रा में जाएं, परन्तु वास्तव में राष्ट्र को उन्नत बनाना चाहते हैं, तो यथार्थ साम्यवाद को लाने के लिए प्रयत्नशील रहें और अपने साम्यवाद की परम्पराओं की सर्वस्व समाज में प्रतिभा होनी चाहिए। प्रतिभाओं की तरंगें जब संसार में रमण करती रहेंगी। यहाँ का राम राज्य था, परन्तु रामराज्य में लंगोटधारी ऋषि मुनियों ने राम को चेतावनी दी और चेतावनी देते हुए कहा कि हे रामतू सुन्दर बन !, क्योंकि राजा दशरथ ऐश्वर्य में चला गया था, तीन पत्नियां थीं, तीन पत्नियां वाला कोई

राजा राष्ट्र को सुन्दर नही बना सकता, क्योंकि वह तो केवल ममता में ही रहता है। राष्ट्र को वह उत्तम बनाता है, जब पत्नी भी मानो देखो, केकई वास्तव में उनकी पत्नी थी जब विश्वकर्मा से संग्राम हुआ तो रथ की धूरी समाप्त हो गई उस समय महारानी कैकई ने सोचा, कि तेरे पति की मृत्यु न हो जाएं, नीचे न चले जाएं और उसने अपनी उंगली को धूरी के आँगन में अर्पित कर दिया। वह शक्तिशाली पत्नी थी जब उनका संग्राम समाप्त हुआ, तो राजा दशरथ ने केकई के भुजों को देखा और कहा कि हे पत्नीतुमने यह क्या किया !? उन्होंने कहा कि महाराजयदि ऐसा न करती !, तो आप विजय को प्राप्त न होते। उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है, कि अपने पति की रक्षा करने में कैकई कितनी शक्तिशाली थी, कितनी ब्रह्मचारिणी थी, जो अपनी उंगली दी और धूरी में कार्य करती रही। विचार विनिमय यही करना है, कि आज उन पुत्रियों को उत्पन्न करने वाली मेरी मातायें हों और सदाचारी बनने में सदैव राजा हो, तो वास्तविक साम्यवाद की उत्पति आ सकती है, अन्यथा आज कोई मानव यह उच्चारण करने लगें, कि राजा स्वयं व्यापार का कार्य करता हुआ, राष्ट्र को शक्तिशाली बना जाएं या यथार्थ साम्यवाद आ जाएं, यह मानव के लिए मुझे असम्भव प्रतीत होता है और आगे यह भविष्य में तुम्हारे समीप आ जाएगा। आज मैं भविष्य की चर्चा उच्चारण करने नही आया, कि भविष्य में क्या बनेगा। उच्चारण यह करना है, कि यथार्थ साम्यवाद जब होता है, जब स्वयं राजा परिश्रम करके, अपने उदर की पूर्ति करता है, प्रजा की भांति। वही राजा इस राष्ट्र को साम्यवादी बना सकता है, आज कोई राजा नाना प्रकार के ऐश्वर्यवादी होता हुआ और इस प्रजा को वस्त्र प्राप्त नही होता और राजा हो करके उसके लाखों वस्त्र है। तो क्या वह राजा अपनी प्रजा के लिए क्या विचार विनिमय कर सकता है। मुझे तो आश्चर्य प्रतीत होता रहता है,

विष तुल्य अन्न

अब मैं राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में अधिक चर्चा नही करता। राष्ट्रवाद के लिए केवल इतना कि राजा जितना सुन्दर होगा, सदाचारी होगा, उतनी ही प्रजा सदाचारी होगी, उतना

ही प्रजा में शिष्टाचार, मानववाद आता चले जाएगा। शिष्टाचार और मानववाद की मीमांसा साम्यवाद की हमें प्रतीत होती देती है। हमें वही प्रतिभा हैं, क्यों? वेद का साम्यवाद यही कहता है। वेद ने तो यहाँ तक कहा है कि हे मानव आज तू अन्न को ! प्राप्त करता है और तेरे आँगनमें एक प्राणी अन्न से पीड़ित हो रहा है। तो तेरा वह अन्न विष के तुल्य कहलाया गया है। वेद का जो वाक्य है वह तो बड़ा ही सुन्दर है। मुझे गुरुदेव आज्ञा देंगें, तो कल और उच्चारण कर सकूंगा मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः धन्य हो मेरे प्यारेमह !आज मेरे प्यारे !ऋषि मण्डल !ानन्द जी ने, मानव समाज के लिए बहुत बहुत सुन्दर वार्त्तायें प्रगट कीं, मानव के शिष्टाचार और मानवता के लिए बहुत सुन्दर, परन्तु कहीं कहीं कटुता का तो प्रतिपादन हो ही जाता है। उसमें कोई बात नही। आज इन्होंने चन्द्रमा के सम्बन्ध में बहुत कुछ चर्चायें प्रगट कीं, परन्तु इनका वाक्य कुछ अधूरा रह गया।

पूज्य महानन्द जीः भगवन कल भी समय प्रदान करेंगें !

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटा कल के समय की कोई सम्भवना नही है। !

पूज्य महानन्द जीः हाँ भगवनसम्भावना तो इसीलिए नही है !, जो वाक्य है, वही हैं क्योंकि प्रतिष्ठा का सभी को भय होता है, आज का समाज कहता है और परम्परा भी कहती है कि प्रतिष्ठा का भय भी हो सकता है, आज तो भगवन मुझे ऐसा प्रतीत ! होता है।

पूज्यपाद गुरुदेवः (हास्य) बेटाऐसा नही !, तुम मूर्खों वाली चर्चा प्रगट कर रहे हो। तो मुनिवरोंआज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है !, आज के वाक्यों का अभिप्रायः यह है, कि मानव को विज्ञानवाद में जाना चाहिए और बड़ा सुन्दर है, परन्तु उसमें अभिमान नही होना चाहिए। और अभिमान प्रकृति के गर्भ में स्वाभाविक होता है। चलो, कोई वाक् नही, कल मुझे समय मिलेगा तो कल आहार, व्यवहार के सम्बन्ध में कुछ चर्चायें और कुछ जैसा महानन्द जी के शब्दों पर टिप्पणी करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। आज का यह वाक्य अब समाप्त होने चला। आज के वाक्यों का हमारा अभिप्रायः

तो यह था, कि हम प्रभु की महानता पर विचार विनिमय करते चले जाएं। प्रभु की महानता पर कल मेरे प्यारे महानन्द जी !कुछ प्रश्न करेंगें। उनका उत्तर यथाशक्ति देंगें। आज का वाक् अब समाप्त होने गया। अब वेद का पाठन होगा, इसके पश्चात वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

४ 01 11 1969 पुष्प 13 महाराजा अश्वपति के वृष्टि यज्ञ का वर्णन

जीते रहो, देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर पद्धतियों का वर्णन होता रहता है, जिन पद्धतियों में परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन प्रायः होता रहता है। हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं, कि हमारे मानवीयतव जीवन की जो उज्ज्वल प्रतिभा है, वह उस परमपिता परमात्मा से सुगठित रहती है। हम सदैव यह याचना करते रहते हैं, कि हे प्रभुहम यह नही चाहते !, कि संसार में हम आपसे विमुख हो जाएं। हमारी यह सदैव याचना रहती है, हम किसी भी स्थान में हों, किसी भी आश्रम में हों, परन्तु हम सदैव एक आपकी महिमा का गुणगान गाते रहें। क्योंकि आपकी अंजलियों में भगवनयह विश्व पनपता रहता है !, हमारी भी एक कामना है, कि हमारी जो मन की प्रवृत्तियां हैं, वह जैसे सूरज के किरणों से प्रातःकाल का अनुभव होता है, इसी प्रकार हे प्रभुहमारा जो जीवन है !, वह आपकी महिमा में ही पनपने वाला हो। जिससे हे देवआपकी महिमा का गुणगान गाते हुए !, यह जो संसार सागर हमें प्रतीत हो रहा है। जिसमें नाना प्रकार के कटु शब्दों की प्रतिभा हमारे समीप आती है, नाना प्रकार की धाराएं आती हैं, मान, अपमान की कहीं तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं, प्रभु। मैं यह नहीं चाहता ।

प्रार्थना

मानव जब तेरे द्वार पर आता है, तो प्रभु आप वास्तव में उसका कल्याण तो कर ही ! देते हैं, परन्तु मेरे हृदय की सदैव यह कामना रहती है कि यदि आपने मुझे संसार में

जन्म दिया है, तो प्रभुमेरे जीवन को ऐसा मुग्ध बनाईए !, जैसे पृथ्वी होती है। वह मेरी मां हैं, और कैसी मां हैं? वही अन्न देती है, और वही हमारे मल, मूत्र को अपने में समेट लेती है। वह कैसी भोली मां हैं, जिसकी ममता का कोई प्रमाण नही दे सकता। इसी प्रकार हे प्रभुआप ममतामयी है !, जैसे हम आपके प्रति कटु हो सकते हैं, परन्तु आप अपनी छाया को हमसे दूर नही करते। इसी प्रकार हमारी मनोमयी इच्छा होती है, कि हम कटुता को त्यागते चले जाएं, आपकी शरण में आते चले जाएँ, एक समय वह आयेगा, जब प्रभु! हम आपकी गोद में, आपकी अंजलि में आ करके, हमारा जीवन पुल्कित और पवित्र बन सकता है।

हे प्रभुवास्तव में हम आराधना के तो योग्य हैं ही नही !, क्योंकि जन्म जन्मान्तरों के संस्कार मुझे सदैव बाध्य करते रहते हैं। उनसे भी मैं पार होना चाहता हूँ। हे प्रभु ! वास्तव मेंयह आपकी महिमा का गुणागान इतना नही गाने देते, जितना गाना चाहिए। प्रभुवास्तव में गाता हूँ !, सूक्ष्म गाता हूँ, वाणी का प्रसार भी होता है, परन्तु वह जो नाना जन्म जन्मान्तरों के नाना अंकुर, मल इत्यादि से अकृत हुए उनसे मैं आपकी महिमा द्वारा दूर होना चाहता हूँ। यह नाना प्रकार के संस्कार बाध्य बन करके आपकी शरण में नही आने देते।

जहाँ आपके गुणगान गाने का अवसर प्राप्त होता है, वही मानव यह कहता है, कि मेरे पास समय नही हैं, हम भी कहते हैं कि प्रभु आपके गुणगान गाने के लिए समय ! नही है। मिथ्या वाक्य उच्चारण करने के लिए बहुत समय है। नाना प्रकार के और विडम्बना भरे शब्दों में विडम्बनामयी जीवन के लिए बहुत समय है, परन्तु, हे प्रभु ! आपके गुण गाने के लिए समय नही है। वह हमारी कितनी मूढ़ता रहती है, हम कितने तुच्छ बन चुके हैं, हे प्रभु संसार में हम यह नही चाहते। !

मेरा जीवन जब मुझे स्मरण आने लगता है तो मुझे स्वयं धिक्कारता है। परन्तु जीवन की जो धिक्कारता है, वही तो मुझे बाध्य करती है कि प्रभु अब हम अपने जीवन की ! झांकी में पंहुचे, जहाँ प्रभु! हम सदैव आपके गुणगान गाते रहते थे। जब जागरूक हों, तभी आपका गुणगान गाते हों। प्रभु! मैं यह चाहता रहता हूँ। इसीलिए प्रभु! मैं आपको

बारम्बार नमस्कार कर रहा हूँ। मेरे हृदय में सुन्दर और महान प्रेरणा देते रहें, और महानता ओत प्रोत कर दीजिए। संसार में जब मैं शान्त मुद्रा में विराजामन होता हूँ। तो मैं संसार से जब जाता हूँ, संसार में वहीं तार्किकता में चला जाता हूँ। तो विचारता हूँ कि तू है ही नहीं। कहीं यह आता है, कि तू है, तो पापों का यह क्षेत्र क्यों हैं इस ? पुनः मैं अपने तर्क से स्वतः तेरे समीप आना चाहता हूँ !प्रकार भगवन, कहीं उनको भी त्याग देता हूँ प्रभु! ऐसा क्यों हैं इस जगत में, यह मुझे प्रतीत नहीं होता। इसका कोई उतर दे सकता है? इसके उत्तर तो सदैव आप की शरण में आने से ही, स्वतः नष्ट होते चले जाएंगें। नाना प्रकार के तर्क में संलग्न होकर, कहीं आपको यह कहते हैं, कि प्रभुहै ही नही !, कहीं आपको पापी कहते हैं, कहीं दुराचारी की प्रेरणा से कृत्य करते रहते हैं, परन्तु यह तर्क कैसे दूर हो सकता है, प्रभु! उसी काल में दूर होगा, जब हम तेरी शरण में आ जाएंगे। उनसे पूर्व यह शान्त नही होगा। एक वैज्ञानिक संसार के परमाणुवाद में जाता है, एक परमाणु को प्रकृति में से निकालता है, दूसरा परमाणु उसके लिए उद्यत हो जाता है, तीसरा परमाणु उद्यत हो जाता है, अणुओं के क्षेत्र में जाकर नाना प्रकार के अणु उसके समीप आ जाते हैं, अन्त में वैज्ञानिक कहता है, कि हे मातातेरी गोद में आ करके !, तेरी महिमा को नही जान पाता। अन्त में वह कहता है, कि प्रभुतेरी ही महिमा का उद्गम् मेरे हृदय में परणित र !हता है। हे प्रभु मैं जान ! नही पाया।

अनुभव

मेरे प्यारेमैं इस वाक्य को वैसे ही उच्चारण करने नही जा रहा !ऋषिवर !, परन्तु इन वाक्यों को अनुभव भी किया है। कैसे अनुभव किया? मानव अनुभव उस काल में करता है, जब अपनी कामनाओं को शान्त कर देता है, कामना कैसे नष्ट होती हैं, एक को ही स्मरण करने से कामना नष्ट हो जाती है, और एक ही नष्ट करने से नाना प्रकार के क्षेत्रों में जाने से मानव की कामना नष्ट नही हो जाती। मानव की कामना उस काल में नष्ट होती है जब वह इस संसार से उब जाता है, संसार के क्षेत्रों से ऊब जाता है,

नाना प्रकार की कामनाओं से ऊब जाता है, और ऊब जाने के पश्चात प्रभु! हम आपकी शरण में आये। प्रभु! जब आप हमें अपने कण्ठ से लगा देते है। जैसे माता का प्रिय बालक होता है, आसन पर विराज रहा है और जब तक उसे उदर में सान्त्वना है, उसे किसी प्रकार की इच्छा नही। वह व्याकुल नही होता। व्याकुल जब होता है, जब वह उदर के क्षेत्रों में ऊब जाता है, और वह ममतामयी, माया में चला जाता है, माता को पुकारता है, जब वह कुछ नही जानता संसार को। उस माता को स्मरण करता है, जिसकी लोरियों में आनन्द और पान करता है, तो हे देवहम यह चाहते हैं !, कि न संसार में नास्तिक होना चाहते हैं, और न आस्तिक ही बनना चाहते हैं, हम तो यह चाहते हैं, कि हमारा जो नास्तिक और आस्तिक के मध्य में एक सीमा है। वह भी हमसे नष्ट हो जाएं, वह भी दूर चली जायें, हम वास्तव में आस्तिक भी नही होना चाहते, नास्तिक भी नही बनना चाहते, दुराचार और सदाचार भी नही चाहते, प्रभु, चाहते क्या हैं कि दोनों के मध्य में जो एक सीमा वह भी नष्ट हो जाएं, क्योंकि आप इतने उदार हैं, कि आपके द्वारा न तो मान है, न अपमान है। न सदाचार आपको छू सकता है और न दुराचार आपको छू सकता है। प्रभु! आप तो सदैव एक रस रहते हो, ऐसे ही प्रभु ! हम चाहते हैं कि हमारे मध्य से भी यह जो नाना प्रकार के हमें नष्ट करने के लिए क्षेत्र बने हुए हैं, उनको हम नही चाहते। ऐसी हमारी कामना है, इसीलिए प्रभु! मैं आपको बारम्बार नमस्कार कर रहा हूँ। यह उस काल में नष्ट होंगें, जब हम यह जो हमारा संसार का क्षेत्र है, इसे आप में ही समाया हुआ स्वीकार कर लेते हैं।

आज हम किसके ऊपर भोग विलास के लिए जाते हैं? एक मानव एक सुन्दरी पर भोग विलास के लिए तल्लीन है, परन्तु वह विचारने लगता है कि इसमें मैं क्या तत्त्व दृष्टिपात कर रहा हूँ, मेरे नेत्रों की दृष्टि जाती है, मोहित हो जाती है, मन की विवेचना चली जाती है, यह मन क्या हैमैं न मान चाहता हूँ !हे प्रभु ?नेत्रों की ज्योति क्या है ?, न अपमान चाहता हूँ, मैं यह चाहता हूँ कि नेत्रों की ज्योति आपके प्रकाश के ही प्रकाशित हो रही है, जब प्रभु! मेरे समीप यह ज्ञान हो जाएगा, कि मेरे नेत्रों की जो ज्योति है वह भी आपके क्षेत्र में हैं, वाणी का क्षेत्र भी आपके ही क्षेत्र में हैं, वह सुन्दरी की

सुन्दरता का क्षेत्र भी आपके क्षेत्र में ही हैं तो प्रभुमुझे वह प्रेरणा क्यों नही दे रहे हो !, जिससे भगवन मेरे हृदय में वह प्रवृत्तियां ओत प्रोत हो जाएं। कि मेरे लिए संसार ! में आपके सिवाय कोई सुन्दर वस्तु है ही नहीं।

तरङ्गों का सृजन

प्रभुआपसे कौन हो सकता है !? आपसे उत्तम वैज्ञानिक कौन हो सकता है? जिसने इस जगत की रचाया, जिसने इतने बड़े ब्रह्माण्ड का सर्वस्व जीवन मानव शरीर को बना दिया। पिण्ड तो ब्रह्माण्ड बना दिया है। कैसी सुन्दर विवेचना है कैसी सुन्दर ? रचना है, आपकी, मैं तो इसको किसी काल में भी नही जान पाता। मैं तो यही नही जान पाता कि प्रभुमेरे ! नेत्रों में एक क्षण समय में कितनी तरंगें उत्पन्न होती हैं, श्रोत्रों से कितने शब्दों की उद्बुद्धता होती है, भगवन मैं तो संसार में कुछ नही जानता। ! एक ऐसा मार्ग दीजिए !मुझे तो भगवन, जिससे इस संसार में मेरे द्वारा विडम्बना न आ जाएं, क्योंकि संसार में नाना प्रकार की सुन्दरियों पर जब मेरी प्रवृत्तियां चलती हैं, तो क्या वह सुन्दरियां, मेरे लिए सुन्दर बन सकती है? किसी काल में सुन्दर बन सकती हैं, मेरे अन्तःकरण मे यह संस्कार जमते चले जाएंगें। वह जो आपने चित्त नाम का क्षेत्र बनाया है, क्या उसमें भगवनमैं यह बीज बोता ही रहूँगा !? यह मैं नही बोना चाहता। मैं तो यह चाहता हूँ। कि यह जो बीज, अंकुर रूप मेरे द्वारा उत्पन्न होते रहते हैं, प्रभु ! इसका स्रोत ही नष्ट हो जाएं। वह स्रोत उस काल में नष्ट होगा, जब प्रभु! मैं आपको सर्वस्व में दृष्टिपात करूंगा। और मैं मौन हो जाऊंगा कि संसार में कुछ है ही नही, प्रभु! मैं तो उस काल में उत्तम बन सकता हूँ उससे द्वितीय मेरे लिए कोई मार्ग हैं ही नही।

अहिंसा परमोधर्म

देखो, बहुत पूर्व काल का समय था मुझे स्मरण आता रहता है, कि एक समय मैं व्याकुल हो रहा था और व्याकुल होते हुए अपने जीवन को धिक्कारता रहा था, क्योंकि वह प्रारम्भ का जीवन नही था, वह अन्तिम जीवन था, मैं धिक्कार रहा था, कि हे प्रभु !

मैं जीवन में किसी प्रकार का पाप नही चाहता, परन्तु जब मैं विडम्बना में जा रहा था, तो उस समय मेरी अकृतं ममे चान् प्रभे मानो उस वेदना को स्वीकार करने के लिए ! मृगराज आ जाते हैं, क्योंकि हृदय के जो उद्गम् विचार होते हैं, उसकी जब विचारधारा वायुमण्डल में पिरोई जाती है, तो उस समय मृगराज भी आसन पर आ जाते है। उस आसन पर विराजमान हो करके अपने उद्गम् विचारों से वाक्य प्रगट करते हैं कि हे मृगराजोंयह संसार कैसा है !? तुम्हें यह प्रतीत है कि तुम हिंसक प्राणी बनाएं हो, परन्तु यहाँ आकर तुम्हारा अहिंसा परमोधर्मः विचार बन गया, इससे मुझे यह सिद्ध होता है, कि आत्मा का सबसे बड़ा धर्म है वह अहिंसा परमोधर्म है, अहिंसा परमोधर्म की मीमांसा मैंने बहुत पूर्व काल में ही है।

एक समय मेरी पुत्री ने एक वाक्य कहा था, सम् वञ्चन्म ब्रह्मे आक्रोति रूद्रोः भावन्ती मन्यति अहिंसा परमोधर्मः मुझे स्मरण आता रहता है, कि यहाँ महर्षि जमदग्नि आश्रम में, महर्षि भारद्वाज आश्रम में और भी नाना ऋषियों के जैसे मुद्गल ऋषि आश्रम थे नाना प्रकार के आश्रमों में केवल यही अहिंसा परमोधर्म की मीमांसा चलती रहती है। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, ऐसा माना जाता है कि यह जो नौ रात्रि, जिसको आधुनिक करवणासी असतो सुप्रजाः मानो देखो, एक वर्ष में एक सप्ताह एक प्रकार का ऋषि मुनियों का आता है, जिसमें अहिंसा परमोधर्मः के ऊपर विचार विनिमय होता रहता है, अहिंसा परमोधर्म की मीमांसा हमारे यहाँ बहुत पुनः पुनः पूर्व कालों में प्रगट होती रहती थी । मैंने एक समय अपनी पुत्री से कहा कि हे पुत्री इस सप्ताह में केवल ! अहिंसा परमोधर्म की विवेचना होनी चाहिए। उस समय मेरी पुत्री ने कहा था, अहिंसा परमोधर्म प्रभु अस्ति आश्वनति रुद्रो प्राणास्वते आ प्राति लोकाः प्रभा अश्वेति रुद्रो भागाः भगवनयह जितना जगत है यह सारा अहिंसा परमोधर्म नही हैं !, क्या, इसमें अहिंसा परमोधर्म से अन्य कोई विषय है, मेरी पुत्री ने मेरे समय एक मीमांसा करनी प्रारम्भ कर दी। उसने मीमांसा में कहा था, वह वाक्य आज तक पुनः ऐसे मुझे प्रत्यक्ष आ रहे हैं, जैसे आज मेरी पुत्री मेरे समीप विराजमान हो करके, उन वाक्यों को प्रगट कर रही हो। उस समय वह केवल आठ वर्ष की पुत्री थी, परन्तु उस समय उसने अहिंसा

परमोधर्म कि विवेचना की थी कि हे प्रभुमानव का जब मन चलता है !, तो यह भी अहिंसा परमोधर्म की प्रतिभा को ले करके चलता है, यह भी कहीं हिंसक बन जाता है कहीं अहिंसा परमोधर्मी बन जाता है, जितनी भी मीमांसा है वह धर्म की मीमांसा हो यह सब उसी के अन्तर्गत रहती है।

आज एक मानव चंचलता में कामातुर हो जाता है, कामातुर के लिए उसका आत्मा धिक्कारता है, क्या इसको अहिंसा परमोधर्म कह सकेंगें? यह भी एक हिंसा कहलाती है। यह भी मानव का एक विषय, मेरा जो विषय है केवल एक प्रश्न करना है आपका विषय उसका उत्तर देना है, मानो यह भी अहिंसा परमोधर्म और हिंसक दोनों का ही विवाद है क्योंकि जब कोई मानव प्रश्न करता है वह उसी काल में करता है जिसके द्वारा अहिंसा परमोधर्मकी मीमांसा है, वह नही जानता क्योंकि जानता हुआ, भी प्रश्न करता रहता है। वह जानता हुआ किस रूप में प्रश्न करता है, जब उसके जीवन की प्रतिभा एक उज्ज्वलता में परणित होती रहती है

तो हे प्रभुमैं यह जानना चाहती हूँ !, मैंने आपसे पूर्व काल में एक प्रश्न किया था उसी पर मैं आज फिर जाना चाहती हूँ। प्रभु हम अभी अभी महर्षि जमदग्नि आश्रम से ! पधार रहे हैं, वहाँ महर्षि अकोति मानो महर्षि भारद्वाज अश्वेति वहाँ उत्तर प्रश्नों के प्रवाह चल रहे थे। आपका विचार हमने श्रवण किया चातुरी का भी विचार हमने श्रवण किया, और भी नाना ऋषियों के विचारों को, उनकी धाराओं को स्मरण किया हे परन्तु उसमें मुझे कोई रहस्य और तत्त्व प्राप्त नही हुआ।

पूज्यपाद गुरुदेव से बालिका के प्रश्नोत्तर

उस समय कहा कि कृतो ब्रह्मे कृतं ब्रह्मणोसि उन्होने कहा भगवनकृती एक ब्रह्म है !, मानो जहाँ मैं यह विचार विनिमय करती रहती हूँ, मैंने आपसे गृह आश्रम के सम्बन्ध में जाना, प्रश्न किये। उन प्रश्नों के उत्तर में आठ वर्ष की कन्या ने एक प्रश्न किया था, वह मुझे आज तक स्मरण है,

समु गच्छन्तमा रध्यम् माम् वन्नतम् ब्रह्मणे लोकम् ब्रह्म अस्ति सुप्रजा वेतु न अग्रम

मया वाचों। सम गच्छ्र ब्राह्मणी लोकम वेतु न गृहणामि अप्रतम् ममे वाचो स पुत्रा जन्योति गिरणाम् देवाः

उस समय कहा था कि हे भगवनमैं यह जानना अवश्य चाहती हूँ !, कि वास्तव में, मैं गृहस्थ आश्रम में तो जाना नही चाहती हूँ, परन्तु यदि मुझे यह अवसर प्राप्त हो जाएं, कि मैं गृह आश्रम में प्रविष्ट हो जाऊं, तो प्रभु मुझे कैसी सन्तान को जन्म देना ! उस समय प्रभो अस्ति मैं यह चाहती हूँ ?चाहिए, कि मैं कैसे पुत्र को जन्म दूं, यदि मेरे ब्रह्माणी अस्ते इमरहा गृहाताम् मूडम मति ब्रह्मा अश्वन्ति लोकाः प्रथम धमामि देवो हे प्रभु यदि मेरी !मूढ़ मति हो जाएं, आपने जैसा कहा है, कि गृह आश्रम का जो विज्ञान है मानो यदि मेरे गर्भस्थल में ग्यारहवीं रात्रि में, मेरे गर्भ की स्थापना प्रतीत हो, तो मेरे गर्भाशय को उत्तम बनाने के लिए आप के समीप कोई औषध है? या इसकी कोई औषधि भी नही है। मैं यह जानना चाहूँगी। आत्मा की औषध हो, ज्ञान की कोई औषध हो अथवा वनस्पति की कोई औषध हो, कोई भी औषध इस प्रकार की हो।

यह एक बड़ा जटिल वाक्य था, मेरे लिए, इसका उत्तर देना कोई सहज नही था। यह एक बड़ा विशाल विज्ञान है, क्योंकि परम्परा से ही हमारी, इस प्रकार की एक धारा रही है, कि उस धारा के अन्तर्गत मैंने बहुत से प्रश्नों के उत्तर दिए, इसका उत्तर देते हुए हमें एक ही उत्तर सुझाया, कि

सम् मा मम् प्रभु यश्वानि लोकाः यम भगाना मध्यम प्रकृति रुद्रो ये स्वागम् कृतिक नक्षत्राः आभानु देवम् भवितेनु रूद्राः यश्वन्तम् भोगा यन्तनमम् मामाति औाष्प्रधे संगतम् मूलत प्रभे अश्वतम् मम् देचाः

योग्य सन्तान

उन्होंने उत्तर देते हुए कहा, कि हे पुत्री तुम्हारे मन में वास्तव में यह शंका कैसे ! उत्पन्न हुई? यह शंका उत्पन्न होने योग्य नही थी। ऐसा किया ही क्यों जाएं। यदि ऐसा हो जाएं, तो उस समय तुम्हें विचारना है कि कृति का नक्षत्र जिस समय उदय होता है, वह किस काल में उदय होता है? कृतिका नक्षत्र उस काल में उदय होता है, जब

सोम रात्रि हो और चन्द्र रात्रि हो और चन्द्र रात्रि का जो अर्ध भाग होता है, अर्ध भाग के ऊपरले कृतिका नक्षत्र की छाया रहती है, मानो कृति के नक्षत्र से यह उपासना करती है, उस कृतिका नक्षत्र में तुम्हें निद्रा रूप नही रहना चाहिए, उस समय तुम्हें जागरूक रहना चाहिए। जागरूक रहने के लिए उस समय तुम्हें गायत्री छन्दों का पठन पाठन करना चाहिए। उस पठन पाठन की जो परम्परा है वह वास्तविक होनी चाहिए। उस पठन पाठन की पद्धति मानो गायत्री छन्दों का मानो अधिक पठन पाठन होना चाहिए। उस पठन पाठन में भी ब्रह्म का चिन्तन होना बहुत अनिवार्य है, जब रात्रि का चतुर्थ भाग रह जाता है, उस समय मानो कृतिका नक्षत्र भी अस्त हो जाता है, उस कृतिका नक्षत्र के अस्त हो जाने के पश्चात, उस समय जेष्ठाय नक्षत्र की प्रतिभा आती है, जेष्ठाय नक्षत्र की प्रतिभा आ जाने के पश्चात, कृति बोध होता है और सूर्य उदय होने से पूर्व, भयंकर वन में चले जाओ, मार्ग में चले जाओ, वहाँ जा करके देखो, एक शंखाहुलि औषधि होती है, एक शंखामृधि और एक अन्वेतना इन तीनों औषधियों का सोम रस बना करके, प्रातः सूर्य उदय होते ही, सूर्य की किरण के साथ उसको पान कर लेना चाहिए। उसके पान करने से गर्भाशय में जो एक अंकुर है, उसकी जो आकृति है, वह उसकी कृतिका में उसकी सोमता के प्रति अकृत हो जाएगी, क्योंकि उस समय माता पिता दोनो को यह विचारना है, हे पुत्री! कि हम वास्तव में किस प्रकार की वार्त्ता प्रगट करें। मैंने उस समय भी तुम्हें निर्णय कराया था, कि जब माता पिता दोनों एक स्थान में विराजमान होते है। उस समय प्रभु का चिन्तन, पति पत्नी का तो कर्तव्य ही यह है कि उनके लिए पति पत्नी का जो सम्बन्ध है, वह केवल भोग विलास के लिए नही हैं, भोग विलास तो उसके लिए गौण है, उनमें कोई तथ्य नही होता, परन्तु उन दोनों का विचार विनिमय करना, यही तो हमारे लिए बहुत उतम उतम वाक्य आते है।

पति, पत्नी का आदर्श जीवन

मुनिवरोंदेखो !, उस समय मैंने पुत्री को निर्णय कराया था, कि कैसी वार्त्ता प्रगट करें। सम भगाना मधु बन्धना देवो मयातामी मम वाच सर्वे भगवन्तनम् मयाः वेतु माधान्ति

धृवश्चतम् मेध्या वसुधरणो आभ्याम् नमो नमामि ब्रह्माः
उस समय पति कहता है कि हे पत्नीवास् !तव में हमारा जीवन ऐसा है, जैसे गंगा और यमुना दोनों का जल एक हो करके गंगा सागर में परणित हो जाता है, हम दोनों इसी प्रकार से रहना चाहते हैं, जैसे यमुना और गंगा का जल एक होकर के त्रिवेणी बन जाता है, जैसे ब्रह्म और प्रकृति दोनों मिल करके एक ब्रह्म का स्वरूप बन जाते हैं। इसी प्रकार हे देवीहम संसार में ऐसा बनना चाहते हैं !, रहा यह वाक्य कि हम दोनों की प्रतिभा हमारे गृह में परणित होनी चाहिए। क्योंकि यह जो हमारा गृह है, यह हमारे विचार करने के लिए एक सुन्दर मन्दिर है। जैसे हमारा प्रभु ने, यह हमारा शरीर मन्दिर का बनाया है, इसी प्रकार हम दोनों का मध्य में जो अन्तर्द्वन्द्व है, उसे नष्ट करके, हम एक महान सुन्दर मन्दिर में विराजमान हों। हे देवी संसार में वृधि अकृतम् ब्रह्मनस्ते ! यम भगाना बधु कंचनम् साम् वेतु ब्रह्मणोः यचतानम् हिंसक प्रभे अस्तो नमामि देवाः
यदि हम दोनों ही यहाँ नाना प्रकार के दुष्कृत कार्य और विचारधारा हमारे मस्तिष्कमें रही, तो हमारा जो यह शरीर रूपी गृह मन्दिर प्रभु ने रचा है, यह वास्तव में भ्रष्ट हो जाएगा। हम प्रभु को किस द्वार से, यह देव जो लेकर आए हैं। जो हमारा सुन्दर मन्दिर है, जिसको रचाने का न तो माता को ही ज्ञान है, और न पिता को ही ज्ञान रहा है। उसको रचाने वाला प्रभु है। जब हम इस संसार क्षेत्र में जाएंगें, तो देवी जब प्रभु के ! द्वारा हमारा यह शरीर रूपी मन्दिर जाएगा, और मन्दिर को जब कुचिष्ठतम् से दृष्टिपात करेंगें। तो हम प्रभु को क्या उत्तर दे सकेंगें। हमारे द्वारा कोई उत्तर नही बन पाएगा। इसीलिए देवीहमारा कर्तव् !य है कि हम वास्तव में देवी सम्पदा को पान करना चाहते हैं। क्योंकि यह प्रभु हमारा सोम रस है, उसको पान करने से हमारे जीवन में एक महानता की तरंगें उत्पन्न हो जाती है।
सम भगाम् मधुवत्धम् वेतु ऋश्यम् भगवन्धना देवो न भगम् भगते इदम् मम वेचा सम भवेतम् मामधेनु। हे देवीकोई हिंस !क प्राणी भी हमारे गृह में आ जाएं, तो वह भी हमारी इस महानता को दृष्टिपात करता हुआ, हम पर कोई आक्रमण नही कर सकेगा।

क्योंकि शत्रु भी उसी काल में आक्रमण करता, जब हमसे दुष्टकर्म हो जाता है।

अम् भगानम् मधन्बनम् में हो वाचनोति कर्मणाः मेघम् ब्रह्मे व्यापा वस्तु निराधन् नमम् त्वाकृते जैसम् भवानम् वेग वस्ति पुत्रो गणेश्म् माम् वस्तम् पुत्री गति ईश्वराः देवी! हम संसार में ऐसा रहना चाहते हैं, तू मेरी देवी है, तू वास्तव में मेरे हृदय की गृहणी है, परन्तु मैं संसार में यह चाहता हूँ कि हे देवीहम दोनों में ! प्रीति होनी चाहिए। मैं दूसरी गृहणी नही बनना चाहता, हृदय में कोई दूसरी गृहणी बन गई, तो वह मेरे हृदय को नोच नोच कर ऐसे निगल जाएगी जैसे बाज़ चिड़ियों को निगल जाता है। ऐसे मेरे हृदय की प्रतिभा को वह निगलती चली जाएगी। देवी! हम दोनों में इस प्रकार का स्नेह प्रतीत होना चाहिए।

मम गतानम् मधपन्नामी देवो न पापम् हृदयस्त ततम् मघाः कटम ब्रह्मे लोकं प्रभा नस्तम देवेभ्योः नमामि हृदयम् गृहणाम् मध वेचु ब्रह्माः। वेद कहता है हमारा धर्मज्ञ ऋषि कहता है, कि हे देवीसंसार में हमें कैसे बनन !ा चाहिए? जैसे परमपिता परमात्मा और प्रकृति हैं, जैसे पृथ्वी और सोम है, जैसे पृथ्वी और चन्द्रमा दोनो ही मानो एक दूसरे से उनको कितना स्नेह होता है, वह चन्द्रमा अमृत देता है, तो पृथ्वी उसको गृहण कर लेती है, दूसरा चन्द्रमा उसके लिए नही होता, यदि उसमें कोई दूसरा चन्द्रमा आ जाएं, तो पृथ्वी नष्ट हो जाती है। संसार अस्त व्यस्त हो जाता है, इस प्रकार हे देवी ! यदि तेरे से मेरी कामना है, तेरे से मेरी इच्छा है, यदि मेरा मन, मेरी प्रवृत्ति किसी द्वितीय सुन्दरी पर चली जाएं, तो मेरे सौन्दर्यतव को महान एक ऐसा कलंक है। जैसे हमारे यहाँ कृतियों में गौतम ने चन्द्रमा को कलंकित बना दिया। इस प्रकार देवी! मैं कलंकित नही बनूंगा। प्रभु हमारे मध्य में रहने वाला है, और हम दोनों है। त्रैतवाद से संसार की याचना होती है, त्रैतवाद ही में हमें रहना है। हे पुत्री! यदि तुम्हें गृह आश्रम में प्रविष्ट होने का सौभाग्य प्राप्त हो जाएं। तो विवेचना यह होनी चाहिए। उस समय पुत्री ने कहा कि प्रभु पत्नी को कैसी !चर्चा प्रगट करनी चाहिए?

मधो कंठमम् ब्रह्मे आस्वति देवं मधु व्रत्याणां देवो न ब्रह्मा। हे पुत्री यदि तुम गृह ! आश्रम में प्रविष्ट हो अन्यथा मेरे हृदयकी तो यह वेदना नही हैं, कि तुम गृह आश्रम

में प्रविष्ट हो जाओ। परन्तु तुम किन्ही कारणों से गृह आश्रम में प्रविष्ट भी हो जाओ, तो मेरे हृदय की वेदना है, कि तुम इस समय मधु भाषणी उच्चारण कर देना, मधु तुम्हारा भूषण है, और पृथ्वी के तुल्य तुम्हें रहना है। तुम्हारे गर्भ से सन्तान का जन्म हो। पुत्र और पुत्री का जन्म हो। जैसे मानो पृथ्वी अन्न भी देती है और बालक को गन्ध को भी अपने में समेट लेती है, मानो दुर्गन्ध को भी समेट लेती है, और सुगन्धि भी देती है, ऐसा तुम्हें बनना है, संसार में इसी प्रकार का बनना है, पति के प्रति कैसा गृहम् व्यवहार अप्रभे?

अभा नष्वयम् पति ब्रह्मा असवेति लोकम् मम् वेतु ब्रह्मे। आस्वानि लोकाः ब्रह्मणातम् वेतु भगाना। संसार में कोई पत्नी यह नही चाहती, कि मेरा पति दुराचारी बन जाएं, सदैव उसकी यह कामना रहती है, कि मेरा पति सुन्दर बने, परन्तु हे देवी! संसार में चरित्र ही जीवन है। चरित्र के लिए तुम किसी से भय न करना। भय भातम् ब्रह्मे यश्वनि लोकम् भ्रष्टानि मतयम् पित प्रभवे कृतयम् ममाः। हे पुत्री! यदि तुम्हारा पिता भी हो, कुदृष्टि तुम्हारे प्रति हो जाएं, तो उसको अत्यनम् मृगराणी वस्तेः मृत्यु न दण्डम् ब्रह्मे कसमस्ती रुद्रो भागाः प्रभे अस्तते उसको भी मृत्यु दण्ड देने का अधिकार होता है, उसको मृत्यु दण्ड दे देना चाहिए।

मृत्यम् भगानम् मामवेतु अस्वनेतम् मा भागा ब्रह्मणे। अस्वेति रुद्रो सहस्राणी भगम् न भद्रो प्राची मन्थनम्।

हे पुत्री! संसार में जो सुयोग्य पत्नी होती है, वह घोषणा करके पति को कह दे, कि मैं तुम्हारी वास्तव में अधिक से अधिक एक सहस्र जो त्रुटियां है, उन्हें क्षमा कर सकती हूँ और यदि उससे अधिक हो जाएं तो मेरी मृत्यु आ जानी चाहिए।

मृत्यानी गच्छम् माम व्रतन नमामि देवो भगं ब्रह्मणा। ये न कर्मन्य नमामि प्रश्नों वृध्यम् ब्रह्मे लोका

जैसे भगवान कृष्णा ने शिशुपाल की एक सौ एक अशुद्धियां समाप्त कर दी थी, क्षमा कर दिया था, उसके पश्चात उसका मस्तिष्क गिरा दिया था। इसी प्रकार हमारा कर्तव्य

है, कि हमें संसार में भय नही होना चाहिए।

भय अक्रताम् मयातम् माम् वाचन्म् नमामि पिप्लादम् ब्रह्मे कोषनमः।

हे पुत्री! तुम्हें यह प्रतीत है, महात्मा प्रहलाद ने अपने पिता से कह दिया था, कि तुम प्रभु नही हो, मैं तुम्हारे आँगन में आने वाला नही हूँ। मैं संसार में अपने मानव बल से रहता हूँ। हे पितामेरे ! द्वारा यह भय नही हैं, जैसे प्रजा को आपका भय है। मैं प्रजा का नही, प्रभु का पुत्र हूँ और संसार में प्रभु का पुत्र बनकर रहूँगा।

सम वतानम् माम वन्नतम् देभ्यो नमामि गर्भस्यतम् मेधा व्यापनोति प्रकृत्तम् वनः मनस्ती देवोभ्यो नमामि सुन्दरम् मयाः। हे पुत्रीसंसा !र में पुत्र की यदि कामना की उत्पति हो, उस समय भोगम् प्रभे अस्ति भोगाम् ती मनधनम् वह भी ऐसे है, जैसे यज्ञमान यज्ञशाला में आकर आहुति देता है, स्वाहा कह करके, वह शुभ कामना के साथ, इस प्रकार की संसार में, वैदिकता होनी चाहिए। यदि संसार में कोई ऋषि बनना चाहता है। ऋषि कन्या बनना चाहती है, तो दर्शनों की विचारधारा को ले करके चले, अन्यथा संसार में वह जीवन मृत्यु के तुल्य बन जाता है।

सम भगानम् केतवृधनम् आ पांचलोकाम् मधवेस्तानी कातम् नमामि अस्वन्त लोका अभा नध्यम् ब्रह्मणो अपा कृति।

हे प्रभुआप तो मेरे बड़े पूज्यनी !य हो, क्योंकि मैं आपके चरण कमलों में पनपी हूँ, और तपी हूँ और तपना भी चाहती हूँ, वास्तव में मेरी इच्छा नही है, कि मैं गृह आश्रम में प्रवष्टि हूँ, और यदि मैं किसी कारण से चली भी गई, तो प्रभु आपके वचनों को ! अवश्य पालन करूंगी। मेरी तो यह कामना है, कि मेरे हृदय में सदैव जन्म जन्मान्तरों तक में, यह कामना प्रविष्ठ रहेगी, तो मैं भगवन गुणान् ब्रह्माणाम् तपा ब्रह्मे व्यापाः ! लोकम् गुरवस्त्वतम् ब्रह्मे अकारम्।

जैसे इस प्रकृति को तपाने वाला प्रभु है, ऐसे ही गुरु अपने शिष्य को तपाते हैं, मैं आपके चरणों में तप गई हूँ, और तपने के पश्चात मेरी सदैव यह कामना रहेगी। मैं उस तप को चाहती हूँ, जिस तप के साथ मैं संसार में वास्तव में अपने गौरव के साथ कोई

वाक्य प्रगट कर सकूं।

जन्मम् ब्रह्मे अपानति सप्तम् मम वेचु कृतम् ममवेसु समातम् । ये न ग्रहणाम् भागा वसु ननधनम् मेधो सर्वे लोकाम् मम वेचु प्रम्भा।

हे प्रभुवास्तव में प्रभु को ही हमसे दूर नही होना चाहिए !, आज जब हम यह लेकर चलते हैं, कि मेरे मन की जो कामना है, वह इस प्रकृति के आवेशों में क्यों परणित हो जाती है? परन्तु देखो,

प्रकृतं मम वेचा प्रमेसम् माम वेतु वृधनम आधीनम् ब्रह्मे अस्तुति सुप्रजा।

हे देवीसंसार में जो प्रकृतिवाद है !, प्रकृति से जो प्रसाद प्राप्त होता है, वह भी मानो प्रभु का दिया हुआ है, और वास्तव में हमें प्रभु के आश्रित रहना चाहिए। यह सदैव हमारे यहाँ कामना रहनी चाहिए, क्योंकि संसार में कोई भी मानव मानो यह तो सम्बन्धित संसार है, कोई पालन करने के लिए आ रहा है, कोई किसी का देन, देने के लिए आ रहा है, कोई किसी का लेन लेने के लिए आ रहा है। यह संसार इसी प्रकार चलता रहता है।

परम ब्रह्मे वाचाः मम वाचन्नम् व्रेधा भारद्वाजा मम वेचु गोत्राः यश्वे नरातम् मोघनम् ब्रह्मे आर्ध भागम् ब्रह्मे अस्तुति।

हे देवीएक समय भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न होने वाले अक्रेति ऋषि ने यह कहा था !, कि वास्तव में मैं यह नही चाहता हूँ, कि भारद्वाज के गोत्र को कलंकित बनाता चला जाऊं। मैं तो यह चाहता था, कि भारद्वाज का गोत्र सदैव बना रहे, और ऐसा बन रहे, जैसे चन्द्रमा है, जैसे प्रातःकाल का सूर्य है। पुत्री! तुम्हें यह प्रतीत है कि जब मेरे अस्तुति महानन्दनम् ब्रह्मे अप्रधानम् जब यह मेरे समीप आए थे, तो मैंने इनके प्रति क्या वाक्य प्रगट किए थे, तुम्हें यह प्रतीत होगा।

सम् गथेमा मा वेतु नराधम् आर्ध भागा गोत्राणी रुद्रो भवेस्म्। मे मा चता प्रभे अस्वेति लोकम् मेधा वर्णनम् ब्रह्मे अस्वेति सुप्रजाः।

हे पुत्री तुमने भी धिक्कारा, मैंने भी एक ही वाक्य कहा था कि आर्ध गोत्र में उत्पन्न होने वाले! हे अर्धभागीतू आज कैसा बन गया है !, महर्षि अर्धभाग का जीवन चरित्र तुम

स्मरण करो। ओ३म् स्मरण से तुम्हारे जीवन की प्रतिभा उत्तम बनेगी।

ऋषम् भवानम् पुत्री न गच्छतम् माम वेतु ब्रह्मणे वाचाः वेपनात्तम ब्रह्मे आस्वति नो रध्यम् मेधो प्रभानम् विग्रिति प्रजाः।

अरे, धिक्कार क्यों रहे होअर्धभाग में उत्पन्न होने वाले बालक को ?, क्या यह ही तुम्हारा अर्धभाग गोत्र, क्या आज तू दूसरे की कन्या को हनन करने वाला है? क्या, तू आज अपने कुल को कलंकित बना रहा है? आज तेरा यह कर्तव्य नही है, कि तू इस गृह को कलंकित बनाएं और तेरे जीवन की कलंकता है वह आज तुझे निगलती चली जाएगी। उस समय उन्होंने यह क्या कहा था, वह तुम्हें स्मरण है?

सम भवेतम् मम वन्धकम् प्रभे काश्वानम् भागी वतनम् ब्रह्माः अस्वेति वृध्यम् मान वन्नम् कशमश्य ब्रह्मे अत्तमा प्रभे अस्तम्।

उन्होंने कहा था कि अर्धभाग में उत्पन्न होने वाला मैं अवश्य हूँ, परन्तु मैं आपकी शरण चाहता हूँ, क्योंकि उनकी शरण चाहता हूँ, जो ब्रह्माणी लोकः प्रभु ब्रह्म वेत्ताम् बृहविस्तम् कि मैं उनकी शरण में आया हूँ, जो ब्रह्मवेत्ता हैं, जो अपनी प्रवृत्तियों से शान्त हैं। मैं हृदय में उस सान्त्वना को चाहता हूँ, जिससे मेरा हृदय मुग्ध हो जाएं। तो उस समय हे पुत्री तुम्हें यह प्रतीत !है, कि तुमने उसको भी धिक्कारा, जब मानो देखो, तुम्हारी वार्त्तानी वध्यनम् प्रभे अस्तम् अहा! जब आठ साल की कन्या ने यह कहा कि सम भवेनानो वन्धनम् मस्तिकानि अध्यम् ब्रह्मणे आकाति अस्ते, हे प्रभु आज तुम किसको ! शिष्य बनाने जा रहे हो, मानो सेवक बनाने जा रहे हो, इसके सेवक बनाने से आप कलंकित हो जाएंगें। और मैं भी कलंकित हो सकती हूँ। उस समारध्यम्

हे पुत्री! तुम्हें यह प्रतीत है, उस समय क्या कहा था, समा गच्छत प्रभे अस्ति मम वेचानि कलंकाति अस्तम् न कलंकाति प्रभे अस्ति। हे पुत्री कलंकित संसार में कोई ! नही होता। जो बालक सुयोग्य होता है, उसके प्रति तो मानव की वेदना होती ही है, परन्तु जो अपवित्र बन आया है, नाना प्रकार के दुर्गम् ब्रह्मे अस्ति मानो देखो, उसे पवित्राणी गच्छतम् उपदेशाः आज उसे उपदेश देना बहुत अनिवार्य है, जो मानो कीचड़ में सना हुआ आया है, उसी का तो माता शुद्ध बनाती है, उसी को तो स्नान कराती है।

प्रभु भी मानो देखो, उसको स्नान कराते हैं, जिसके अनुग्रातानी कृतानी अस्ते अनुपम कृपा के साथ साथ मानो देखो, वह अपनेपन में रमण कर देते हैं। क्योंकि ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मज्ञान कोई हमारी सम्पदा नही हैं, ब्रह्मवेत्ता, तो ब्रह्मवेत्ता है ही, क्योंकि ब्रह्म तो संसार में हैं ही, वह तत्वों का तत्त्व है, वह सखा है, (शब्द ध्वनि से (वह हमारी सम्पदा नहीं है, वह हमारे द्वारा आई हैं, दूसरों को देने के लिए, दूसरों को उत्तम बनाने के लिए, आज हमारा यह कर्तव्य नही कि क्या, हम अपनेपन में ही रमण करते चले जायें, यह हमारे जीवन की प्रतिभा नही हैं

उत्तम पुरूष

मुनिवरोंदेखो !, उस समय मुझे स्मरण आता रहता हैं, क्या मुझे एक निमन्त्रण आया, उसी समय में मानो देखो, निमन्त्रण आया, महाराजा अश्वपति के यहाँ यज्ञ हो रहा था, महाराजा अश्वपति यज्ञ में मानो देखो, महर्षि चाक्राणी उस यज्ञ देखो, उद्गाता बनने जा रहे थे, क्योंकि वृष्टि यज्ञ का आयोजन था। अहा, जब वह आयोजन हो रहा था, तो निमन्त्रण आया, क्या वृष्टि यज्ञ में तुम्हें परणित होना हैं। मानो उसमें ओत प्रोत होना है, मेरे हृदय की जो वेदना थी, उसमे मुझे स्मरण आता रहता हैं, क्योंकि निमन्त्रण में जाना बहुत अनिवार्य हैं। महाराजा अश्वपति के यहाँ यज्ञ हैं। अश्वपति महाराज मनु महाराज गोत्र में उत्पन्न होने वाले थे, क्योंकि मनु परम्परा में भी उत्पन्न होने वाले, मानो देखो, एक सहस्र उनकी प्रणाली में मुनिवरोंदेखो !, अश्वपति राजा राज करते थे, जब उनके यहाँ से निमन्त्रण आया, कि यज्ञ में जाना हैं मानो देखो, मैंने अपनी पांच वर्ष की कन्या, कन्या की अवस्था केवल पांच वर्ष की थी, ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए तत्पर हो रही थी, जब यह हृदय में वेदना जाग्रत हुई क्या हे पुत्री! तुम्हारी क्या इच्छा हैतुम य ?हीं आनन्द से रहना चाहती हो, या यज्ञ में परणित होना चाहती हो? उन्होंने कहा प्रभु क्या यज्ञं ! भवा कृतं वेत्ता यज्ञानि मम सर्वं लोकं यज्ञं ब्रहा यज्ञा नमामि अस्वते यज्ञं भवामि नमितं देवं नमो यज्ञता हे गुरुदेवयह आपको प्रतीत है !, यह आपने यह जाना होगा, यह जो यज्ञ हैं, यह तो महापुरूष है, क्या मैं महापुरूष की शरण में नही जाना चाहती हूँ, यह

कैसे हो सकता हैं। आपको यह प्रतीत होगा महाराज दिग्ध ने याज्ञवल्क्य की सभा में क्या कहा था, मानो देखो, यह महाराजा जमदग्नि ने महाराज कोडंग ऋषि से क्या कहा था म (पुस्तक से)हाराजा जमदग्नि महाराजा कोडंग ऋषि के यहाँ क्या कहा था?

यह भी आपको प्रतीत हो गया होगा, कि गार्गी ने यज्ञ के सम्बन्ध में क्या कहा है। महर्षि भारद्वाज ने तो यहाँ तक कहा है, कि यज्ञ ही मानव का जीवन है, यज्ञ ही मानव की प्रतिभा है, , यज्ञ ही मानव के जीवन का एक सार कहा जाता है, क्या मैं यज्ञ में प्रविष्ट नही होना चाहती? यह कैसे हो सकता है? यह मैं कैसे उच्चारण कर सकती हूँ, यज्ञ तो सबसे उत्तम पुरूष है।

सर्वोप्रथम देवता यज्ञ

जिस समय ऋषि मुनियों का यह प्रश्न चला, जमदग्नि ने जिस समय अर्ध भागा अस्तिति ऋषि से यह कहा था, कि हे महाराजदेवता कितने हैं !? तो उन्होंने देवताओं की गणना कराते हुए तीन हजार तीन सौ छह देवताओं की गणना कराई थी। उस समय फिर प्रश्न किया गया, कि देवता कितने हैंतो उन्होंने कहा कि देवता पैंतीस हैं ?, उन्होंने फिर प्रश्न किया कि देवता कितने हैंतो उन्होंने क ?हा कि देवता छह हैं। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि देवता कितने हैंतो उन्होंने कहा कि देवता तीन हैं। उन्होंने फिर प्रश्न किया ?, कि देवता कितने हैं? तो उन्होंने कहा दो हैं। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि देवता कितने हैं? तो उन्होंने कहा कि केवल एक देवता है। उन्होंने कहा कि जो यज्ञ है, यही सब का सर्वोप्रथम देवता है, यही तो संसार में एक देवता है क्योंकि यह जो भी कुछ हो रहा है, हमारी आपकी विचारधारा चल रही है, यह भी यज्ञ है, हम जो कर्म करते हैं यह भी सब यज्ञ है।

यज्ञ का देवता कौन हैयज्ञ का देवता ही मानो अश्वपति कहल ?ाया गया है। और मानो मैं उद्गाता बनना चाहता हूँ, उद्गाता का देवता अग्नि है, उन्होंने कहा कि अग्नि का देवता कौन हैउन्होंने कहा कि अग्नि का देवता ही मानो देखो ?, उसकी वायु है। उन्होंने कहा कि वायु का देवता कौन है? वायु का देवता अन्तरिक्ष है, अन्तरिक्ष का देवता कौन

हैगन्धर्वलोक है ?, गन्धर्व लोक का देवता कौन है गन्धर्व लोक का देवता चन्द्र लोक ? है, चन्द्र लोक का देवता कौन हैचन्द्र लोक का देवता इन्द्र लोक है ?, इन्द्र लोक का देवता कौन है? इन्द्र लोक का देवता प्रजापति है, प्रजापति का देवता कौन है?प्रजापति का देवता यज्ञ कहलाया गया है।

मेरे प्यारेजब यह वाक्य मस्तिष्क में आते रहे !ऋषिवर !, तो चाकरायण ने पुनः प्रश्न किया, हे अत्रि गोत्रीय! मैं यह जानना चाहती हूँ, कि यह जो तुम्हारी यज्ञमयी पुरूष है, मानो हृदय की यह उद्गमता तुम्हें क्या कह रही है? कि उस समय कहा कि समभेवतानी समभगावस्तम् हे ऋषि कन्यामैं यही तो जानने आया हूँ !, कि यज्ञ में मुझे क्या प्राप्त होता है? मैंने तो यह जाना है कि तुमने यह वाक्य अशुद्ध कहा है, उन्होंने कहा कि मैंने इसीलिए कहा है, कि यदि मैं यह वाक्य उच्चारण न करती, तो आपका मुझको निर्णय नही हो सकता था। आप उद्गाता बन जाईएं। उन्होंने कहा कि यज्ञमान से प्रश्न करूं। ?

आहुति के तीन प्रकार

उन्होंने कहा कि यज्ञमान से प्रश्न कीजिए न कीजिए, क्योंकि तुम्हारा जो उत्तर है, उद्गाता बनने के लिए, वह उद्गाता बनने के लिए यथार्थ है। क्योंकि तुम उद्गाता के देवता को जानते हो, परन्तु मैं तुम्हारे से एक वाक्य और जानना चाहूँगी, कि तुम उद्गाता हो ? तुम कौन से उद्गम विचारों से आहुति दोगे। उन्होंने कहा पुत्री! मै तीन विचारों से दूंगा। तीन ही विचार, मेरे समीप रहते हैं, तीन प्रकार की आहुतियां होती हैं संसार में, यज्ञशाला मेँ जो आहुति देता है, वह तीन ही प्रकार की होती हैं, मानो एक राष्ट्रीय आहुति होती है, एक ब्रह्म आहुति और एक मानव आहुति होती है। तीन आहुति होती है, मैं तीनों आहुतियों से यज्ञ करा सकूंगा। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय आहुति कैसी होती है और ?मानवीय आहुति कैसी होती है ?देव आहुति कैसी होती है? उन्होंने कहा देवम् समाप्रधम् ब्रह्मे अस्वाति लोकां चंचनम् लोकम् ब्रह्मे अस्वते !

जो ब्रह्म लोक में जाने वाली आहुति है, जिससे हम ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं, मानो

देखो, परा विद्या से और दूसरी विचार धारा राष्ट्रम् चटायम् चटचच्यप्रभे अस्वति नामाः यज्ञ भेवता, मानो जो यज्ञ में आहुति देने के पश्चात चटाचट होता है। चटाचट का अभिप्रायः यह है कि मानव को जो शरीर है, वह यज्ञ है। इस यज्ञ में जब राष्ट्रीय क्रान्ति आती है, तो उसके हृदय में चटाचट होती है, जैसे अग्नि में दी हुई आहुति चटाचट को प्राप्त होती है। इसी प्रकार मेरा जो यह शरीर है, यज्ञ है, इसमें जितनी भी चटाचट क्रान्ति होगी, मेरे मस्तिष्क में उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा, उतनी राष्ट्रीय क्रान्ति मानवत्व के लिए पवित्र होगी।

यच्यतानं माम वेत्ताम् ब्रह्मे अस्वति धारा मम वेचाः तृतीय आहुति है, जो मनुष्यों में प्रतिष्ठित होती है। इसीलिए मैं तीन विचारों से आहुति देना चाहता हूँ। ऋषि कन्या ने कहा कि यथार्थ है, यह वाक्य तुम उद्गाता बन जाओ।

सम् गतानम् मम वेचाः सम भवति मम् वेचकितम् ममाः अस्वेति भागाम् ब्रह्मे यचतानम् मेधवा च प्रधेः। उस समय अश्वपति ने कहा हे ऋषि कन्या मैं भी चाक्रायण से कुछ ! प्रश्न करना चाहता हूँ? उन्होंने कहा कि कीजिए भगवन तब वह आकृति कन्याम् ब्रह्मे ! अस्तानम् मेधा प्रभे अस्ति अब देखो, मुनिवरोंमहारा !जा अश्वपति ने यज्ञ का चुनाव किया, तो चाक्रायण से कुछ प्रश्न किया, उन्होने कहा कि यह जो तुम बारम्बार स्वाहा देते हो, इसका क्या अभिप्रायः है?प्रत्येक वेदमन्त्र के साथ स्वाहा देते ही इसकी क्या मीमांसा है? उस समय महाराजा चाक्रायण ने कहा था, समा कतम् ब्रधे पुनुरूक्तम् ब्रह्मा स्वाहा लोका प्रधे असित सुमना ग्रणाः मैं जो स्वाहा देता हूँ, वह इसीलिए देता हूँ, कि मेरे हृदय में जो भी दृढ़ता है, नाना प्रकार की त्रुटियां है, वह प्रत्येक आहुति के साथ में, स्वाहा कह करके, जैसे सामग्री अग्नि में भस्म हो जाती है, इसी प्रकार मैं भी इस संसार की जो ब्रह्ममयी ज्योति है, उसे अपनाना चाहता हूँ, स्वाहा दे करके, जो ब्रह्म रूपी अग्नि मेरे शरीर में प्रदीप्त हो रही है, जो यज्ञ रचा है, वह जो ब्रह्म रूपी अग्नि, मेरे हृदय में धधक रही है, उस अग्नि को स्वाहा दे करके चेतनित करना चाहता हूँ। महाराजा अश्वपति ने कहा कि यथार्थ है, इसको उदगाता चुन लो, उस समय उसको उद्गाता चुन लिया गया। चुनने के पश्चात ब्रह्मा भी बनाएं गएं, उसके पश्चात यह विचार आया, कि

अब हमें पुरोहित किसको बनाना चाहिए। महाराज अश्वपति के जो पुरोहित थे, वह महाराज मोगद्ध ऋषि महाराज थे, मोगद्ध ऋषि महाराज जो थे, वह देखो, अकेति अनावृतम् मानो देखो, वायु गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषि थे, वह वहाँ पुरोहित बनाएं गये।

अध्वर्यु

इसके पश्चात जब अध्वर्यु का वाक्य आया, तो अब अध्वर्यु कौन बन सकता है उस ? समय कहा गया कि इस कन्या को इस यज्ञ का अध्वर्यु बनाया जाएं। अब वाक्य आया, कि अध्वर्यु के लिए कुछ प्रश्न होते हैं कि योग्य है अथवा नहीं, उस समय कहा गया कि हम तुम्हें अध्वर्यु बनाना चाहते हैं, तुम अध्वर्यु कैसे बनोगी?

उस समय ब्रह्मे कृताम् मम् अस्वतम् माघ वेत्तो लज्ञाम् भगानम् प्रभे अस्वतिः हे अश्वपति ! वास्तव में मैं यह जानती तो नही हूँ, परन्तु यह मैं अवश्य कह सकती हूँ, कि पूर्व भाग में मुझे आसन दिया जाएं, पूर्व भाग जो है, वह मेरे लिए आसन है। मैं वास्तव में अध्वर्यु का पालन कर सकूंगी। अध्वर्यु का अभिप्रायः यह है कि जिसके ऊर्ध्वागति होती है, क्योंकि संसार का सूर्य ही अध्वर्यु है, सूर्य ही इस पृथ्वी मण्डल का अध्वर्यु कहलाया गया जाता है। अध्वर्यु का अभिप्राय है, अदुगम् ब्रह्मे आस्वानि मानो जो शरीर में अग्नि प्रदीप्त हो रही है, उस अग्नि, सूर्य का जब समन्वय हो जाता है, दोनों का मिलान हो जाता है, तो वही अध्वर्यु का कर्तव्य होता है।

हे प्राणम् प्राचम् प्रभे अस्वतम् प्रजापति न पत्नी अस्वेति कन्या ब्रह्मे ऋषि पुत्रों वृत्यानम् अश्वपति की पत्नी ने कहा कि पुत्री! मैं भी कुछ जानना चाहती हूँ? उन्होंने कहा कि प्रश्न करो, सामग्री का साकल्य कैसा होता है कौन से साकल्य से तुम आहुति देना ? ?तुम्हारा साकल्य क्या है ?चाहती हो

चौबीस प्रकार का साकल्य

हे यज्ञमान पत्नीसाकल्य चौबीस प्रकार का होता है !, चौबीस प्रकार का साकल्य दे करके यज्ञशाला में आहुति दी जाती है। पुनः प्रश्न किया कि हे पुत्री तुम कौन से !

साकल्य से आहुति दोगी? उन्होंने कहा कि संसार मैँ सत्रह साकल्य होते हैं, उनकी आहुति दी जाती है, पुनः से प्रश्न किया कि तुम कौन से साकल्य से आहुति देना चाहती हो? उन्होंने कहा कि ग्यारह साकल्य होते हैं। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि तुम कौन से साकल्य से आहुति देना चाहती हो उन्होंने कहा कि वास्तव में मैं दस साकल्य से ? आहुति दिलाना चाहती हूँ। उन्होंने पुनः फिर प्रश्न किया तो उन्होंने कहा कि मैं एक साकल्य से आहुति दिलाना चाहती हूँ, कैसा सुन्दर वाक्य? कैसा उत्तम वाक्य था। उन्होंने कहा कि हे देवीतुम इनकी मीमांसा करो !, जिस समय तुम यज्ञशाला में अध्वर्यु बनोगी।

चौबीस की आहुति क्या है? तुम्हें प्रतीत है कि जब मानव जन्म लेता है और संसार की जानकारी होती है, तो चौबीस प्रकार का इसको हर्ष होता है। जैसे हमारे यहाँ पांच ज्ञानेन्द्रियां होती हैं, पांच कर्मेन्द्रियां होती हैं, पांच उप प्राण होते हैं, और मन और बुद्धि यह सत्रह बनते हैं, परन्तु हर्ष और शोक मिला दिया जाता है, और माना प्रभो अस्तित् मिला दिया जाता है तो इस प्रकार से यह चौबीस बन जाते हैं और सत्रह से कैसे देना चाहती हूँमानो देखो ?, पांच प्राण, पांच उप प्राण, ज्ञानेन्द्रियां हैं, मन और बुद्धि है, मैं इनका साकल्य बना करके यज्ञशाला में आहुति देना चाहती हूँ। उन्होंने कहा कि तुम ग्यारह से कैसे देना चाहती हो? उन्होंने कहा कि देखो, मेरी दस इन्द्रियां हैं, दसो इन्द्रियों का साकल्य बना करके और ग्यारहवें मन का उसमें समन्वय करके आहुति देना चाहती हूँ। उस समय कहा कि तुम एक से कैसे आहुति देना चाहती हो? उन्होंने कहा कि एक से यह कि मानो मैं एक संकल्प से आहुति दिलाना चाहती हूँ। संकल्प क्या होगा?वह संकल्प केवल जैसे प्रभु का यज्ञ है, ऐसे ही मैं उस संकल्प से आहुति दिलाना चाहती हूँ, उस समय यज्ञमान पत्नी ने कहा कि इसको अध्वर्यु बनाया जाएं। उस समय उसे अध्वर्यु बनाया गया, कितनी उद्गमता होती है, जिसका कोई उद्गम प्रमाण

दिया नही जा सकता।

महाराजा अश्वपति का वृष्टि याग

जब यज्ञ प्रारम्भ होने लगा, तो यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाले पापड़ी ऋषि आ पंहुचे। यज्ञशाला में अश्वपति ने उन्हें आसन दिया। ऋषि जब विराजमान हो गएं, तो वहाँ यह संकल्प था कि वृष्टि हो जानी चाहिए। मुनिवरोंदेखो !, संकल्प मात्र से ही जब वृष्टि प्रारम्भ होने लगती है, यज्ञ के साकल्य बनाएं जाते हैं, बाह्य साकल्य और आन्तरिक साकल्य दोनों का समन्वय हो करके ही संसार में प्रभु की चेतना और संकलनता जागरूक हो जाती है। जागरूक हो जाने के पश्चात वृष्टि प्रारम्भ होने लगी। जब वृष्टि होने लगी तो प्रजा में एक नाद होने लगा, कि ऋषि परम्परा को धन्य है, जो उसके मस्तिष्क में इस प्रकार की विचारधारा आ पंहुची। जब नाद बजने लगा, तो यज्ञ की पूर्ण आहुति भी होनी थी। ऐसा कहा जाता है, कि अश्वपति के यहाँ छह माह तक यज्ञ चलता रहा। उस यज्ञ की पूर्ण आहुति का जब समय आया, तो पूर्ण आहुति में विराजमान हो करके, वहाँ दक्षिणा का प्रश्न आने लगा। महाराज अश्वपति की पत्नी ने कहा कि ब्रह्मा की क्या दक्षिणा होती हैउद्गाता की क्या दक्षिणा ?, अध्वर्यु की क्या दक्षिणा होती है और पुरोहित ?की क्या दक्षिणा होती है ?

दक्षिणा

मुनिवरोंजब दक्षिणा के सम्बन्ध में प्रश्न चलने लगे !, तो ब्रह्मा से यह प्रश्न किया गया कि ऋषिवरमैं यह जानना चाहता हूँ !, कि तुम्हारी दक्षिणा क्या होगी। उस समय ऋषि ने कहा था, कि मैं दक्षिणा क्या लूं, जो तुम देना चाहते हो दे दो। उन्होंने कहा कि जो दक्षिणा है, उसी दक्षिणा को मुझसे प्रश्न करो, मैं उसे देने के लिए उद्यत रहूँगा। मैं वास्तव में उस चेतना का इच्छुक हूँ, तुम उन शब्दों को उच्चारण करो और शब्द के साथ मैं दक्षिणा प्रदान करूं। तो मैं यह चाहता हूँ, कि तुम अपने हृदय का जो संकलन है, उस संकलन की दक्षिणा, मुझे अर्पित कर दीजिए। उस समय कहा कि बहुत सुन्दर महाराजमैं उसका संकलन उसकी त्रुटियां होती है !, इसी प्रकार पुरोहित से प्रश्न किया,

कि आप क्या दक्षिणा लेंगें? उन्होंने कहा कि जो तुम्हारा जीवन है, वह यज्ञमय बना रहे। मैं इस दक्षिणा को चाहता हूँ। उद्गाता से कहा कि हे चाक्रायणातुम ! क्या दक्षिणा लेना चाहती हो? जो वाक्य उच्चारण करोगे मैं वही दक्षिणा प्रदान करूंगा। उन्होंने कहा कि मैं यह चाहता हूँ, कि मेरे जो उद्गम् विचार हैं, मेरा जो उद्गातापन है, वह तुम्हारे गृह में सदैव बना रहे। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर भगवन मैंने इसको प्रदान कर ! तू क्या चाहती है !दिया है। उस समय कन्या पुत्री से कहा गया कि हे पुत्री? उसने कहा कि मैं यह दक्षिणा चाहती हूँ, कि मैंने जो यह नाना चौबीस से ले कर एक संकल्प के साथ में, जो साकल्य से आहुति दिलाई है। मैं इसकी दक्षिणा चाहती हूँ। कि चौबीस प्रकार की जो प्रतिभा है, यह दक्षिणा मुझे अर्पित कर दीजिए। यह मेरे गृह में, मेरे राष्ट्र में सदैव चलती रहेगी। जिससे यह राष्ट्र ऋषियों का बन जाएं। इस कामना के साथ, उन्होंने कहा कि वास्तव में मैंने यह सब दक्षिणा प्रदान कर दी।

अब प्रजापति पत्नी यज्ञशाला में एक आसन पर स्थिर हो गई और ब्रह्मा से कहा कि तुम मुझसे क्या दक्षिणा चाहते हो? उन्होंने कहा कि देवी मैं तेरे से यह दक्षिणा चाहता ! हूँ, कि तेरे हृदय में जो मानवीय अग्नि प्रदीप्त हो रही है, वह अग्नि इसी प्रकार धक्ती रहे। इस अग्नि की मुझे दक्षिणा दे दीजिए। यह अग्नि शान्त न हो पाए। उन्होंने कहा कि मैंने प्रदान कर दी। पुरोहित से कहा कि पुरोहित देवता तुम मेरे से क्या दक्षिणा चाहते ! हो? हे देवीमैं तेरे से यह दक्षिणा चाहता हूँ !, कि तेरे गर्भ से जिस बालक का जन्म हो, उसमें और तेरे में कोई अन्तर नही होना चाहिए। उन्होंने कहा कि मैंने यह भी दक्षिणा प्रदान कर दी है। अब उद्गाता से प्रश्न किया गया, कि तुम मुझसे क्या दक्षिणा पान करना चाहते हो। उन्होंने कहा कि मैं यह दक्षिणा चाहता हूँ कि राष्ट्र में तुम्हारे यहाँ जो भी पुत्रियां हों, कन्यायें हों, वह किसी प्रकार के दुराचार में न रह करके, यह जो मैंने उद्गम विचार, मैंने पुनरूक्ति तीनों से आहुति दी है, यह तुम्हारे सर्वश राष्ट्र में कन्याओं के समीप बनी रहे। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर, यह भी मैंने प्रदान कर दी। ऋषि कन्या से कहा कि हे देवी तू क्या चाहती !है, यों तो तू, आयु में सूक्ष्म है, परन्तु माता के

तुल्य है, क्या चाहती है?

समागच्छम् ब्रह्मे व्यापनोति तम ब्रह्मणो वाचा ब्रह्मे जातनोति कामाः वृध्म् ब्रह्मे। हे देवी ! तेरी मेरी एक जाति है, मैं तुम्हें क्या दक्षिणा प्रदान कर सकती हूँ? उन्होंने कहा कि जाति का प्रश्न नही हैं। यहाँ यज्ञ की दक्षिणा का प्रश्न है, जो, तुम क्या चाहती हो, उन्होंने कहा, कि मैं यह चाहती हूँ सम भवेतानम् चतरुतः लोकाः अश्वेति भागम् ब्रह्मणो आचाः मैं यह चाहती हूँ, जातीय नाते नही उच्चारण कर सकती, कि तुम्हारा और मेरा दोनों का समन्वय हुआ है। तुमने मुझे ऐसे सुन्दर यज्ञ का अध्वर्यु बनाया है। साकल्य का स्वामी बनाया है, मैं यह चाहती हूँ, कि मैंने जो इस प्रकार के साकल्य को बनाया है, वह तुम्हारे इस राष्ट्र में, तुम्हारे ही द्वारा, वह जो तुम्हारी जठराग्नि में, साकल्य बन रहा है मानो वह जैसे यज्ञ मैं साकल्य, शुद्ध पवित्र होता है। इसी प्रकार का साकल्य बना रहेगा। चरित्र रूपी जो साकल्य है, वह तुम्हारा बना रहेगा, तो तुम्हारे अश्वपति का राष्ट्र पवित्र होगा। मैं यह दक्षिणा चाहती हूँ, उन्होंने कहा हे मातेश्वरी मैंने तुम्हें प्रदान ! दिया।

दक्षिणा का प्रश्न तो समाप्त हो गया, परन्तु जब अपने अपने गृह को प्रस्थान करने लगे, तो महाराज अश्वपति ने अपनी पत्नी से कहा कि हे देवी अब द्रव्य की प्रदानता होनी ! चाहिए। क्योंकि दक्षिणा तो हमने प्रदान कर दी है, और दक्षिणा तो हमारी पूर्ण होनी चाहिए। जो हमने दी है, परन्तु अब हमें इनको कुछ देना चाहिए। क्या देना चाहिए? पालन पोषण के लिए देना चाहिए। शारीरिक तत्वों के लिए बाह्य दक्षिणा और देनी चाहिए, वत, यज्ञ ऐसा स्मरण आ रहा है जैसे मैं यज्ञशाला में प्रविष्ठ हूँ। अब जब यज्ञशाला में द्रव्य की प्रदानता होने लगी, तो महाराजा चाक्रायण को सहस्त्र मुद्रा अर्पित कीं और उन्होंने स्वीकार कर लीं।

पुरोहित जो को भी एक सहस्त्र मुद्रा प्रदान कीं और उन्होंने भी स्वीकार कर ली, उसके पश्चात जब ब्रह्मा को बाह्य दक्षिणा देने लगे, तो वह नग्न थे, स्वर्ण के रथ को मुद्राओं से परिपक्क करके, वह ब्रह्मा को अर्पित कर दिया, इसके पश्चात अब अध्वर्यु की दक्षिणा का प्रश्न था। अध्वर्यु की दक्षिणा जब देने लगे, तो अध्वर्यु की दक्षिणा के लिए अश्वपति

पत्नी ने प्रसन्न हो करके कहा कि महाराजजितना सुयोग्य ब्रह्मा है !, उतना ही सुयोग्य अध्वर्यु है, इसको स्वर्ण रथ के साथ एक सहस्त्र मुद्रा और एक सहस्त्र गऊयें प्रदान की जाएं। उन्होंने कहा कि देवी ऐसा नही होना चाहिए। क्योंकि यज्ञ में गऊयें हमने किसी ! को प्रदान नही की हैं, इसीलिए हमारे लिए गऊएं देना योग्य नही हैं। उन्होंने कहा कि भगवनयह कन्या है !, यह आयु में कितनी सूक्ष्म है, और ज्ञान इसका कितना प्रबल है, तुम ज्ञान से देना चाहते हो, अथवा आयु से देना चाहते हो? यह मैं नही जान पाई। उन्होंने कहा कि देवी हमें देना चाहिए, ज्ञान से ही, परन्तु ज्ञान किसी का सूक्ष्म नही हैं। यह तो हमारे सौभाग्य है, हम इनके चरणों की वन्दना कर सकें, उतनी ही सूक्ष्म है, परन्तु देना चाहिए। मानो वह पत्नी की हट के साथ, वह रथ उसे प्रदान किया गया। जब प्रदान करने लगे, तो ऋषि कन्या ने कहा कि मैं इसको स्वीकार नही करूंगी। क्योंकि यह मेरे योग्य नही हैं, मुझे एक सहस्त्र गऊयें नही चाहिए। और न मुझे यह स्वर्ण का रथ चाहिए। मैं तो यह चाहती हूँ, कि मेरा ज्ञान ऐसे प्रदीप्त रहता रहे। उन्होंने कहा कि नहीं, तुम्हे यह स्वीकार करना होगा। मैं इसे स्वीकार नही करूंगी। क्योंकि इससे मैं असन्तुष्ट हो जाऊंगी और तुम्हारे यज्ञ में विघ्न आ जाएगा। और यज्ञ में किसी प्रकार की बाधा नही होनी चाहिए। अध्वर्यु अप्रसन्न होना ही यज्ञशाला में यज्ञ का भ्रष्ट हो जाना चाहिए। जब यह वाक्य महाराजा अश्वपति के मस्तिष्क में आया, तो उन्होंने कहा कि मैं यह वाक्य कैसे स्वीकार करूं। परन्तु यह वाक्य तो स्वीकार करने योग्य है। परन्तु क्या प्रदान करें। उन्होंने कहा कि जो इच्छा। अश्वपति ने कहा कि मेरी इच्छा तो पूर्ण हो चुकी है। अब तुम अपनी इच्छा प्रगट करो। तो उन्होंने कहा कि मेरी इच्छा यह है कि जितना द्रव्य आपने उद्गाता को दिया है, उतना मुझे प्रदान कर दीजिए। क्योंकि मैं उसी की अधिकारी हूँ, मानो यहाँ अधिकारी अनाधिकारी का प्रश्न आ जाता है। कन्या को एक सहस्त्र मुद्रा प्रदान की गई। रथ और मुद्रा को लेकर वहाँ से प्रस्थान किया।

दक्षिणा पर गुरुदेव से विवाद

अब मार्ग में चले जा रहे थे, और गुरु के प्रश्न हो रहे हैं, हे भगवन स्वर्ण के रथ का !

आप क्या करोगे? आप तो वस्त्र भी ग्रहण नही करते, कोई वस्तु नही हैं। आपने ब्रह्मा पद को अपनाया है, और इतने द्रव्य को अपना लिया है, द्रव्य का आप क्या कर सकेंगें? उन्होंने कहा कि हे देवीयह हमारे कार्यों में आ जाएगा। महाराज !! क्या कार्य करोगे? वास्तव में यह द्रव्य तो कोई सम्पदा नही हैं, उन्होंने कहा कि नहीं देवी यह ! वास्तविक सम्पदा तो नह‌ी हैं, परन्तु वास्तविक सम्पदा के साथ में, यह हमारे पालन पोषण में तो आ जाएगी। पालन पोषण भी तो एक वास्तविक सम्पदा होती है। तो भगवनइससे पूर्व आप क्या कार्य करते थे !? इससे पूर्व आपके शरीर की पालना पोषणा कैसे होता था? उन्होंने कहा देवीयह तो प्रायः प्रभु देता ! ही है। हे भगवन ! यदि हम इस द्रव्य को त्याग दें, तो क्या प्रभु अब नही दे सकेगा। उन्होंने कहा पुत्री! अवश्य प्रदान करेगा, परन्तु यज्ञमान के यहाँ से जो हमें प्राप्त हुआ है, वह हमारे पालन पोषण में आ जाना और उसका संकल्प पूरा हो जाना, बहुत अनिवार्य है। तो क्या प्रभु! मैं यह स्वीकार कर सकती हूँ, कि मैं इस द्रव्य को अपनाकर चलूं? उन्होंने कहा कि नही, पुत्रीअपनाओं या न अपनाओ !, परन्तु तुम्हें यह वाक्य स्वीकार कराना होगा, कि महाराजाअश्वपति के यहाँ जो वस्तु हमें प्रदान हुई है !, वह तो बहुत ही सुन्दर है, वह उनका संकल्प है, उसी संकल्प के साथ हमारा जीवन बनेगा, उन्होंने कहा चलिए भगवन !

परन्तु जब प्रश्न उत्तरों के बिना न रहा गया, तो मार्ग में रथ को स्थिर कर लिया और स्थिर करके यह कहा कि आप यज्ञ के ब्रह्मा बने, मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, उसके पश्चात मार्ग में रथ आगे चलेगा, उन्होंने कहा विराजमान हो जाओ, दोनों विराजमान हो गएं, और यह कहा कि भगवनआपने मेरे से यह कहा था कि ! यह जो प्रकृतिवाद है, यह हमारे विनाश का कारण बन जाता है। फिर आपने विनाश का कारण क्यों अपना लिया हैउन्होंने कहा कि ? हे देवी! यह मार्ग जो हमने अपनाया है यह विनाश का वास्तविक मार्ग नही हैं, क्योंकि विनाश का मार्ग उस काल में हो जाता है, जब कि हम इसमें संलग्न और इसमें सक्रिय हो जाते हैं, हम इसमें सक्रिय नही हैं, हमारा इसमें कोई मिलान नही हैं, हम इससे पृथक भी हैं और इसमें संलग्न भी हैं। तो उन्होंने कहा तो

भगवनआप पृ !थक कैसे हैं? उन्होंने कहा कि पुत्रीतुम दृष्टिपात कर रही हो !, कि अंग कौन सा ऐसा है, जो संलग्न है, किसी कार्य में। उन्होंने कहा कि यह तो नही हैं, परन्तु आपके मन की भावना यह क्या कह रही है, कि आपने इसको अपना लिया है। मेरे विचार में तो यह आता है, कि यह सब द्रव्य अश्वपति के राष्ट्र के लिए अर्पित कर दिया जाएं। उन्होंने कहा कि पुत्रीऐसा नही होगा !, क्योंकि ऐसा होना हमारे लिए असम्भव है, क्योंकि यह यज्ञ की जो दक्षिणा है, यज्ञ की दक्षिणा को, इस प्रकार प्रदान करना हमारे लिए योग्य नही हैं, उन्होंने कहा तो भगवन मैं तो !आगे जाऊंगी नहीं, मैं तो यहीं आसन लगाऊंगी, क्योंकि मैंने तो अपने प्रथम वाक्यों में कहा है कि नाना प्रकार की ऋषि कन्याओं को मैंने धिक्कारा है, और मैंने भारद्वाज गोत्र को भी धिक्कारा है। मुद्गल गोत्र को भी धिक्कारा है, इस सम्बन्ध में, मैं उनको अब क्या उत्तर दे सकूँगी?

उन्होंने कहा कि हे पुत्री! धिक्कारने का प्रश्न नही हैं, यह तो हमारे संकल्प शक्ति का प्रश्न है, इसमें तुम्हारा विवाद नही होना चाहिए। उन्होंने कहा तो भगवनअब कैसे हो !? उन्होंने कहा कि चलो, अपने आश्रम में चलेंगें, वहाँ जैसी भी इच्छा हो, वैसा ही कर लेंगे। तुम्हारे जो विचार हैं, उससे मेरा विचार कदापि भी पृथक नही।

कन्या ने उस रथ को लेकर प्रस्थान किया। सारथी से कहा कि रथ को अपृत दिशा में ले चलो। मानो प्राचीदिग दिशा में उस रथ का आगमन कराया। उसी दिशा में आश्रम था, जब आश्रम में प्रविष्ट हो गएं, तो नाना ऋषि बालिकाएं, पुत्राणी सब आए, कि आज ऋषि के आश्रम में यह क्या आया है, क्योंकि कन्याओं ने ऐसा रथ कदापि भी दृष्टिपात नही किया था, जब राष्ट्र में जाने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ, तो उसको दृष्टिपात करने का सौभाग्य भी कैसे प्राप्त हो सकता था। यह सब कुछ होने के पश्चात प्रश्न उत्तर होने लगे, कि महाराजतो उत्तर देते हुए कहा कि रथ है ?यह क्या है !, इसमें द्रव्य है, अश्वपति के यहाँ से प्राप्त हुआ है। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर स्थिर हो गए,

रात्रि छा गई और विश्राम की मुद्रा में चले गये।

ब्रह्मवेत्ता के लिए दो महा कलंक

अर्ध रात्रि का जब भाग आया, तो मूल नक्षत्र की प्रतिभा आ रही थी। पुत्री ने पुनः प्रश्न किया, कि महाराज! द्रव्य का क्या करोगेइस द्रव्य को प्रदान कर दो ?, यह द्रव्य हमें नही चाहिए। यह हमारे ब्रह्म वेत्ताओं के लिए कलंक हैं, इस जीवन को कलंकित बनाना, आपका हमारा कर्तव्य नही हैं। उस समय पुत्री से कहा कि तुम मेरे आसन से चली जाओ। जहाँ से तुम आई थीं, वही चली जाओ, अन्यथा तुम्हारा मस्तिष्क फट जाएगा। उन्होंने कहा भगवन! मेरा मस्तिष्क फट जाएगा, कैसे फटेगा? तुम इस विषय में अति प्रश्न करने लगी हो। अति प्रश्न करना ही तुम्हारे मस्तिष्क के दो भाग हो जाना है, कन्या शान्त हो गई।

वह रात्रि समाप्त हो गई। रात्रि में फिर कोई प्रश्न उत्तर नही चला, दिवस आया, परन्तु दिवस में भी कोई प्रश्न उत्तर नही चला, क्योंकि शिष्य के लिए भयभीत हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। पुनः जब रात्रि आई, तो गुरु ने कहा कि हे पुत्री तुम्हारी ! इच्छा क्या है? उन्होंने कहा कि भगवनमेरी इच्छा है !, कि ब्रह्मवेत्ताओं को कलंकित नही होना चाहिए, ब्रह्मवेत्ता के लिए दो महा कलंक होते हैं, एक द्रव्य का कलंक होता है, और एक भोग, नाना प्रकार की जो विकृतियां हैं, एक वह, उसके लिए चरित्र महा कलंक हैं, इसके पश्चात जो लोकेष्णा, वह भी उसके लिए कलंक है, द्रव्य के तीन कलंक अपनाने से आप कलंकित होते है। इसीलिए हमें नही अपनाना चाहिए। तो अब करना क्या चाहिए? इस द्रव्य को महाराज अश्वपति को दीजिए, अन्यथा ऋषियों को प्रदान कर दीजिए। ऋषियों में नही प्रदान करते, तो भिक्षुकों के अंग हैं, उन्हें प्रदान कर दो। भिक्षुकों को भी नही देना चाहते, तो नदियों को अर्पित कर दो, नाना प्रकार के प्राणी इस स्वर्ण को पान कर जाएंगें। जब यह कहा गया तो ऋषि का हृदय दहलता था, क्योंकि ऋषि यज्ञ के ब्रह्मा बने थे, और ब्रह्मा को दक्षिणा प्रिय होती है, ब्रह्मा के लिए उस समय कहा, तो पुत्री! तुम्हें जो यह एक सहस्त्र द्रव्य प्राप्त हुआ है, क्या तुम

इसको अर्पित कर सकोगी। उन्होंने कहा कि प्रभुमेरे तो किसी कार्य का नही हैं !, क्योंकि आप भी नग्न रहते हैं और मैं भी नग्न रहती हूँ। दोनों में यह प्रश्न आता ही नहीं, दोनों मैं विशेषता यही है, कि मैं प्यारी सूक्ष्म पुत्री हूँ, दोनों की विडम्बना, दोनों के साथ साथ नही चल सकेगी।

मुनिवरोंदेखो !, परिणाम यह हुआ, कि वह सब द्रव्य और रथ को ले जाकर सरयू के तट पर भिक्षुकों को दान कर दिया, स्वर्ण का रथ अश्वपति को अर्पित करने चल दिये। जब रथ को अर्पित करने गएं, तो पुत्री ने कहा कि भगवनआप जाईएं !, आप यज्ञ के ब्रह्मा बने हैं, अश्वपति को रथ अर्पित कीजिए। उन्होंने कहा कि मैं रथ के साथ नही जाऊंगा, क्योंकि मुझे लज्ञा आती है, जो यज्ञ की दक्षिणा है, उसको अर्पित करना हमारा कर्तव्य नही हैं। तो पुत्री ने कहा, तो मैं जा रही हूँ भगवन उस समय कन्या ! यह मेरे !रथ के साथ चली गई। जाने के पश्चात अश्वपति से कहा कि महाराज पूज्यपाद ने रथ आपको अर्पित किया है, आपके ही लिए। उन्होनें कहा कि हे ऋषि कन्यामैं इसको नही अपनाऊं !गा। कन्या ने कहा कि और कौन इसको अपनायेगा?उन्होंने कहा कि ऋषि इसको अपनाएँगे। वही इसके ऊपर विश्राम करें, वहीं देखो, आँगन में भ्रमण करें। कन्या ने कहा कि इस पर कोई भ्रमण नही करेगा। इसको आप अपनाईएगा। अन्यथा यह आपका रथ है, इसे स्वीकार कीजिए । उन्होंने कहा कि मैं तो स्वीकार नही करूंगा। मेरा संकल्प मेरे समीप आ जाएं, वह कैसे हो सकता है? यज्ञ का संकल्प है। कन्या ने कहा तो जाओ, यदि यह संकल्प, , आपका यज्ञमान का है, तो यहाँ अध्वर्यु का संकल्प है, तुम अध्वर्यु के संकल्प से इसे स्वीकार कर लो, उन्होंने कहा मैं इसे स्वीकार नही करूंगा। यदि ब्रह्मा मुझे पुनः संकल्प करें, तो मैं इसे स्वीकार कर सकता हूँ। तुम अध्वर्यु हो, मैंने तुम्हें एक सहस्र मुद्रा दी थी, उन्हें तुम संकल्प कर सकती हो, और उसें मैं स्वीकार कर सकता हूँ। परन्तु रथ के संकल्प को मैं पुनः अपने में अपनाता चला जाऊं इसका मुझे अधिकार नही है।

देखो, यह जटिल वाक्य पुत्री के समीप आया। उसने कहा कि मैं अभी जाती हूँ, और अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अग्रित करती हूँ, इसका आपको संकल्प लेना ही होगा।

उन्होंने कहा कि जाओ, ब्रह्मा जी से कहो मेरे लिए वह संकल्प दें देवें। मैं इस संकल्प को अवश्य अर्पित कर सकता हूँ। क्योंकि उनका संकल्प मुझे प्राप्त हो जाएगा, मेरा संकल्प उन्हें प्राप्त हो गया है। मानो **जैसे ब्रह्म का संकल्प प्रकृति को प्राप्त हो गया और प्रकृति का संकल्प ब्रह्म को प्राप्त हो गया, दोनों का संकल्प मिलकर के एक संकल्प बन गया है। मैं ऐसे स्वीकार कर सकता हूँ।**

अब यह बहुत तीव्र गति से भ्रमण करती हुई, गुरु के समीप आई और गुरु से कहा कि महाराजअब आप इस रथ को संकल्प कराईए !, अश्वपति को। उन्होंने कहा कि पुत्री! मैं नही जाऊंगा। मैंने पुनः कहा है कि उसे मैं सकल्प नही कर पाऊंगा, उसने कहा कि नही आओगे, तो मैं अपने प्राणों की दक्षिणा अर्पित कर सकती हूँ, आपके लिए, क्योंकि यह हमारे लिए कलंक है, जो हमें अच्छा नही लगता।

कारण लिङ्ग में वार्ता

उसको अवश्य अर्पित करना चाहिए। उन्होंने कहा कि तुम प्राणों को किसी भी काल में नही त्याग सकती, क्या तुम ब्रह्मवेत्ता कहलाती हो? ब्रह्मवेत्ता यह कहता है कि तुम प्राणों की आहुति कैसे दे सकती हो क्योंकि प्राण तुम्हारा नही हैं, प्राण सदैव रहने वाला है, प्राण में यह सर्वश ओत प्रोत है, इस शरीर को त्याग करके जाओगे, तभी प्राणों के साथ में चले जाओगे। तुम्हें यह प्रतीत नही हैं, तुम कौन से प्राण को त्यागना चाहती हो, उस समय कहा, कि मैं उस प्राण को त्यागना चाहती हूँ, जिससे तुम्हें मैं दर्शन न दे सकूं। उन्होंने कहा कि ब्रह्मे योगक प्रभे अस्ति। तुमने योग की मुद्राओं को दृष्टिपात नही किया, योग में कोई कार्य असम्भव नही हैं। योग में यह आता है, कि यदि तुम सूक्ष्म शरीर रहोगी, तो वहाँ भी वार्त्ता प्रगट हो सकती है, यदि तुम कारण लिंग में चली जाओगी, तो मुक्ति को प्राप्त हो करके, कारण लिंग में हम वार्त्ता प्रगट कर सकते हैं। तुम कहाँ जाओगी, प्रभु के क्षेत्र से कोई मानव पृथक नही हैं।

जब यह वाक्य आया, तो देखो, कन्या थी और मानो देखो, शिष्य थी, निरूतर हो गई, जब कोई उत्तर न बन सका, तो अन्त मैं यह कहा, कि आप संकल्प कराईए। उन्होंने

कहा कि मैं तुम्हारे कथानानुसार संकल्प करा सकता हूँ, परन्तु जहाँ तक प्राणों के त्यागने का प्रश्न है, वह आगे किसी के आगे उच्चारण नही होना चाहिए। क्योंकि वह मृत्यु है, हताश होना ही संसार में मृत्यु है। तुमने यह निराशा कैसे स्वीकार कर ली कि मेरे पूज्य गुरुदेव मेरे कथनानुसार कार्य नही करेंगें। मैं अवश्य कर सकूंगा, जो मेरे और तुम्हारे दोनों का लाभ है, और जहाँ प्रतिष्ठा का प्रश्न आता है, वहाँ त्याग करना चाहिए, क्योंकि त्याग संसार में जीवन है। पुत्री! चलो। दोनों ने प्रस्थान कर दिया। अश्वपति के यहाँ पंहुचे, महाराजा अश्वपति ने अपने आसन को त्याग दिया और ऋषि को आसन दिया, राज सिंहासन पर विराजमान करा करके, पति पत्नी दोनों ने उनके चरणों को स्पर्श किया। उन्होंने कहा कि अश्वपति! मैं इस रथ को संकल्प करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर, आपसे संकल्प स्वीकार करूंगा, क्योंकि पूज्यनीय ऋषियों से अपना संकल्प स्वीकार नही करूंगा, तो कौन कर सकेगा। मेरे तो यह बड़े पुण्य हैं, वहाँ वह संकल्प अर्पित कर दिया और अपने आश्रम में प्रविष्ट हो गये।

तो वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है, कि संसार में मानवता क्या है? देवतव् क्या है? इन कार्यों के करने के लिए, जब मानव को इतनी अति ज्ञानता हो जाती है, प्रभु का यह ज्ञान हो जाता है, कि प्रभु ही यज्ञ है, प्रभु ही संकल्प है, जब संकल्प और सभी प्रभु मैं प्रवीण हो जाता है, तो उस समय न तो मानव में दुराचारता रहती है, न किसी कन्या के हनन करने की प्रवृत्ति आती है, मानो वह संसार में व्यापकता को प्राप्त हो करके, ब्रह्मवेत्ता की शरण में जा करके, उसी में अपने को परणित कर लेता है।

अब आज का हमारा यह वाक्य समाप्त हो गया है। आज के वाक्यों का अभ्रिप्रायः बेटा ! तुमने जान लिया होगा, तो मैंने अपने वाक्यों से प्रदीप्त किया है, आज के वाक्य यह है, कि हम वास्तव में त्यागी और तपस्वी बनें। जीवन की प्रतिष्ठा को उत्तम बनायें, आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन पाठन होगा।

५ 08 11 1969 पुष्प 14 सर्वोदय

जीते रहोदेखो !,आज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से,

जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्पराओं से उस मनोहर पद्धति का वर्णन होता रहता है जिस पद्धति में उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा विराजमान रहती है, जब हम परमात्मा की आनन्दमयी प्रतिभा का वर्णन करते हैं, तो हमारा हृदय गद्गद होने लगता है। मैं यह कहा करता हूँ कि वह जो चेतनावत है हमारे जीवन का उद्धारक है जिसकी महिमा मानव की वाणी से असमर्थता को प्राप्त हो जाती है, परन्तु जब हम विचार विनिमय करने लगते हैं, कि हमारा जो वैदिक विचार है, वह मानव के लिए कितना उपयोगी है और मानव के लिए क्या क्या उपदेश देता है, तो हमें यह प्रतीत होता है, कि वही तो प्रभु की उज्ज्वल प्रतिभा, वही जो ज्ञान है क्योंकि संसार में प्रत्येक मानव का अन्तरात्मा उत्सुक रहता है, कि मैं ज्ञान की प्रतिभा को जानने वाला बनूं। यहीं तक नहीं, वह नाना लोक लोकान्तरों के विषय को भी जानने के लिए तत्पर रहता है। उसकी एक उत्कट इच्छा होती है, कि मैं संसार का एक विशेष वैज्ञानिक बनूं। परन्तु मुझे यहाँ विज्ञान के सम्बन्ध में कोई विवेचना नहीं देनी है, केवल वाक्य यह प्रकट करना है कि वह जो आनंदमय प्रभु है, जो संसार में सबसे उदार है, जिसकी महानता, जिसका ज्ञान भी अनुपम है, उस प्रभु के लिए हमें सदैव अपनी मानवता को न्यौछावर कर देना है।

कल मेरे प्यारे महानन्द जी ने बहुत सुन्दर वार्त्ता प्रकट की। वास्तव में उनमें कटुता ! प्रायः थी, परन्तु वाक्य बहुत सुन्दर। , कल मेरे प्यारे महानन्द जी ने सर्वोदय के ! सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये। आधुनिक काल का सर्वोदय और परम्परा के सर्वोदय दोनों की तुलना की। जो मानव सबका उदय चाहते हैं, उनके हृदय में एक वेदना होती है, कि मेरा जो अन्तरात्मा है वह वास्तव में सबके उदय के लिए पुकारता रहता है। यहाँ सबके उदय के लिए पुकारता रहता है, यहाँ सबके उदय के लिए प्राणी मात्र आ जाता है, कल मेरे प्यारेमहानन्द जी ने एक वार्त्ता बहुत सुन्दर प्रकट की !, कि एक स्थान में गो रूपी पशु का भक्षण है और एक स्थान में सर्वोदय की घोषणा की है। प्यारे महानन्द जी वाक्य तो बहुत सुन्दर था, वह टिप्पणी युक्त था। हमारी टिप्पणी इनके वाक्यों पर इसलिए हुआ करती है, क्योंकि इनका जो कटुता से युक्त वाक्य होता

है उससे मेरा हृदय कोई प्रसन्न और सन्तुष्ट नहीं होता। मानव का यह कर्त्तव्य है कि अपनी कटुता को त्याग देना ही चाहिए। उस कटुता को जब मानव त्याग देता है, तो उसके विचारों में एक माधुर्य आ जाता है। प्रायः मानव के विचार अनुसन्धान युक्त हों, परन्तु कटुता से युक्त नहीं होने चाहिए। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने वाक्य तो बहुत ही सुंदर कहा परन्तु मैं यह टिप्पणी और करना चाहता हूँ, कि इनके वाक्यों में कितनी वास्तविकता थी, कि वह सबके उदय के लिए पुकार रहे हैं।

सबका उदय

सबका उदय कैसा होगा? मानव का उदय कैसे होगा? हम मानव का उदय चाहते हैं या प्राणी मात्र का उदय चाहते हैं, प्राणी मात्र के उदय में और मानव के उदय में कितना अन्तर है, इसकी अन्तर्द्वन्द्वता भी हमें विचारनी है। जब हम यह विचारते हैं, कि इन दोनों में कितना अन्तर्द्वन्द्वता है, तो हमें यह प्रतीत होता है कि वास्तव में हम इस विचार पर पहुँचने के लिए तत्पर हों, ऋषि मुनियों का जो विचार है वह तो बहुत ही बहुत ही सुंदर है। सबका उदय कैसे होता है? कैसे कल्पना की जाती है? मानव को विचारों की एक गोष्ठी बनानी है। विचारों पर जब हमारा अनुसन्धान होता है, तो मानो देखो, हम पशु का भी कल्याण चाहते हैं। वेदों में मन्त्र आते हैं, हम सभी का कल्याण चाहते हैं। पशु का भी कल्याण चाहते हैं, प्राणी मात्र का कल्याण चाहते हैं। जब हम यह विचारने लगते हैं, कि हमारा जीवन किन किन पशुओं से कितना जुड़ा हुआ है, कितना उसका मेल है, जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी ने !प्रकट करते, हुए कहा था इन्होंने कल अपने वाक्यों में कहा था कि गो रूपी जो पशु है, इसमें कितना विज्ञान है, इसके प्रत्येक श्वास में विज्ञान है। इसके श्वास में कितना विज्ञान है, इसके प्रत्येक श्वास में विज्ञान है। इसके श्वास में एक विशेष सुगन्ध होती है, उसमें एक विशेष प्रकार के परमाणु होते हैं, उन्हीं परमाणुओं में मानव जीवन की उद्गमता का हमें परिचय होता है। उसका जो घृत्त है उसमें भी कितनी सुगंध है उसका जो राप्रतम है उसमें भी महानता की ही बेला प्राप्त

होती है

जब हम इसके ऊपर और विचार विनिमय करने लगते हैं, कि उसके दुग्ध में कितने स्वर्ण की मात्रा है, इससे भी हमें यह अनुभव होता है, कि वास्तव में गो रूपी पशु के विज्ञान से हमें प्रतीत होता है कि राजा के यहाँ, ऐसे पशु के विशेषज्ञ वैज्ञानिक होने चाहिए, जिससे गो रूपी पशु के सम्बन्ध में यह विचार विनिमय करने लगे और उस पर उसकी विचारधारा वास्तविकता को जानने के लिए तत्पर हो जाएं। राजा को चाहिए, राजा की प्रतिभा ही होती है, राजा और प्रजा दोनों के मिलान से ही सब का उदय हो सकता है परन्तु जब राजा तो किसी प्रकार की वेदना में है और प्रजा किसी प्रकार की वेदना में है और किसी के हृदय में एक वेदना यह है कि मैं सबका उदय चाहता हूँ, तो देखो, तीन धारा राष्ट्र में कदापि नहीं चलती। यह उस काल में चलती हैं, जब तीनों का सम्बन्ध राष्ट्र के विचारों से सुगठित रहता है। राष्ट्र के नियमों में वह नियमबद्धता होती है, उस समय वह दोनों ही विचारधारा में सुगठितता आ करके सब के उदय की कामना की जा सकती है। एक मानो ब्राह्मण है, वह ब्रह्मण यह कहता है कि मैं सबका उदय चाहता हूँ, वह राजा से मिलान करे और राजा से कहे कि हे राजन् मैं अपने ! विचार यह देना चाहता हूँ कि तेरे राष्ट्र में सबका उदय हो और कैसा उदय हो, कि तेरे राष्ट्र में हिंसक प्राणी नहीं होने चाहिए। दुराचारी को दण्डित किया जाएं और गऊ भक्षक को, प्राणों का दण्ड दिया जाएं। इस प्रकार से जब राजा और ब्राह्मण दोनों ही एक साथ में विराजमान हो करके, उसकी विचारमयी विचारधारा चलती है, तो वास्तव में ब्रह्मवेत्ता के और एक आत्मवेत्ता के, आत्मनिष्ठावादी के और राजा के दोनों के विचारों में जब एक सहकारिता आ जाती है, तो वास्तव में सबके उदय की कामना की जा सकती है।

राष्ट्रीयता

देखो, मेरे प्यारेमहानन्द जी ने एक वाक्य बहुत ह !ी सुन्दर प्रकट किया था, कि संसार में जो यह पांच तत्त्व हैं यह सबके लिए सार्वभौम कहे जाते हैं। वह किसी भी राष्ट्र का

प्राणी हो, किसी भी लोक लोकान्तरों में रहने वाला प्राणी हो, परन्तु उसे यह पांचों वस्तु प्राप्त होती हैं। यदि पांचों वस्तु उसके समीप नहीं होंगी, तो उसके जीवन का राष्ट्रीयकरण नहीं होगा। राष्ट्रीयकरण का अभिप्राय यह है, कि राष्ट्रीयता उसे कहते हैं जहाँ मानव के जीवन में एक अनुशासन की मात्रा होती है। अनुशासन से मानव का जीवनबद्ध होता है। उसी काल में तो उसकी राष्ट्रीयता की सहकारिता का परिचय हमें प्राप्त होता है।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने बहुत सुन्दर सुन्दर वाक्य कल प्रकट किये। उसमें एक वाक्य ! यह भी था, कि मानव को अपनी अन्तरात्मा को कितना निष्ठावादी बनाना है। निष्ठावादी ऐसा बनाना है, ब्रह्म के ऊपर विचार होना चाहिए, परन्तु वह यह न विचारे कि जो मैंने अब तक जाना है, वही सर्वशः विज्ञान है। यह मानव को विचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि संसार में जानना कोई सहज नहीं होता, जानकारी बहुत ही गम्भीरता से प्राप्त होती है। प्रत्येक मानव के सम्बन्ध में विचारना, उसके जीवन को विचारना, उसकी वाणी के ऊपर विचार विनिमय करना, उसके प्रत्येक इन्द्रियों के संयम को विचारना, यह प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य नहीं होता।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा करता था, एक समय मैं, बाल्यकाल में महर्षि सोमयुत ऋषि महाराज से प्रभावित हुआ। मेरी विचारधारा यह थी कि मैं इनके सत्संग में पहुंचू, मैं इनके द्वारा जाता परन्तु वर्ष इनके सत्संग के पश्चात् 12, मुझे यह प्रतीत हुआ, कि यह आत्मा किस प्रकार की है, इसकी विचारधारा किस प्रकार की है। एक राष्ट्रीय विचारधारा वाले, एक सामूहिक विचारधारा वाले प्राणी को जानना मानव के लिए सहज नही होता, क्योंकि उसको बहुत सी विचारधाराओं पर विचार करना होगा, आज प्रत्येक मानव दूसरों कि त्रुटियों पर विचार विनिमय करता रहता है, परन्तु हमें दूसरों के दुर्गुणों पर दृष्टिपात नहीं करना है हमें सदैव उसके गुणों पर दृष्टिपात करना है। जब हम गुणों का दिग्दर्शन करेंगे, तो हमारे जीवन में पवित्रता की एक धारा विराजमान हो जाएगी। जब हम यह विचारने लगते है, कि वास्तव में यदि हमें गुण प्राप्त नहीं होता और हमें अवगुण ही प्रतीत होता है, उसमें अंतरात्मा दुखित होता है तो

हमें ऐसे प्राणी को त्याग देना चाहिए क्योंकि गुणों को और अवगुणों को दोनों को विचार करके त्यागना है, परन्तु त्यागने का अभिप्राय यह नहीं है, कि उस मानव को त्याग देना चाहिए, उसकी दूरी को त्याग देना चाहिए । जितने उसके दुर्व्यसन हैं उनको त्यागने में मानव को कितना सहज और उतम बनना है । जब हम राष्ट्रीयता पर विचारते है, कि राष्ट्रीयता कैसी होनी चाहिए?

मैंने बहुत पूर्व काल में अपने विचार दिए हैं कि राष्ट्रीयता कैसी होना चाहिए। राष्ट्रीयता वह कहलाई जाती है जहाँ राष्ट्रीयता मानव के आत्मबल के ऊपर निर्भर रहती हैं, जो राजा हमारा नेता बना है, उसके द्वारा कितनी निष्ठा है, हमें उसकी निष्ठा को विचारना है, कि वास्तव में हमारा राष्ट्र कैसे उत्तम होगा। इसके विचार याज्ञिक भी हैं या नहीं। याज्ञिक विचार उसके होते हैं, जो प्रत्येक स्थान में, प्रत्येक काल में प्राणी मात्र के आनन्द के लिए ही विचारता रहता है। हमें सदैव यह विचारना है, कि वह जो मानव है, वह कितना सुन्दर बन गया है। मानव की जो व्याख्या है, मीमांसा है, वह बड़ी महान और उत्तम कहलाई गई। क्योंकि मानव कौन होता है? जो मननशील होता है। कैसा मनन करता है वह? वह सर्वोदय का मनन करता है, कि सर्वोदय कैसे आ सकता है। मेरी आत्मा कैसे प्रसन्न रहेगा। जिस कर्म से, जिस ध्वनि से मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न होता है, वही मैं दूसरों के लिए करूंगा। तो वास्तव में सबका उदय हो सकता है, अन्यथा उदय होने का प्रश्न नहीं उत्पन्न होता।

ब्रह्मवेत्ता

मुझे एक वाक्य बड़ा ही स्मरण आता रहता है। एक समय यहाँ शम्भु मनु महाराज जो हुए है, उनकी जब पांच सौ प्रणाली समाप्त हो गई अर्थात् उनके जो पांच सौवें प्रपौत्र भृंगी राजा थे, उनके यहाँ महर्षि भारद्वाज आ पधारे। महर्षि भारद्वाज का जब आगमन हुआ, तो भृंगी राजा ने अपने को बड़ा सराहा, उन्होंने कहा कि हमारे कैसे सौभाग्य हैं, कि हमारे आश्रम में महर्षि भारद्वाज पधारे हैं। राष्ट्र में घोषणा हो गई, कि ऋषि का आगमन हुआ है, महापुरुष का आगमन हुआ है, हमारे यहाँ जब राष्ट्र में कोई भी राजा

जाता था, तो इतनी प्रसन्नता नहीं होती थी, परन्तु जितनी जब ब्रह्मवेत्ता जाता था, तो राष्ट्र में घोषणा हो जाती थी क्योंकि वह ब्रह्मवेत्ता है । ब्रह्मवेत्ता किसे कहते हैं? जिसका प्रत्येक इन्द्रिय पर संयम हो और प्रत्येक के विज्ञान को जानता हो। महर्षि भारद्वाज से जब राजा ने प्रश्न किया, कि महाराजआप ब्रह्मवेत्ता कैसे हैं !? उस समय महाराज भारद्वाज जी ने कहा था, कि मैंने तो अपने को किसी भी काल में ब्रह्मवेत्ता नहीं कहा है। उन्होंने कहा कि अपने को किसी काल में ब्रह्मवेत्ता नहीं कहा है, परन्तु हमें तो यह प्रतीत होता है, कि आप ब्रह्मवेत्ता हैं। महर्षि भारद्वाज जी ने कहा कि मैं ब्रह्मवेत्ता हूँ, परन्तु व्यष्टि समष्टि को जानता हूँ, प्रत्येक इन्द्रिय में व्यष्टि का व्यापार होता रहता है, उसी के आधार पर मैं अपने को ब्रह्मवेत्ता कह सकता हूँ। राजा भी वही होता है जो सबका उदय चाहता है, अपनी प्रजा का उदय चाहता है। तेरी प्रजा में क्या उदयपन है?

मानव हिंसक

महर्षि भारद्वाज ने जब यह प्रश्न किया, कि तुम्हारे राष्ट्र में कौन सा उदय हो रहा है? तो उस समय राजा ने कहा कि महाराज !मैं तो यह जानता हूँ कि आप मेरे राष्ट्र में भ्रमण करके देख लीजिए। मेरे राष्ट्र में कोई एक दूसरे का ऋणी प्राप्त नहीं होगा। यदि आपको कोई ऋणी प्राप्त हो जाएं, तो वास्तव में मेरा राष्ट्र दुराचारी राष्ट्र है। तो मुनिवरों! वह वाक्य आजतक ऐसा स्मरण है जैसे अभी यह वाक्य प्रारम्भ हो रहा हो, महर्षि भारद्वाज ने उनके राष्ट्र में भ्रमण किया। तो उनके राष्ट्र में प्रत्येक मानव सुख सम्पदा से सम्पन्न है। कैसा सम्पन्न है? कि राजा को किसी के द्वार पर जाने की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु उनका जो राज ऋण है, वह भी उनके समीप आ जाता है, पितर ऋण है, पुत्र अपने पितर ऋण को उऋण कर रहे हैं, माता अपना कार्य कर रही हैं, राजा के राष्ट्र में इतनी कुशलता थी, इतनी अहिंसा परमोधर्म की तरंगे थी, कि गो की सेवा हो रही है, पशु के दुग्ध का जब समय होता तो राजा के राष्ट्र में यह विचारधारा थी, ब्रह्मवेत्ता यह कहा करते थे, कि जिस राजा के राष्ट्र में जो पशु है जब दूध देता है,

यदि वह दुखित होता है, उससे डंडे से दूध लिया जाता है, वह भी राजा के राष्ट्र में एक हिंसा कहलाई जाती है। वह भी उन्होंने हिंसा में परणित की। जब उन्होंने हिंसा कहा, तो राजा के राष्ट्र में एक नाद बजता था, जैसे कल के वाक्यों में प्यारे महानन्द जी ने महाराजा कृष्ण की चर्चा प्रकट की थी, मैंने कई काल में प्रकट की है, आज भी स्मरण आती चली जा रही है, कि जब गोएं आती, तब एक नाद बजता और जब उनको दुहा जाता, तो वह प्रसन्न हो करके, जब दूध दिया करती, तो जो भी मानव, जो भी मेरी प्यारी माता, उस दूध को पान करती, तो उनका हृदय भी अहिंसा परमोधर्म में परणित हो जाता। हिंसा कहाँ से प्रारम्भ होती है? हिंसा मानव की वाणी से प्रारम्भ होती है। हिंसा, मानव की वाणी में कटुता होती है। वाणी में मधुरता नहीं है, वाणी ज्ञान से सनी नहीं है, वाणी में कटुवाद है, तो वह मानव संसार में हिंसक कहलाता है। इसलिए वाणी पर संयम करने की आवश्यकता प्रायः रहती है।

राष्ट्र में चार विभाग

विचार विनिमय यह चल रहा था, कि आज हम वास्तव में अपना और सबका उदय चाहते हैं। महर्षि भारद्वाज ने भृंगी राजा से यही कहा था। इन्होंने सर्वशः राष्ट्र में भ्रमण किया, तो राजा के राष्ट्र में कोई एक दूसरे का ऋणी नहीं था। वह कितना सुन्दर राष्ट्र होता है, कितना सुन्दर सबका उदय है। राजा के राष्ट्र में चार ही विभाग होते हैं। एक विभाग ब्राह्मणों का होता है, बुद्धिमानों का होता है, जो राजा की प्रजा में सुन्दर उपदेश देने वाले होते हैं। एक विभाग वह होता है, जो सबकी रक्षा करने वाला होता है। दूसरे राष्ट्र से भी रक्षा की जाती है। जिस राजा के राष्ट्र में ऐसी धाराएं हुआ करती हैं, तो उस राष्ट्र पर कोई आक्रमण भी नहीं किया करता है।

हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है। हमें विचार विनिमय यह करना है कि हम सबका उदय कैसे चाहते है सबके उदय के लिए किन किन सामग्री की आवश्यकता है? सबसे प्रथम बुद्धिमान ब्राह्मण की आवश्यकता है, जो राजा को साहस पूर्वक उच्चारण कर सके और उसका विचार इतना बलवान हो, कि राजा के विचारों को बाध्य कर सके। उनको

राजा नहीं कहते, जिनको महानन्द जी ने कहा, कि अपने उदर की पूर्ति करने को राजा नहीं कहा करते, क्योंकि राजा वह होता है, जिस राजा के राष्ट्र में एक दूसरे को उन्नत बनाने के विचार बनाएं जाते हैं। अपनी उन्नति, अपनी आत्मनिष्ठा और अपनी प्रजा की निष्ठा पर लगे रहते हैं। राजा के राष्ट्र में एक दूसरे का ऋणी भी कोई नहीं होता और उस राजा के राष्ट्र में सदैव महानता की तरंगे ओत प्रोत रही हैं।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर ! बेटा !तुम मेरा यह वाक्य श्रवण कर ही रहे होगे। तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा कि कटुता में महानता नहीं होती। यहाँ उज्ज्वलता में महानता के दिग्दर्शन होते हैं। एक मेरी प्यारी माता है, उस माता के प्रति कितनी उद्गमता है, माधुर्य है, कि बालक उसको कितनी उदण्डता में परणित कर देता है परन्तु माता विचलित नहीं होती। वह अपनी ममता को नहीं त्यागती। इसी प्रकार राष्ट्र में किसी प्रकार की विडम्बना आ जाएं, परन्तु राजा अपने कर्त्तव्य को नहीं त्यागता। यदि वह त्याग देता है, तो प्रजा भी और राष्ट्र भी दोनों ऐसे समाप्त हो जाते हैं, जैसे नौका भंवर में आ जाने के पश्चात् समाप्त हो जाती है । तो यह विचारना है । राजा और प्रजा दोनों को स्वार्थी नहीं बनना चाहिए। परन्तु प्रथम राजा स्वार्थी बना करता है, प्रजा उसके पश्चात् बना करती है। यह प्रायः नियम होता है। देखो, प्रथम पिता दुराचार में चला जाता है। पुत्र उसके पश्चात् दुराचारी बनता है। प्रजा राष्ट्र का पुत्र होती है। यदि उसके द्वारा विडम्बना आ गई तो प्रजा में भी विडम्बना अवश्य आयेगी। राष्ट्र में यदि पद लोलुपता आ गई है, तो प्रजा में पद की इच्छा बलवती होती चली जाएगी। इसी प्रकार राजा और प्रजा दोनों को विचारने की आवश्यकता है। दोनों को महानता पर चलना है।

प्राण के कार्य

वेद में राष्ट्र के नाना विधान आते हैं। एक राष्ट्र वह होता है, जो देखो, केवल एक ही राजा होता है, एक वह होता है, जो राजा चुना जाता है, भिन्न भिन्न विभाग के मनुष्य होते हैं जैसे हमारे इस मानव शरीर में पांच प्राण हैं, पांचों प्राणों में अपना अपना यन्त्रालय उनके समीप रहता है जैसे व्यान है, यह अन्तरिक्ष से सम्बन्धित है, यह प्रसारण

का कार्य करता है और उदान सब वस्तु को पचाता है, उत्तम बनाता है, रस बनाता है और सामान्य जो यन्त्रालय है उसमें वितरण करने की शक्ति होती है। वह वितरण अच्छी प्रकार करता है । जैसा जिसका भागहै वैसा उनको वितरण कर देता है। इसी प्रकार यातायात का कार्य अपान का होता है। अपान पृथ्वी के भाग को कृत्तम कर देता है, शुद्ध कर देता है। इसी प्रकार जो प्राण है, उसका सम्बन्ध मानो आवागमन करता है, । इसी प्रकार जो यातायात का कार्य है, विभाजन का कार्य है, दूसरों से लेना है, कितना लेना है, कितना देना है, यह प्राण का कार्य होताहै। यह पांच यन्त्रालय होते हैं। मानव के शरीर में ही पांचों यन्त्रालयों का और उनका विभाजन भी इसी में परणित रहता है। इसी प्रकार आज हमें विचार विनिमय करना है, कि हम वास्तव में उदय की घोषणा करने से पूर्व अपने मानवत्व को कितनी उत्तम बनावें । अपने मानवत्व की कितनी उत्तम भावना हमारे हृदय में होनी चाहिए, जिससे हमारा जीवन एक मानवीय क्षेत्र में ऐसा प्रतिष्ठित हो जाएं, कि उसकी प्रतिष्ठा इतनी उज्ज्वल बन जाएँ, जैसे सूर्य है। सूर्य की प्रतिष्ठा कोई नष्ट नहीं कर सकता, उसके प्रकाश को कोई अप्रकाश में नहीं ला सकता, इसी प्रकार मानव का कर्त्तव्य है राजा और प्रजा दोनों का ही कर्त्तव्य है। इसके आधार पर जब हमारे यहाँ राष्ट्रीयकरण होता है, राष्ट्रीय विचारधारा बनती है तो उससे यह समाज उन्नत होता है। राष्ट्रीवत् उन्नत होता है। इसी से मानवीयता की प्रतिष्ठा उत्तम बना करती है।

तपे हुए वाक्यों का प्रभाव

तो मेरे प्यारेमुझे !ऋषिवर ! स्मरण आता रहता है, यह जो संसार है । मुझे वह ऋषि मुनियों का काल भी स्मरण आता रहता है, जहाँ राजा के राष्ट्र में ऋषि नियम बनाते थे। एक समय जब भगवान मनु प्रणाली में श्वेतन नाम के राजा हुए, तो जब उनके पिता भिराकृती समाप्त हुए, तो राजा के मन में यह विचार आया, कि यह मेरा चुनाव कौन करेगा। मेरे राष्ट्र के नियम मुझे कौन निर्धारित करेगा। तो श्वेति राजा को जब यह ज्ञान हुआ, तो नाना ऋषियों को निमन्त्रण दिया। उसमें महर्षि रेवक, आकूत ऋषि

भारद्वाज, जमदग्नि इत्यादि ऋषिवर पहुंचे और राष्ट्र का नियम बनाया और यह कहा कि हे राजाहम तुझे इस प्रजा का स्वामी चुनते हैं। तुम इस !के लिए सुयोग्य हो। सुयोग्य न होते, तो हम चुनते ही नहीं। महर्षि भारद्वाज को सभापति बनाया गया, तो जब वहाँ चुनौती प्रदान करने लगे, तो राजा को यही हुआ, कि मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ जो मेरा चुनाव ब्रह्मवेत्ता कर रहे हैं। उनके हृदय में ही तो एक वेदना होती है। ऋषि कहते है, भारद्वाज जी कहते हैं, कि राजा के यहाँ एक नियम होता है, कि राजा उत्तम पुरूषों को चुनना चाहिए, क्योंकि राजा वह होता है, जो उत्तम पुरूषों का चुना हुआ होता है और जिस राजा को अशिक्षित प्रजा चुना करती है वह राजा संसार में कोई उत्तम नहीं होता। वह जो अपठित समाज है, अपठित जो प्रजा है, उसके लिए ऋषि कहते हैं, मनु जी ने भी कहा है और भी ऋषियों ने कहा है कि एक ब्रह्मवेत्ता का वाक्य एक स्थान में है और एक करोड़ अपठित प्राणियों का वाक्य एक स्थान में है। परन्तु वह जो पठित है, तपा हुआ प्राणी है, तपा हुआ महान ब्रह्मवेत्ता है, उसका वाक्य उससे और भी करोड़ों गुना अधिक बलवान कहलाया गया है । यह ऋषि कहता है, दर्शन कहता है क्योंकि जो वाक्य जितना तपा हुआ होता है, उतनी ही उसमें विद्युत होती है, शक्ति होती है। इसी प्रकार हमारे तपे हुए विचारों से, राजा का चुनाव होना चाहिए। राज्य का चुनाव जब अपठित प्राणियों से होता है, तो उस राजा के राष्ट्र में शीघ्र ही क्रान्ति आ जाती है, और वह कैसी क्रान्ति आती है?वह जो अपठित प्राणी होते है, उनमें एक दूसरे में विवाद हो जाता है कैसा विवाद हो जाता है? की उसमें एक दूसरे को नष्ट करने की इच्छा बलवती हो जाती है, जो महापुरूष होते हैं, उनके विचारों को नष्ट किया जाता है और जो अपठित होते हैं, उनके विचारों को उन्नत किया जाता है। वह क्यों किया जाता है? क्योंकि अपठित प्राणी उसके पिछले विभाग में विराजमान हैं।

एक तो वह मानव है जो मृगराजों से किलोल करता है, मृगराजों के मध्य में विराजमान होकर, मृगराजों को कण्ठ से लगा रहा है और एक वह मानव है, जो मृगराज तो नहीं है, परन्तु दूर से उनकी वाणी को सुनकर भयभीत हो रहा है, उसका हृदय तो इतनी कम्पनता में है। उसका अन्तरात्मा तपा हुआ नहीं है, निष्ठावादी नहीं है, ज्ञान में तपा

हुआ नहीं है, परन्तु जो मृगराज से किलोल कर रहा है, मग्न हो रहा है और अपने आँगन में लिए हुए है, उस मानव का अन्तरात्मा कितना महान हो सकता है, बेटा ! यह किसी काल में मानव ने अनुभव किया है। इन वाक्यों को अनुभव करना चाहिए। जो मानव सबके उदय का वाक्य कह रहा है, एक तो वह मानव है, और एक मानव वह है जो अपने उदर की पूर्ति करने की योजना बना रहा है, मानो एक मानव वह है, जो अपने उदर की चर्चा कर रहा है, और एक मानव जो सबके उदर की चर्चा कर रहा है उस मानव की वाणी में, उससे एक करोड़ गुना अधिक महानता होती है। क्यों होती है? अन्तरिक्ष में भी यदि उसकी वाणी जाती है, तो उसकी वाणी में वहाँ भी तेज होता है, ओज होता है, पवित्रता होती है, महानता होती है और वह जो अन्तरिक्ष में जाती है तो जो अशुद्ध शब्द है उन्हें नष्ट करती है। उसमें अरबों खरबों तरंगित हो जाता है एक क्षण समय में, तो ऐसा हमारे यहाँ विज्ञान काल में विज्ञानवेत्ताओं ने कहा है, कि वाणी का कितना प्रभाव होता है। वाणी में कितनी कृति होती है, कितनी उसमें प्रतिभा होती है, तो मैं वाणी के विज्ञान में नहीं जाना चाहता हूँ।

राष्ट्र का उत्थान

केवल वाक्य हमारा यह प्रारम्भ था, कि हम एक मानव को दूसरे मानव से उत्तम बनाना चाहते है, प्राणी मात्र को उत्तम बनाना चाहते है, राजा के राष्ट्र में यह नियम होते थे। मनु जी की प्रणाली में एक पशु वध भी नहीं होता था, पशु का कितना स्वागत होना चाहिए क्योंकि पशु से मानव का जीवन बहुत ही सुगठित है जैसे माता का प्रिय पुत्र है। माता पुत्र का कितना सम्बन्ध है, कितना निकटतम सम्बन्ध। इसी प्रकार मानव का सम्बन्ध पशु से कितना सुगठित है, तो उसे हमें अपनी रसना के आनन्द में आकर पान नहीं करना चाहिए। राजा को यह नियम बनाना चाहिए, कि मेरे राष्ट्र में पशु वध नहीं होगा। सबका उदय होगा। यह राष्ट्र का कार्य है। ब्राह्मण के इतने ऊँचे विचार हों, कि राजा को जाकर के कहें, कि हे राजाया तो मेरे वाक्य को स्वीकार कर ले !, अन्यथा मेरे प्राणों को नष्ट कर दे। मेरे प्यारे महानन्द जी ने कल यह वाक्य बहुत ही सुन्दर !

कहा था और बड़ी घोषणा के सहित कहा था। वास्तव में यह हमारी परम्परा की घोषणा है। इन्हीं विचारों के स ाथ अन्तरिक्ष की रचना होती है। इन्हीं विचारों के साथ यज्ञवेदी की रचना होती है। इन्हीं विचारों से राष्ट्रीयवाद आता है। राष्ट्रीयवाद वैसा ही वाद नहीं है। राष्ट्र के सम्बन्ध में वेद में बहुत सुन्दर कहा है, कि राष्ट्र वह होता है, जिस राजा के राष्ट्र में एक कन्या एक कौने से दूसरे कौने को चली जाएं, परन्तु प्रजा में उस कन्या को कोई पत्नी की दृष्टि से पान न करने वाला हो, जब माता, पुत्री या भोजाई इन तीन के सिवाय चतुर्थ वाक्य नहीं आता, तो जानो कि उस राजा का राष्ट्र, वास्तव में पवित्र बन गया है। यदि यह विचार राजा के राष्ट्र में नहीं बन पाते, तो राजा के विचार कहीं है, प्रजा के विचार कहीं है, मानो चरित्रहीनता आ जाती है। उस राजा के राष्ट्र में बहुत ही शीघ्र समय में नपुंसकता आ जाती है। नपुंसक वह राजा होता है जिस राजा के राष्ट्र में कायरपन के कार्य होते हों और कैसे कार्य, कि एक मानव दूसरे की कन्या पर अधिपथ्य करने वाला हो, उस राजा के राष्ट्र में यह सबसे अधिक कायरपन कहलाया जाता है। वह कायर राजा होता है, जिस राजा के राष्ट्र में एक दूसरे की पुत्री को पुत्री की दृष्टि से दृष्टिपात नहीं किया जाता। क्या वह कोई राजा है? क्या उसको राष्ट्र कह सकेंगेउसमें सब !के उदय की घोषणा करना जैसे महानन्द जी ने कहा है, वह महान कार्य नहीं होगा। सबके उदय के वाक्य उच्चारण करना तो बहुत ही सहज है, परन्तु उसको लाने के लिए कितनी तपस्या करने की आवश्यकता है। राजा के राष्ट्र में लगभग देखो, ऐसे विचार जब एक सहस्र बन जाते हैं, तो राजा के राष्ट्र का उत्थान हो जाता है परन्तु एक भी होता है, तो उसी से उत्थान हो जाता है। परन्तु उसके विचार इतने तपे हुए होने चाहिए, उसका कार्य इतना कुशल होना चाहिए। मैंने पूर्व काल में यह वाक्य बहुत प्रकट किए है। मुझे स्मरण आता रहता है, रघु प्रणाली में भी सौमभूक नाम के ऋषि हुए जिन्होंने भूदान यज्ञ के सम्बन्ध में, सबके उदय के सम्बन्ध में, बहुत कुछ कार्य किया परन्तु उसमें राजा को सुगठितता न होने के कारण, उसमें वह अधूरापन रह ही जाता है। क्योंकि यहाँ बुद्धिहीन प्राणी भी तो होते रहते है, प्रारब्ध के साथ साथ भी तो प्राणी चलता रहता है। आज जो मानव यह चाहता है, कि मैं भू यज्ञ करना

चाहता हूँ, भू यज्ञ में मानो सबके प्रारब्ध को एक सा मिला दूं, तो यह उसकी बहुत ही विडम्बना है। यह उसके द्वारा विचार नहीं है उसके द्वारा प्रारब्ध का विचार होना चाहिए, ब्रह्म का ज्ञान होना चाहिए, ब्रह्मवेत्ता यदि वह मानव नहीं है, राजा को नहीं अपना सकता और विडम्बना में अपने विचारों को इतना सुगठित नहीं बना पाता कि राजा उसके विचारों से बाध्य हो जाएं, तो वह कार्य कदापि सम्पन्न नहीं होगा। उसमें अधूरापन रह ही जाता है।

भू यज्ञ

इसी प्रकार त्याग और तपस्या के सम्बन्ध में मैं अपने विचार समय समय पर प्रकट करता रहा हूँ आज यह नवीन वाक्य नहीं चल रहा है। इस भू यज्ञ के सम्बन्ध में, मैं सर्वत्र रात्रि भी अपने विचार प्रकट करता रहूँ, तो यह वाक्य समाप्त नहीं होगा, क्योंकि भू यज्ञ का अभिप्राय, भू नाम पृथ्वी का है, भू यज्ञ उसे कहते हैं जो पृथ्वी के विज्ञान को जानता है। पृथ्वी में खाद्य और खनिज पदार्थों को जानता हैं। मानो जो निर्धन है, उनके प्रति भी उनकी इतनी सहानुभूति होती है इसलिए इसे भू यज्ञ कहते हैं। इस पर सभी प्राणी भ्रमण करते हैं, सभी को भूमि का कृत्य देना ही हमारे लिए योग्य है क्योंकि भूमि सभी के लिए होती है। वायु सभी के लिए होती है, अग्नि भी सभी के लिए एक ही तुल्य होती है। आकाश भी वैसा ही कार्य करता है। पांचों तत्त्व मानव के शरीर में कार्य करते रहते है। इसी प्रकार पांचों तत्व प्रत्येक मानव को प्रायः प्राप्त होने चाहिए और होने के लिए परमात्मा देता है। वह मानव नहीं दे सकता, क्योंकि मानव वायु नहीं देता, अग्नि नहीं दे सकता, आकाश नहीं दे सकता परन्तु आज मानव भू यज्ञ करने में कितना सफलता को प्राप्त हो सकता है, यह मेरे कहने का वाक्य नहीं है। यह राजा का कार्य है कि राजा के राष्ट्र में जो बुद्धिहीन प्राणी हैं जिन्हें हम शूद्र कहते हैं, शूद्र किसे कहते? जो एक मानव को, मानो द्रव्य प्रदान कर दीजिए, वह अभिमान में आ करके, उस द्रव्य को प्रारब्ध के वशीभूत बहुत ही सूक्ष्म समय में समाप्त कर सकता है, उसी धन को किसी बनज करने वाले को प्रदान कर दीजिए वह उसमें प्रबलता लाएगा,

उसमें उज्ज्वलता लाएगा। इसी प्रकार आज कोई मानव यह कहता है कि हमारा राष्ट्र राष्ट्रीयकरण में परणित हो गया है जैसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने प्रकट कराते ! हुए कहा है मैं आज उन्हीं के वाक्यों परटिप्पणी कर रहा हूँ। इनके वाक्यों पर मुझे टिप्पणी करनी पड़ती है, क्योंकि इनके वाक्य टिप्पणी युक्त होते हैं, परन्तु मैं एक वाक्य यह कह देना चाहता था कि वास्तव में मैं सबका उदय चाहता हूँ मानव भी चाहता है, सभी मानव राष्ट्रीयवाद भी चाहता है परन्तु भू यज्ञ का अभिप्राय क्या है कि जब राजा के राष्ट्र में मानव अजीर्ण हो जाता है, उस अजीर्ण के लिए प्रयत्न करना चाहिए। अजीर्ण राजा के राष्ट्र में नहीं होना चाहिए। यदि अजीर्ण हो गया है, वैश्य समाज में यदि एकत्रित करने की प्रवृत्ति बन गई है, तो उस राजा को चाहिए वह वैश्यों को दण्ड दे। कैसा दण्ड?कि उससे औषध जैसे, एक मानव को अजीर्ण हो जाता है, मानो मानव का जो उदर है उसमें अग्नि मन्द हो जाती है, तो वैद्यराज ऐसी औषधि देता है, कि अग्नि तीव्र हो जाती है। इसी प्रकार राजा के राष्ट्र में वह जो वैश्य रूपी उदर है, वैश्य को ऐसी औषधि देनी चाहिए, जिससे अग्नि प्रचण्ड हो जाएं और वह अग्नि प्रचण्ड कैसे होगी? जब यहाँ डण्डा रूपी औषधि प्रदान की जाएगी। जब तक अग्नि रूपी डण्डा प्रदान नहीं किया जाएगा, तब तक राजा का अजीर्णपना नष्ट नहीं होगा मानो वह अग्नि चेतन नहीं होगी।

वैश्य रूपी जो अग्नि है, उसको चैतन्य बनाना है, परन्तु जब यहाँ राजा स्वयं स्वार्थ में चला जाता है, राज्य की भावना, जब द्रव्य को एकत्रित करने में लग जाती है, तो उस दण्ड रूपी अग्नि को कौन प्रदान करेगा?

वाक्य केवल यह है, कि हमें सबके ऊदय के लिए भू यज्ञ करने के लिए, हमें पशु के लिए यज्ञ करना है, मानव मात्र के लिए यज्ञ करना है, तो हमें राजा को कहना चाहिए कि हे राजा तेरे राष्ट्र में अजीर्णता नहीं होनी चाहिए और जो तेरे राष्ट्र की जो अग्नि ! है, वह मन्द नहीं होनी चाहिए। राष्ट्र की अग्नि यदि मन्द हो गई तो तेरे राष्ट्र में अव्यवस्था आ जाएगी। जैसे अल्पकाल में इन तत्त्वों में एक दूसरे में सुगठितवाद नहीं होता, उसी काल में तो मृत्यु होती है अपान वायु और प्राण वायु जब दोनों का मेल हो जाता है,

दोनों का एक स्थान मैं मिलान हो जाता है, तो मृत्यु हो जाती है, प्राणान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार हे राजनयदि तेरी ! अग्नि मन्द हो गई, मानो तेरे राष्ट्र का जो उदर है और यदि उदर रूपी अग्नि मन्द हो गई और मन्द होकर के सान्त्वना को प्राप्त हो गई, स्वार्थवाद के जल ने और भी इस अग्नि को मन्द कर दिया, तो हे राजन राष्ट्र का ! जो हृदय है, राष्ट्र का जो उदर है, वह ऐसे शान्त हो जाएगा, जैसे अग्नि को जल निगल जाता है, जल का कोई स्थान भी प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार तुझे विचारना है। मानो यह ब्राह्मण का कार्य है, यह ब्रह्मवेत्ता बुद्धिमानों का ही कर्त्तव्य है। इसको दे करके, राष्ट्र को उत्तम बनाना है। यह है आज का हमारा आदेश। रोहटा में चौ. नारायण सिंह राजवीर सिंह के निवास स्थान पर दिया हुआ प्रवचन

६ 09 11 1969 दीपमालिका पुष्प 13

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर पद्धति का प्रायः वर्णन होता रहता है, जिस पद्धति का किसी भी काल में ह्रास नही होता, सदैव उसमें नवीनवाद रहता है, उसमें वृद्धपन आने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, हमारा जो वैदिक साहित्य है, अथवा वैदिक जो परम्परा है, उसके ऊपर मानव को सदैव विचार विनिमय करने की आवश्यकता है क्योंकि उस महान पवित्र ज्ञान में उस मानव की सम्पदा है जो मानव संसार में विचारणीय होता है क्योंकि विचारों की सम्पदा वैदिक ज्ञान में रहती है, वैदिक प्रकाश उसकी सम्पदा है क्योंकि जो मानसिक विचारधारा मन से मनन करने वाला होता है, जो धर्म के मर्म को जानने के लिए तत्पर होता है उसकी मीमांसा हमारे आचार्यों ने भिन्न भिन्न रूपों में परणित की है। परन्तु जब हम विचार विनिमय करने लगते हैं, कि हमारी ऋषि परम्परा क्या कह रही है, हमारे यहाँ यज्ञ ब्रह्मे मेरे प्यारेमहानन्द जी मुझे बाध्य करते चले जा रहे थे !, कि कुछ यज्ञ

के सम्बन्ध में प्रकाश दीजिए।

यज्ञ

मैने कई काल में यज्ञों के सम्बन्ध में बड़ी बड़ी सुन्दर विवेचनाएं की हैं। आज का हमारा वेद पाठ भी यज्ञ के लिए प्रेरित करता चला जा रहा था। यज्ञ भवेत्ता प्रभे अस्तम वेद का आचार्य कहता है कि यज्ञ क्या है? तो वेद का ऋषि कहता है कि यज्ञ ही मानव का जीवन है। यह जो सर्वस्व ब्रह्माण्ड है, लोक लोकान्तरों है, यह प्रजापति में निहित रहते हैं, जैसे इन्द्र लोकों में यह निहित रहते हैं इसी प्रकार इन्द्र भी प्रजापति में निहित रहता है प्रजापति में उसको प्रतिष्ठा होती है। जब हम यह विचारने लगते हैं कि जब इसकी प्रजापति में निष्ठा है, तो प्रजापति किसमें ओत प्रोत है? तो वेद का ऋषि कहता है, कि याज्ञिक पुरूष कहते हैं कि यज्ञ में उसकी निष्ठा रहती है। यज्ञ में वह ओत प्रोत रहता है। मानो दूसरे रूपों में वह प्रजापति कहा जाता है।

जब हम यह विचारने लगते है। कि यज्ञ ही प्रजापति है क्योंकि यज्ञ से ही मानव सुन्दर सुन्दर कर्म करता रहता है। मैंने कल की अपनी विचारधारा में, महानन्द जी के शब्दार्थों पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि संसार में जो भी मानव सुन्दर कर्म करता है, ऊँचा कर्म करता है, निस्वार्थ है, तो वही तो यज्ञ कहलाया जाता है, उस सभी को यज्ञ कहा जाता है, जिसमें त्याग भावना होती है। त्याग की जहाँ प्रवृत्ति होती है, वहीं याज्ञिक पुरूष होते हैं। मेरे प्यारे ऋषि ने कहा !है कि मानव की वास्तव में सात्विक भावना के साथ में त्याग की प्रवृत्ति होनी चाहिए। त्याग प्रवृत्ति में ही तो जीवन है। त्याग प्रवृत्ति में ही तो मानवत्व की प्रतिभा विराजमान हो रही है । हमारी जो प्रतिभाहै, मानव की जों प्रतिष्ठा है उस महानता में परणित रहती है, जहाँ मानव की विचारधारा महान और पवित्रता में कहलाई जाती है।

अन्तरिक्ष की पवित्रता

आओ, मेरे प्यारेआज मैं अपने विचारों को अधिक विलम्ब नही करने जाऊंगा !, केवल विचार यह है कि यज्ञ कर्म किए जाए। यज्ञ की दी हुई जो आहुति है, वह जब अग्नि

में प्रविष्ट की जाती है, तो अग्नि उसका प्रसारण कर देती है, देवताओं को अर्पित कर देती है, वायुमण्डल में महान तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। जैसा भौतिक वैज्ञानिक कहता है कि मानव की वाणी जब अन्तरिक्ष में प्रसारण होती है, अन्तरिक्ष में उसकी प्रतिभा जाती है, तो जितना शोधा हुआ, तपा हुआ शब्द होता है, याज्ञिक शब्द जितना होता है, उतना ही अन्तरिक्ष पवित्र होता है, उतना ही गृह पवित्र होता है, मानो देखो, अपनी वाणी सुगन्धि के सहित होती है, तो देवता भी प्रसन्न होते है।

हमारे यहाँ, परम्परागतों से यह माना है कि संसार में जब भी कभी किसी प्रकार की प्रकृति का प्रकोप होता, अनिष्ट कर्म होता, उसी समय हमारे यहाँ प्रतिक्रिया होती। आज परम्परा का यह पुनीत दिवस है, जिस सुन्दर पर्व में कृषक अपने गृहों में याज्ञिक कर्म किया करते थे। मुझे वह स्मरण आता रहता है। जिस काल में कृषक अपनी भूमि के गर्भ में बीज की स्थापना करके, यज्ञ कर्म किया करते और प्रभु से याचना करते, हे प्रभुहमारा सुन्दर अवसर है !, हम यह चाहते हैं, हमने वसुन्धरा के गर्भ में बीज की स्थापना की है, हे प्रभु उसके लिए !पर्जन्य दे, उसके लिए जल औषध प्रदान कर, जिससे हमारी यह कृषि महान् उत्तम बनें। और हम याज्ञिक बनें हमने यज्ञ तो कर दिया है त्याग का, अब हम अपने गृह में, देवयज्ञ करना चाहते हैं, तो देवयज्ञ प्रत्येक कृषक के गृह में, वास्तव में अनिवार्य था। हमारे यहाँ परम्परा से ही ऐसा माना गया है। कृषक के यहाँ जब यज्ञ कर्म होता है, तो उपासना प्रभु से की जाती है, देवताओं से की जाती है। हे देववत्! हमारी जो कृषि है, उससे हमारे लिए सुन्दर अन्न की उत्पति होनी चाहिए, क्योंकि अन्न से ही तो हमारा जीवन बनेगा, पवित्रता आयेगी। हे प्रभु हम यज्ञ कर्म ! करने वाले हों।

यज्ञ कर्म का महत्व

तो मुनिवरोंयह वह सुन्दर पर्व दीपमालिका ! कहलाती है, जिस सुन्दर दीपमालिका में राजा, महाराजाओं के यहाँ सुन्दर यज्ञ कर्म होते। कैसे यज्ञ? ऋषि मुनियों को, ब्रह्मचारियों को भयंकर वनों में से ले जाया जाता, मुझे भी बेटा कई कई काल में नाना राजाओं !

के यहाँ यज्ञ कराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है त्रेता के काल में राजा रावण के यहाँ भी यह परम्परा थी और भी नाना राज्यों में इस प्रकार की परम्परा कहलाई जाती है। हमारे यहाँ तो वैदिक साहित्य में यह परम्परा होती है, कि दीपमालिका का अभिप्रायः है, कि प्रत्येक गृह में मानो वह दीप होना चाहिए, जिस दीप में मानो कृति होनी चाहिए, जिसमें प्रतिभा, विचार मानो मानव के विचार की सुगन्धि, प्रत्येक इन्द्रिय की जो कर्मठता है, वह हमें इस दीपमालिका से ही सिद्ध होती है, कि हमारी प्रत्येक इन्द्रिय प्रकाशमय होनी चाहिए। रात्रि भी हमारी प्रकाशमय होनी चाहिए, अन्धकार हमारे जीवन को छू न पाए। अज्ञान मानव को उस काल में छूआ करता है, जब मानव के द्वारा अज्ञानवाद होता है, उस अज्ञान में ही तो मानव की मृत्यु होती है। आज हमें मृत्यु से पार होना है। मृत्यु को उलांघना है। मृत्यु को उलांघाने का कोई कर्म है, तो वह यज्ञ कर्म है। उससे मानव की प्रतिष्ठा में अन्तर्द्वन्द्व नही होता इसीलिए प्रत्येक स्थानों में यज्ञ कर्म की प्रतिभा हमारे मस्तिष्कों में होनी चाहिए। आज मैं सूक्ष्म सी विवेचना देने आया हूँ, मेरे प्यारे महानन्द जी इसकी विवेचना अच्छी प्रकार कर सकेंगें। हम तो यह उच्चारण ! करने आएहै, कि हम सदैव प्रभु से याचना करते रहें और यज्ञमान के गृह में किसी प्रकार की सूक्ष्मता नही होनी चाहिए, धन इत्यादि से पुत्रवत् सभी प्रकार से मानव के द्वारा सम्पन्नवाद होना चाहिए। सम्पन्नता जब मानव के मस्तिष्क में होती है, गृह में होती है, सम्पन्नता यज्ञ कर्मों में होती है तो उससे वास्तव में मानव गृह पवित्र होता है। भावनाओं में यज्ञ करना चाहिए। द्रव्यों से यज्ञ अधिक नही होता, भावना और श्रद्धा उसमें प्रतिष्ठित होती है, महान प्रमुख होती है।

मानव की प्रतिष्ठा

मुनिवरोंदेखो !, हमारे यहाँ याज्ञवल्क्य से कहा गया था, कि महाराजाप्रजापति य !ज्ञ में ओत प्रोत है तो यज्ञ किसमें है, तो यज्ञ किसमें है?तो उन्होंने कहा था कियज्ञ श्रद्धा में है और श्रद्धा किसमें ओत प्रोत है ? वह हृदय में हैं, मानो हृदय की प्रतिष्ठा ही मानव

को सदैव बाध्य करती रहती है, वही तो मानव को याज्ञिक बना देती है।
मेरे प्यारे !ऋषिवरजब हमारे यहाँ राष्ट्र में सबसे प्रथम !, जब भी कोई राष्ट्र का चुनाव होता है राष्ट्र का निर्माण होता, तो बुद्धिमान ब्राह्मणजन यह कहा करते थे, राजा को चुनते समय, कि हे राजनतू याज्ञिक है या नही !? जो मानव यज्ञ के विज्ञान को जानता है, यज्ञ में कितना त्याग है, अग्नि को हम नाना साकल्य प्रदान कर देते है। वही साकल्य वायुमण्डल में प्रसारण रूप में परणित हो जाते हैं, मेघों तक पंहुचाते हैं, देखो, जलों में नाना दुर्गन्ध को शान्त करना, इनका कृति होता है, इसीलिए हमें यह विचारना है कि यही तो हृदय की वेदना होती है, जितना मानव का हृदय पवित्र होगा, शुद्ध होगा, महानता में परणित होगा, उतनी ही मानव की प्रतिष्ठा ऊँची होगी, उतना ही देवतव स्थानों में उसको प्रतिष्ठता होती जाएगी। उसी प्रतिष्ठता को लेकर जब मानव अग्रिणय बनता है, आगे चलता है तो उसकी महानता में किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व नही आता। तो मेरे प्यारेआज का हमारा वेद का आचार्य क्या कह रहा है !ऋषिवर !, कि हृदय किसमें ओत प्रोत है? हृदय दक्षिणा में ओत प्रोत है। उन्होंने कहा कि दक्षिणा भी यज्ञ में ओत प्रोत रहती है, क्योंकि यह भी हृदय से सम्बन्धित है, हृदय में यज्ञ होता है, हृदय में श्रद्धा और दक्षिणा होती है। परन्तु जब प्रदान की जाती तो उसी से ही तो मानवतव की सुन्दर व्यवस्था बनती है। राष्ट्रीयकरण मानव का हो जाता है, राष्ट्रीय नही, इसको यज्ञ कर्म उच्चारण करना बहुत ही सुन्दर होता है। जब यज्ञकर्म मानव का हो जाता है, मानव की प्रत्येक इन्द्रिय यज्ञ कर्म करती है, क्योंकि यह जो हमारा मानव शरीर है, यह एक यज्ञवेदी है, जैसा महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने प्रथम शब्दों में कहा है, कि जिसकी विवेचना अभी हमने भली प्रकार की है। अभिप्रायः यह कि हम यह विचार विनिमय करने वाले बनें, कि हमारा यह जो मानव शरीर है, यह एक यज्ञ है, इसमें कहीं विचारों का यज्ञ है, कहीं मानव के कर्मों का यज्ञ हैं, नाना प्रकार से यज्ञ करता है। विचारों से यज्ञ करो, सुगन्धि दो। विचारों की सुगन्धि तुम्हारे लिए महान श्रेष्ठ होती है, उसको देना तुम्हारे लिए सुयोग्यता में परणित कहलाया गया है। जब हम यह विचारते हैं कि वास्तव में जितना मुझे यह संसार प्रतीत हो रहा है, नाना प्रकार के

लोक लोकान्तर हैं, नाना प्राणी हैं, संसार में प्राणीमात्र यज्ञ कर्म ही करता है, एक दूसरे मानव से उसका जीवन सुगठित होता है। जो यज्ञ की मीमांसा को जानता है, यज्ञ की प्रतिभा को जानता है वह राष्ट्र में राजा बनना चाहिए। क्योंकि उसमें त्याग और तपस्या की एक प्रतिभा होती है।

सर्प योनि का महत्व

तो मेरे प्यारे मैंने कल के वाक्यों में महानन्द जी के शब्दों पर टिप्पणी करते !ऋषिवर ! हुए कहा था, कि यह राष्ट्र सर्वोदय के लिए पुकारता रहता है, मैंने यह कहा था प्रथम काल में भी, मेरे प्यारेऋषि ने बहुत सुन्दर वाक्य कहे थे !, कि सबका उदय तो वहाँ होता है, जहाँ प्राणी मात्र के प्रति स्नेह होता, प्रत्येक प्राणी का अभिप्रायः केवल मानव जाति से ही नही हैं, देखो, नाना प्रकार के पशुओं से भी है। नाना प्रकार के प्राणियों से सुगठित सम्बन्ध हो जाता है, क्योंकि देखो, एक मछली जल में रहने वाली है, समुद्रों में रहती है परन्तु वह इस जल के विष को निगल जाती है, वह कितना सुन्दर यज्ञ कर रही है, वही जल पर्जन्य हो करके हमारे समीप आता रहता है, इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी यज्ञ कर रहा है। देखो, सर्प कितना सुन्दर यज्ञ कर रहा है। मानव, जो अपने मुखारबिन्दु से विष उगलता रहता है, वह विष वायुमण्डल में जाता है। उस विष को निगलने वाला कौन है? मुनिवरोंवायु में से विष को निगलने वाला वह सर्प ही है !, विष को निगल रहा है और अमृतमयी वायु को त्याग रहा है, उसको नही निगलता। तो इसका अभिप्रायः है कि यह जो विषैले प्राणी हैं, यह भी संसार में यज्ञ कर रहे हैं। कितना सुन्दर इसका वह यज्ञ है, कितनी सुन्दर इनकी याज्ञकता हो रही है, मानो प्राणी के लिए विष को निगल रहे हैं, और जो अमृत को निगलने वाले प्राणी है, उनके लिए अमृत त्याग रहे है। मुझे यह वाक्य बारम्बार उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है, आज वह दीपमालिका है, जिसमें ब्राह्मणजन अपने अपने स्थानों से चल करके, याज्ञिक कर्म करते हुए, उपदेश देते हुए, यज्ञ ब्रह्मे हे कृषकतू द !ेव पूजा कर, क्योंकि देव पूजा से ही तेरी कृषि उत्तम बनेगी, महानता आयेगी। आज के हमारे वाक्यों का

यह अभिप्रायः नही है, कि इस वाक्य को विलंब देते चले जाएँ वाक्यों को उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः यह है, कि संसार ऐसे सुन्दर याज्ञिक बनें, जिस यज्ञ कर्म करने से, हमारी मानवीय पद्धति ऊँची बनें । हम सबका उदय तो चाहते हैं, परन्तु सर्वस्व विज्ञान को नही जानते, कि प्रत्येक प्राणी क्या क्या कार्य करता है, ब्राह्मण का कर्तव्य है कि जो सर्वोदय, सबका उदय चाहने वाला प्राणी है, वह राष्ट्र को घोषित करे, कि हे राजातू अपने र !ाष्ट्र में यह नियम बना कि प्राणी मात्र की रक्षा करने के लिए तत्पर हूँ। राजा केवल मानव जाति के लिए नही होता, वह प्राणीमात्र के लिए होता है। और जो विचारशील हो, वह और भी गम्भीर बन जाता है, वह परमात्मा की सृष्टिवत में प्रतिष्ठित हो जाता है।

तो मेरे प्यारेऋष !िवरमैं आज यह उच्चारण करने आया हूँ !, कि ब्राह्मणों में एक महानता होनी चाहिए। विचित्रता होनी चाहिए। उनका अन्तरात्मा इतना याज्ञिक होना चाहिए, कि जिससे राष्ट्र हो, कोई भी हो, वह बाध्य हो जाएं, विचारों में उसके बाध्यपन आ जाएं और वह उस वाक्य को स्वतः ही प्रतिभा में लाने का प्रयास करें। जब हम यह विचार विनिमय करते हैं, कि वास्तव में हमारा मानवीय जीवन कितना सुन्दर और पवित्र है। आज मैं इन वाक्यों को अधिक उच्चारण नही करना चाहता। वाक्यों के उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम सदैव अपनी मानवीयता को उत्तम बनायें, याज्ञिक बनायें क्योंकि यह इसी में ही तो सुन्दरत्व होता है। राष्ट्रीय विचार भी मानव का एक यज्ञ है। कैसा सुन्दर यज्ञ है? एक राष्ट्रीय नेतृत्व कर रहा है, अपनी निष्ठा है, उसमें कितनी निष्ठा है और निष्ठावान बन करके वह चलता है, तो उसके द्वारा नाना प्रकार की आपत्ति आयेगी, तो उन्हें वह पार कर जाता है जैसे एक याज्ञिक पुरूष होता है, अन्तरात्मा में यज्ञ करने वाला, जो पुरूष होता है, वह चलता चला जाता है, वायु की नाना प्रकार की आपत्ति उस मानव के समीप आती है, परन्तु वह उसको उलांघ जाता है। आज हमें उन सभी पर विचार विनिमय करना है। अब मैं अपने प्यारे महानन्द जी से उच्चारण करूंगा, कि वह अपने विचार व्यक्त करें, क्योंकि कल उन्होंने कुछ समय के लिए कहा, वह समय मैं आज प्रदान कर रहा हूँ। प्रथम ब्रह्मे अकृत्रम्, हमें यह विचारना

है, कि हम सदैव आ त्वं ब्रह्मे कामाः वचुन्थयम् ब्रह्मे कामाः वृतते भूक्त्द्वणाय् रुद्रो वाचनोति कामाः द्रव्यम् ब्रह्मे व्यापम् गतः अस्त्वति यज्ञम् भूषणाम् ब्रह्मे आ क्राति।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यमः सर्वम् भविताःमन्थनम रेतश्वरा भगम् ब्रह्मो वाचनोति कर्मणा।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा भद्र समाजऋषि मण्डल !! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अपना यह अमूल्य समय प्रदान किया, जिस समय में हमारे लिए यह कहा गया कि कुछ विचार व्यक्त करें, परन्तु मैं पूज्यपाद गुरुदेव के समीप कौन सा वाक्य प्रगट करूं। कौन सा ऐसा मेरे अन्तरात्मा का रहस्य है, जिसको मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नही जानते, मैं तो केवल एक विडम्बना भरी वार्त्ता को प्रगट कराने आ ही जाता हूँ, पूज्यपाद गुरुदेव को अशान्ति में लाने के लिए, प्रायः मैं आ ही जाता हूँ। परन्तु कोई वाक्य नही मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी याज्ञिक बनने के लिए कहा है, वास्तव में मानव को याज्ञिक ही बनना चाहिए। आज मैं अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा भ्रमण कर रहा था, मैं उन सुन्दर यज्ञों को दृष्टिपात कर रहा था, जिनमें मुझे आज दीपावली के दिवस का वह सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। यह एक बड़ा दुखित वाक्य है, और मुझे वह वाक्य भी स्मरण आता रहता है, जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इस दीपावली के सुन्दर अवसर पर वह याज्ञिक राजा महाराजाओं के यहाँ ब्रह्मा बनाकर के भयंकर वनों से ब्रह्मचारी को लाया जाता और वह याज्ञिक कर्म होते थे। मुझे इसका कोई कष्ट विशेष नही हैं, क्योंकि प्रायः संसार में मानव आपत्तियों के लिए ही आता है और यह नाना प्रकार के कर्म भागों के लिए आता रहता है और जहाँ मैं यह विचारता हूँ कि मानव को अपने जीवन में वह अभिमान नही करना चाहिए, संसार में जो बुद्धिमान होते हैं, जो ऋषि भी बन जाते हैं उनका कर्म फल ऐसा बन जाता है कि वह मूर्ख भी बन जाते हैं वह कोई आश्चर्य वाला वाक्य नही, परम्परा से यह वाक्य चला आ रहा है संसार में, सृष्टि के प्रारम्भ से ले

कर अब तक इसकी प्रतिभा और इसकी विवेचना भी इसी प्रकार आई है।

यज्ञ का सौभाग्य

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे आज्ञा दी है, कि मै कुछ शब्दों को उच्चारण करूं। सबसे प्रथम जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के अन्तरात्मा के सम्बन्ध मानो शरीर के मुखारबिन्दु के द्वारा मानो देखो, आज मैं इस वाक्य को गम्भीरता में नही ले जाना चाहता। सबसे प्रथम उस स्थान के लिए, सुन्दरवाद के लिए, मैं अपने हृदय की कामना प्रगट कर रहा हूँ। उसके पश्चात मैंने जो याज्ञिक के, यज्ञ की पूर्णता दृष्टिपात की है, उससे मेरा हृदय बहुत ही प्रसन्न हो रहा है। क्योंकि जो भी मानव जैसे विचारों का होता है, जन्म जन्मान्तरों से उन्हीं विचारों में यह प्राणी परणित हो जाता है, वह मूर्ख बनने के पश्चात भी वह उसी में निहित रहता है। इसी प्रकार आज मुझे अनुभव हुआ, परन्तु मैं सबसे प्रथम ब्रह्मा को यह अवश्य कहना चाहता हूँ व्रतो ब्रह्मा अश्वोति इदन्नमम् ऐसे यज्ञों का ब्रह्मा बनने के लिए मानव का बड़ा सौभाग्य होता है, क्योंकि जहाँ वेद की परम्परा को पुनः से जागरूक करने वाले होते हैं, उनके हृदय में उनके पुण्यों की कितनी महानता आ गई है, इसीलिए सबसे ऊँचा तो हमारा यह सौभाग्य होना चाहिए। द्वितीय वाक्य यह होना चाहिए, कि हृदय में किसी प्रकार के संकल्प विकल्प न होने चाहिए। किसी प्रकार की विडम्बना नही होनी चाहिए। क्योंकि ब्रह्मे व्यापकम् ब्रह्मे अस्तुति अस्नुति यश्यतम् यज्ञाः क्योंकि प्रथम काल में मुझे इस संसार को दृष्टिपात करते हुए अधिक समय हो गया है।

ब्राह्मण का सौभाग्य

देखो, ब्रह्मा के लिए अपना सौभाग्य मानना चाहिए ब्राह्मण को, क्योंकि वह यज्ञ का ब्रह्मा बना है। मैं तो यह कह रहा हूँ, कि विचारों से कि ऐसे उद्गम् विचारों को देने वाला, वेदों का पठन पाठन करने वाला मानो देखो, विचार अस्वति शुद्धों शब्दः इसी प्रकार शब्दों को भी नहीं, आगे मैं यह आशीर्वाद देने के लिए नही आया, मेरा आशीर्वाद क्या, मैं तो तुच्छ हूँ, गुरुदेव के समीप परन्तु मै प्रभु से यह अवश्य याचना करता रहता

हूँ, कि हे प्रभुऐसे ही ब्राह्मणा की आयु सदैव दीर्घ होनी चाहिए !, ऊँची विडम्बना में परणित होनी चाहिए। जिससे उनका जीवन महानता में और याज्ञिकता में परितण होता रहे।
उसके पश्चात अस्वेति यज्ञमानः हमारे यहाँ यज्ञमान के सम्बन्ध में बहुत ही विवेचना आती है, वेद के सूक्त इस प्रकार के हैं, जहाँ यज्ञमान के सम्बन्ध में बहुत बहुत वार्त्ता सुन्दर आती हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने उन सूक्तों की कई काल में विवेचना भी की है, आज मैं पुनः से उसकी विवेचना करना चाहता हूँ। संक्षिप्त रूप और वह कि यज्ञमान के लिए कहा गया है, कि हे यज्ञमानतू सुन्दर है !, तू पवित्र है, तेरा कितना सौभाग्य है, तू कितना पुण्यवान है। आज तेरी आत्मा का कौन सा पुण्य उदय हुआ है, तेरी कौन सी प्रतिभा का जन्म हुआ है, जिससे तू आज प्रतिष्ठित ब्राह्मणों में प्रतिष्ठित बना है, जब यहाँ याज्ञिक कर्म करता है सपत्नी सहित, तो मैं उस यज्ञमान को अपने हृदय से उद्गम देना चाहता हूँ, कि ऐसे यज्ञमान की आयु दीर्घ हो और किसी प्रकार की सूक्ष्मता नही रहनी चाहिए। पुत्रवत से, गृह से सभी प्रकार से उसके द्वारा संपन्नता होनी चाहिए उसकी संपन्नता यही है, कि उसका कार्य सम्पन्नता, शुभकर्मों में होनी चाहिए। आज वह कोई मानव नही होता, जिस मानव का द्रव्य दुराचार में परणित हो जाएं, खान पान अशुद्धवाद में चला जाएं, वह द्रव्य तो नाना प्रकार के अशुद्ध संस्कारों को जन्म देता है और वह जो संस्कार है वह मानव के जन्म जन्मान्तरों के लिए आवागमन का क्षेत्र बनते चले जाते हैं, इसीलिए द्रव्य होना चाहिए तो ऊँचे कर्मों के लिए, पवित्र कर्मों के लिए, वह द्रव्य नही होता, जिस द्रव्य को हम दुराचार में परणित कर देते हैं, द्रव्यवत् वही होता है, जो शुभ कार्यों में आता है, मानो, कोई आत्मा क्षुदा से पीड़ित हो रहा है उसको अन्न देना द्रव्य देना मानव के लिए बड़ा सौभाग्य होता है। वह यज्ञ कर्म है संसार में, विचारों का तो यज्ञ होना ही चाहिए। पति पत्नी जब गृह में प्रविष्ट होते हैं, तो मानो सुन्दर पुत्र को जन्म देना भी उनके लिए एक यज्ञ है, कैसा यज्ञ है? जैसे माता अपने गर्भ में जैसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया, यज्ञ कर्म करते रहो, अपनी सुन्दर वेदी को ऊँचा बनाओं मानो जो गर्भाशय रूपी वेदी है, उसके लिए पवित्रता होनी चाहिए,

उसमें महानता की तरंगें होनी चाहिएं क्योंकि मानव जीवन उसी काल में पवित्रतव बनता है।

चरित्र का महत्व

आज मैं इस विवेचना को अधिक नही देना चाहता हूँ, केवल यह कि मानव जब शुभ कार्य से चलता है, याज्ञिक बनता है, मानो उसे पाखण्डी भी कहते हैं, निन्दा भी होती है। हे याज्ञिकतुझे निन्दा के ऊपर होना है !, निन्दा को नीचे त्यागना है। निन्दा अस्तुति को त्याग करके वास्तव में तुझे ऊँचा बनना है। कैसा? जहाँ शुभ कर्म होते हैं, वहाँ मानव के लिए नाना प्रकार की विडम्बना भरे शब्दों का प्रतिपादन होता है, परन्तु मानव की शुभ कर्म ही करना चाहिए। कुछ मानव ऐसे होते हैं, जो कागा प्रकृति के होते हैं, उनका कर्तव्य केवल यह कहता है, कि दूसरों की त्रुटियां को दृष्टिपात करते रहते हैं। हे मानवतू ऐसी कागा प्रकृति वाला न बन !, ऐसे कागा प्रकृति वाले प्राणी, मानो तेरी हानि नही करेंगें, स्वयं अपनी हानि कर लेते हैं, उनका अन्तरात्माग्लानि से अकृत हो जाता है, इसी प्रकार उस मानव को यह विचारना है कि हमें अपने विचारों को उन्नत बनाना है, पवित्रता में ले जाना है। द्रव्यत्व की, जो क्षुधा से पीड़ित है, उन्हें देना है। देव पूजा, वह याज्ञिक कर्म करते हैं, इनके मानव, मानवों में प्रतिष्ठित व्यक्ति बन जाता है, वह कोई मानव नहीं होता जो दूसरों के श्रृङ्गार को हनन करने वाला हो। वह कोई मानव नही होता, जिसके द्वारा चरित्रता की प्रतिभा नही होती, क्योंकि चरित्र ही तो मानव का जीवन होता है, चरित्र ही तो मानव को राष्ट्रीय बनाता है, चरित्र के लिए ही तो राष्ट्र का निर्माण होता है। चरित्र को नष्ट करने के लिए राष्ट्र का निर्माण नहीं होता है, चरित्र को लाने के लिए ही राष्ट्र का निर्माण हुआ करता है, धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र का निर्माण होता है, धर्म निरपेक्षता के लिए, राष्ट्र का निर्माण कदापि नही हुआ करता है। मेरे शब्द वास्तव में कटु प्रतीत होते हैं, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी मुझे कहा है, परन्तु मेरी जो कटुता है, वास्तव में कटुता नही हैं, क्योंकि मैं जब अपने वाक्यों

को यथार्थता में प्रगट करता हूँ, तो वह कटुता में प्रतीत होते ही हैं।

प्राणी मात्र के लिए उदय

इसी प्रकार मैं यज्ञमान के लिए कामना प्रगट कर रहा हूँ, कि हे प्रभुऐसे महान सु !न्दर भोले महापुरूषों की इच्छाओं को प्रभु ही पूर्ण करते रहते हैं, मैं तो यह कहा करता हूँ, कि गृह में सुन्दर सुन्दर पुत्रों को जन्म हो, याज्ञिक पुरूषों का जन्म हो, उनका गृह सम्पन्नता में परणित होना चाहिए। आज मेरा हृदय कितना प्रसन्नता में परणित हो रहा है। मैं उन विचारों में नही जाना चाहता हूँ। हमारे विचार केवल यह है कि हम प्रत्येक स्थान में विचारणीय बनें। जब हम किसी की निन्दा करने पर तत्पर होते हैं, तो उस समय यह विचार विनिमय करना है, कि हम किस प्रकार के हैं, हमारा चरित्र कैसा है। जब हम यह विचारेंगें, अपने ऊपर, तो उस समय मानव को यह प्रतीत होगा, कि तू तो महान गढेले में हैं, तू दूसरों के गढेले की चर्चा क्यों प्रगट कर रहा है, मानो आज का समाज इस प्रकार बन बन गया है, आज के समाज में यह प्रकृति आ गई है, कि दूसरों की निन्दा में आनन्दित रहता है, अपनी निन्दा को श्रवण नही करना चाहता, उसे उसमें कष्ट होता है। अरे, मानव! तूने किसी काल में यह विचारा है, कि जब तुम स्वयं उन शब्दों से, जो तेरे प्रतिकूल होते हैं, तेरे चरित्र का जो व्याख्यान देता है, तुझे उसमें कष्ट होता है, तो क्या दूसरे प्राणी को कष्ट नही होगा। तेरी वाणी क्या, दुर्गन्धि में परणित नही हो जाती है। तब तू, स्वयं दृष्टिपात नही कर पाता। सूक्ष्म सूक्ष्म वाक्य को ले करके मानव अपनी कागा प्रकृति बना लेते हैं, तो यह कागा प्रवृत्ति मानव की नही होनी चाहिए। व्यापक विचारों से मानव में मानववाद होना चाहिए, जिससे मानवीयता ऊँची बनें, राष्ट्र ऊँचा बनें। मानव के लिए तो राष्ट्र होता है, प्राणी मात्र के लिए राष्ट्र होता है। मैंने अपने वाक्यों में प्रथम ही कहा है, आज दीपावली के अवसर पर ऐसा वाक्य नही उच्चारण करना चाहता, परन्तु केवल यह कि क्या वह भी कोई राष्ट्र होता है, क्या वहाँ भी कोई राम राज्य की घोषणा होती है, जहाँ नाना पशुओं के भक्षण में मानव की प्रवृत्ति बन जाती है। मैंने यह वाक्य बहुत पूर्व काल में कहा है, आज भी मुझे स्वर्ण

अवसर प्राप्त हो रहा है, जिस राजा के राष्ट्र में पशु की रक्षा करने का विधान नही होता, नियम नही होता, तो उस राजा का राष्ट्र कुछ काल में अग्नि में भस्म हो जाता है। आज मुझे समय इतना आज्ञा नही दे रहा है, कि इस प्रकार की वार्त्ताओं को प्रगट करता रहूँ, परन्तु विचार देना यही है, कि कल सर्वोदय विचार प्रगट किए, कि सबका उदय प्राणी मात्र का उदय, मैं यह चाहता रहा हूँ, कि मानव जो मानव के लिए उदय चाहता है, परन्तु मानव के लिए उदय होना चाहिए। मानव का अभिप्रायः इसमें मन होता है, कि मन पृथ्वी में भी होता है, मन पशु इत्यादि सबमें विराजता रहता है, विचरण करता रहता है। इसीलिए केवल मनुष्य जाति के लिए उदय नही होना चाहिए। परन्तु उदय प्राणी मात्र का होना चाहिए और प्राणी मात्र का उदय जब होगा, जब अपने विचारों को सुंदर बनाओंगे, राष्ट्रीयता में अपने जीवन को ले जाओगे और राष्ट्रीयता में भी राजा को जाकर के घोषित करोगे, कि हे राजातू नियम बना !। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इसकी विवेचना पूर्व की है। आज पुनः से मैं उसकी विवेचना नही करने जा रहा हूँ

दीपमालिका की पुरातनता

यह दीपावली का वह सुन्दर अवसर है, जिसको दीपमालिका कहते हैं। कैसी सुन्दर दीपमालिका है, यह आज से नही हैं, यह देखो, अरबों खरबों वर्षों से चल रही है। आज का वह दिवस है, जब सबसे प्रथम कृषक ने भूमि के गर्भ में बीज की स्थापना की थी, कृषक की उत्पति यहाँ से प्रारम्भ हुई है दीपमालिका से, क्योंकि, उस समय पृथ्वी शान्त हो गई थी, उसमें कुछ सान्त्वना आई थी, क्योंकि करोड़ों वर्षों तक इस भूमि में अग्नि की ज्वाला अग्रित होती रही, वह अग्नि शान्त हुई, उसके पश्चात, सबसे प्रथम कृषक ने यही ऋतु सुन्दरता में परणित की है, कि इसमें अन्न की उत्पति हो सकती है। वास्तव में अब तो अन्न की प्रतिभा और भी विशालता में परणित हो गई है। परन्तु यह वह दिवस है, जब कृषक की भूमि उपज की गई, सुन्दर सुन्दर उपजने लगी, तो उस समय यज्ञ कर्म किया, अपने गृह में यज्ञ किया, देव पूजा की और देव

पूजा करके यह कहा, कि हे प्रभुमेरी कृति कितनी सुन्दर है !। आज मेरे गृह में यह सुन्दरता आ जानी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक कृषक के गृह में, जब यज्ञ होता है, वैश्य के गृह में यज्ञ होता है, क्षत्रिय जब यज्ञ करते हैं मानो राजा महाराजाओं के यहाँ विशाल यज्ञ होते थे। मुझे भी कई यज्ञों में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उस समय महाराजा रेणकेतु के यहाँ यज्ञ हुआ था, महाराजा दशरथ के यहाँ जब राम राज्य हो गया था, तो बहुत विशाल यज्ञ हुआ था। राम की तो यह परम्परा थी, कि वह सदैव यज्ञ कराते रहते थे, इसी प्रकार द्वापर के काल में भी परम्परा रही है, परन्तु आधुनिक काल में भी परम्परा रही है। परन्तु आधुनिक काल ऐसा है जो यज्ञ को पाखण्ड कह करके, अपनी वाणी को अशुद्ध बनाता रहता है।

मैं आज आधुनिक काल की चर्चा तो अधिक प्रगट नही करूंगा, केवल यह कि हमारा विचार है, हम अपना विचार देने के लिए आए हैं, कि संसार में अपने विचारों को कितना सुन्दर बनाना है और इसी का नाम यज्ञ कर्म कहलाया गया है। याज्ञिक पुरूषों ने ऐसा कहा है, जैसा पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी कहा था, कि संसार में देखो, एक राजा कितना सुन्दर यज्ञ कर रहा है, विचारों का यज्ञ, अपनी बुद्धि से, अपने विधान का यज्ञ कर रहा है। परन्तु उसका विधान पवित्र होना चाहिए, महानता में परणित होना चाहिए। यदि उसका विधान पवित्र नही, अहिंसा परमोधर्म, उसका सबसे पूर्व विधान नही होगा, नियम नही होगा अपने राष्ट्र में, तो उसका राष्ट्र संसार में कितने दिवस तक रह सकेगा।

दैत्य राष्ट्र

मुझे स्मरण है भगवान मनु की साढ़े सात हजार प्रणालियों ने राज्य किया है। मुझे वह वाक्य भी स्मरण आता रहता है, क्यों किया? क्योंकि चरित्र की धारा बनती चली आई। अहिंसा परमोधर्म की धारा बनी चली। जिस राष्ट्र में हिंसा की भावना दी जाती हो, क्या वह राष्ट्र उन्नत हो सकेगा। उस राष्ट्र को दैत्य राष्ट्र कह देना चाहिए, तो मेरे लिए कोई आश्चर्य नही होगा। अब मैं इसको अधिक विलम्ब नही देना चाहता, केवल

यह कि मानव की मानवीयता, मानव की याज्ञिकता उत्तम बननी चाहिए मैं आज यह उच्चारण करने आया था ब्रह्मा की आयु दीर्घ बनाने के लिए, और प्रभु से याचना करने के लिए आ पंहुचा था, होता जनों को सुन्दरता में परणित करने के लिए। किसी प्रकार की हानि, उनके गृह में, उनके हृदय में नही होनी चाहिए। इन शब्दों के साथ में अपने वाक्यों को समाप्त करने जा रहा हूँ। वाक्यों का हमारा अभिप्रायः यही है, कि हम सदैव यज्ञ करते रहें। यज्ञमान के लिए सुन्दर मेरी यही कामना है, कि उनके गृह में सुन्दर सुन्दर याज्ञिक पुत्र होने चाहिएं। मनोवत होना चाहिए किसी प्रकार की हिंसावत नहीं होना चाहिए, अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जो मानवीय शरीर है, वह जो बड़ा आश्चर्यजनक है, उसके सम्बन्ध में मुझे कोई वाक्य नही प्रगट करना है, परन्तु मुझे एक आश्चर्य होता है कि जहाँ ऐसे ब्रह्मावेत्ताओं को भयंकर वनों से लाया जाता हो, आज उनकी वह दशा हो, कि मूर्खों की भांति विचरण करना, यह वाक्य मेरे लिए योग्य सुयोग्य नही है। परन्तु इसमें मेरे लिए कोई आश्चर्य नही, इसीलिए मैं उच्चारण करने जा रहा हूँ। कि जो संसार में ब्रह्मवेत्ता बन जाता है, वह अपने कर्मों की गति से वह कहाँ चला जाता है। वह विचारने वाला वाक्य है अब मैं अपने वाक्यों को विराम दे रहा हूँ। अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरों यह तुमने श्रवण किया। महानन्द जी के शब्दों में कितना ! ओज रहता है, परन्तु वास्तव में कटुता की तो बौछार रहती है, और कितनी कटुता होती है, कि वह वर्णन नही की जा सकती। राष्ट्र को दैत्य राष्ट्र कहा है, वास्तव में तो वाक्य सुन्दर हैं, इसको पामर कह देना था, परन्तु दैत्यम् प्रभे अस्ति। हास्य .....

पूज्य महानन्द जीः भगवनआप में !, मेरे में केवल अन्तर ही यह है, कि आप मधुता से उस वाक्य को उच्चारण करते हैं, मैं कटुता से कर देता हूँ। वाक्य एक ही तुल्य कहा जाता है।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य, अच्छा तो मुनिवरों महानन्द जी विनोद की वार्त्ता !मेरे प्यारे ! प्रगट करने लगे। कोई वाक्य नहीं, परन्तु जैसा इन्होंने कहा है, वास्तव में वाक्य तो सुन्दर है, मानव के द्वारा ऐसा होना ही चाहिए, मानवतव में यदि इस प्रकार की प्रवृत्ति

नही होगी, तो राष्ट्र का पुण्य बहुत सूक्ष्म समय में समाप्त हो जाता है इसीलिए हम सदैव संसार में उत्तम उत्तम कर्म करते रहें, यज्ञ कर्मों से अपनी मानवीय विचारधारा को उत्तम बनाते रहें, यज्ञ कर्मों से मानवीय विचारधारा को उत्तम बनाते रहें, क्योंकि हमारा मानव शरीर भी एक याज्ञिक है, यज्ञ है, इसमें सुन्दर सुन्दर विचार देना, उत्तम उत्तम सामग्री देना, यह सब हमारा कर्तव्य है। यह सब जितना ब्रह्माण्ड है, यह यज्ञ कर रहा है। कहीं सूर्य अपने प्रकाश से यज्ञ कर रहा है, चन्द्रमा अपनी कान्ति से यज्ञ कर रहा है, नक्षत्र अपनी प्रतिभा से यज्ञ कर रहे हैं, रात्रि अपनी रेणुका से यज्ञ कर रही है, इसी प्रकार सबमें यज्ञ ही पिरोया हुआ है। यह जो प्रभु ने जगत रचा है, यह एक प्रकार की यज्ञ वेदी है। इसके वातावरण को जितना सुन्दर मानव बना सकता है, उतना बना करके याज्ञिक कर्म करता है। आज महानन्द जी के कथनानुसार यह कहने अवश्य आया हूँ, कि सबकी आयु दीर्घ हो, यज्ञमान आदि सब प्रकार की सम्पन्नता को प्राप्त हों। इन शब्दों के साथ, मैं अपने वाक्यों को विराम देना चाहता हूँ। वाक्यों का अभिप्रायः यह कि सदैव अपने जीवन को उन्नत बनाते हुए, पक्षपात को त्यागते हुए और अपने हृदयों से द्वेष, माया को त्यागते हुए, हृदयों से अग्रणीय बनते चले जाएं।

७ 17 01 1970 पुष्प 13

हे प्रभु मय् हृदय अश्चति तू मेरे हृदय को उज्वल और महान उस पवित्र पथ का गामी ! बन जिस पथ पर चलने के पश्चात मानव की गति महानता में परणित हो जाती है।

प्रभु वह जो चंचल मेरी गति है वह गति ऐसे दमनवत को प्राप्त होती चली जाएं जैसे सांय काल का सूर्य हो जाता है। वह गति मेरे लिए एक घातक है मेरे जीवन को नष्ट भ्रष्ट करने वाली है।

कन्चनम् मम् वेतु भागः यऊ सनातन गताति ब्रह्मणे लोकम् आभासु गच्छम्

हे प्रभु मेरे इस जीवन में नाना प्रकार की बाधाएं हैं परन्तु जो वह सुपथ है उस पथ ! मेरे लिए कंचन एक बहुत ही बाधक बना हुआ है। वह जो !पर चलने के लिए प्रभु मेरा जीवन विकसित !कंचन है वह मेरी ममतामयी धारा बना रहा है। जिससे प्रभु नही ह ो पाता क्योंकि मेरे राष्ट्र में कंचन नही होता, तेरे राष्ट्र में प्रकाश होता है हे प्रभु !

यह जो संसार का लुभावना जगत है जिसमें नाना प्रकार के सुन्दर रूप और कंचन मुझे ऐसे लुभाते रहते हैं जैसे प्रभु प्रातःकाल में मानव अपनी शैय्या को त्याग देता है उस !हे प्रभु मैं नही चाहता मैं सदैव यह चाहता रहता हूँ कि मेरे हृदय से कंचन और कामनी दोनों से मैं उदासीन हो जाऊं। प्रभु जब तक मैं दोनों से उदासीन नही हो सकूंगा तब तक मेरा जीवन उत्तम पथ को प्राप्त नही होगा। मुझे स्मरण आता रहता है क्योंकि हमारे सत्संग की जो पुनीत वेला है उसमें वास्तव में हमें यही वस्तु तो प्राप्त होती है क्योंकि जब हम विचारते रहते हैं कि संसार में हमारा जातीय जो अभिमान है वह भी हमारे जीवन में एक महान बाधक बना हुआ है। हे प्रभु संसार में जब हम ! प्राणी मात्र में आपकी प्रतिभा को दृष्टिपात करेंगें तो हमारा जीवन और एक संसार से वास्तव में उदासीन बन सकते हैं जब तक हमारा जीवन को नष्ट भ्रष्ट करते चले जा रहे हैं। हे प्रभु मैं इसको नहीचाहता उस मार्ग में क्योंकि यह मार्ग तो एक ऐसा मार्ग ! है जिस पथ पर जाने के पश्चात इस मार्ग की एक उज्ज्वल धारा हमारे मानवत्व को पवित्र बनाती चली जाती है। तो भगवन मैं प्रातःकाल पवित्र बेला में आपके चरणों ! की वन्दना कर रहा हूँ वन्दना का अभिप्रायः है कि मैं अपने हृदय को उज्ज्वल बना रहा मैं अपने हृदय को निर्मल और !हूँ। आपकी शुद्ध पवित्र अमृत समवेदना के साथ प्रभु तेरा जो अमृतमयी जो ज्ञान है अमृतमयी जो तेरी !स्वच्छ बनाना चाहता हूँ हे प्रभु नम्रता है, अमृतमयी जो तेरी उदारता है, अमृतमयी जो तेरा उद्गम है अमृतमयी जो तेरा हृदय है अमृतमयी जो तेरा यह जगत है अमृतमयी जो प्रभु मेरी ज्ञान की एक कामना है उससे मैं अपने हृदय को पवित्र बनाना चाहता हूँ। हे प्रभु तू कितना उद्गम् है तू ! कितना उदार है। तू कितना महान है, तू कितना व्यापक है तेरी कितनी उज्ज्वलता है प्रभु इस संसार में व्यापक हो और मैं कितना अल्पज्ञता में रमण करता हूँ। प्रभु मुझे यह प्रतीत नही हैं कि इससे आगे मुझे क्या भोजन प्राप्त होगा परन्तु प्रभु आप मेरे उस भोजन को भी जानते हैं जो आगे आने वाला भोजन है मुझे प्राप्त होगा परन्तु उसमें जो अमृत मुझे प्राप्त होगा। उसको भी आप स्वतः जानने वाले हैं परन्तु मेरे लिए कोई मार्ग ऐसा नही मेरे लिए कोई स्थान ऐसा नही जहाँ प्रभु मैं पाप कर्म करने के लिए उद्धत

हो जाऊं प्रभु यह कौन सा स्थान है जहाँ मैं पाप कर्म कर सकता हूँ। परन्तु प्रभु पाप मैं उस काल में करता रहता हूँ जब प्रभु आपका आनन्दमयी जो ज्ञान है, अमृतयमी जो पवित्रवत् है मैं उसको अपने से दूर नही चाहता हे जगत श्चन अस्वनम् प्रभु मैं ! आपको बारम्बार नमस्कार कह रहा हूँ आप मेरी इस प्रातःकाल को नमः को स्वीकार करो क्योंकि आप उदार हैं महान हैं, पवित्र हैं शुद्ध हैं, आनन्दवत श्रोत हैं हे प्रभु ! इसीलिए मैं आपको बारम्बार नमस्कार कर रहा हूँ।

हे आनन्दमयी ज्ञान स्रोत तू कितना पवित्रवत है कि मैं आपके चरणों में कितना सौभाग्यवत् बन गया हूँ कि मुझे अधिक गुणगान गाने का बारम्बार सौभाग्य प्राप्त होता रहता हे वह मानव तो संसार में बड़े सौभाग्यशाली होते हैं जो प्रभु आपका गुणगान गाते हैं आपकी महिमा का जो बखान करते रहते हैं आपकी रचनात्मक कला का वर्णन करते रहते हैं हे प्रभुजैसे आप उदार हैं ऐसे ! मुझे भी उदार बनाईए अन्यथा प्रभु मेरा जगत में बनेगा क्या? कुछ नही बन पाता यदि मैं इस संसार के नाना प्रकार के ऐसे ही चमकीले, नाना प्रकार के व्यर्थ लवण पदार्थों में ही रमण करता रहा तो प्रभु मेरी ! रसना नष्ट हो जाएगी। प्रभु मेरी जो रसना है वह आपका रस स्वादन के लिए प्रभु यदि मैं यह नाना प्रकार के लवण युक्त पदार्थों को रसना से पान करता रहूँगा तो प्रभु ! आपका जो आनन्दमयी रस है वह उसे मैं अपने से पृथक कर जाऊंगा वह स्वयं मेरे आपकी जो आनन्दमयी वाणी है मैं उस वाणी से !से पृथक हो जाएगा इसीलिए प्रभु और मेरी जो यह अल्पज्ञ वाणी है इसका आपकी आनन्दमयी से ही मिलान कराना चाहता हूँ जिससे प्रभु मेरा जीवन वास्तव में पवित्रवत बनता चला जाएं क्योंकि वह जो जीवन का आनन्दमयी स्रोत है उस आनन्द स्रोत में ही तो महानता की प्रतिभा ओत प्रोत रहती है मेरे प्यारेमहानन्द जी ने बहुत पूर्व काल मे !ा अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा था कि जीवन में आनन्द का जो अकृत स्रोत रहता है वही तो मानव को जीवन है। वही तो मानव की प्रतिभा है।

मेरी बाल्य पुत्री कहा करती थी कि हे प्रभु मैं चन्द्रमा की यात्रा में सफल होना चाहती ! हूँ प्रभु मैं मंगल की यात्रा में सफल होना चाहती हूँ परन्तु मैं यह कहा करता था कि

पुत्रवत् संसार में हमारी रसना का जो अग्र भाग है उसमें लगभग एक सौ बयासी दाने होते हैं छिद्र होते हैं और वह जो छिद्र होते हैं उनमें कुछ छिद्र ऐसे होते हैं जिनका सम्बन्ध जगत में विचरण करने वाली औषधियों से होता है बहुत से छिद्र ऐसे होते हैं जिनका सम्बन्ध नाना प्रकार के रस स्वादनों से होता है तो इसी प्रकार हमारी जो रसना है इसमें नाना छिद्र हैं उन छिद्रों की गति को जानने के लिए इतनी ही गति छिद्र वाला हमें यन्त्र बनाना होगा तो हम चन्द्रमा की यात्रा में सफलवत को प्राप्त हो जाएंगें। परन्तु जब मेरी बालिका यह कहा करती थी कि हे प्रभु यह जो छिद्र है वह आप मुझे ! निर्णय कराईए। इन छिद्रां के नाम क्या है जिस को मुझे जानना है जिनसे चन्द्रवत् को प्राप्त हो करके अपने आनन्दवत् को मैं जानती ही चली जाऊं।

मुनिवरोंदेखो !, उस समय मैं इस वाक्य को अच्छी प्रकार जो जानता नही था परन्तु मुझे उन प्रश्नों को उत्तर देने में बड़ी सुगमता रहती थी इसका मूल कारण यह था कि रसना को अग्र भाग है इसके छिद्रों को कोई भी मानव जानना चाहता है तो तलुओं का जो अग्र भाग है उसमें एक छिद्र होता है उस छिद्र में जब रसना को हम अग्र रात्रि से ग्रहण करते रहते हैं उस छिद्र से रसना के छिद्रों का मिलान करने लगते हैं तो हृदय रूपी जो गुफा है उसमें से एक आनन्द का स्रोत उत्पन्न होने लगता है कि जैसे हमारा यह शरीर ही जड़वत को प्राप्त हो रहा है और कहीं चेतनावत् हम स्वयं अपने की अनुभव करने लगते है। परन्तु यह मैं केवल साधकों की चर्चा प्रगट कर रहा हूँ जो इस आध्यात्मिक मार्ग पर जाने के लिए अग्रसर होते हैं। परन्तु जब मुझे यह स्मरण आता रहता है कि मैं केवल चन्द्रमा की यात्रा करने मे ही क्योंकि सफलता प्राप्त हूँ यह तो मानव के अभिमान का मूल कारण है नाना प्रकार के लोकों में तो जाना भी तो मानव के लिए महान एक ऐसा कार्य है। जो मानव को अभिमानित करता चला जाता है। अभिमानवत नही होना चाहिए। उसमें एक विचित्रवत् होना चाहिए। जिसमें जीवन की एक महानता उस मानव के मस्तिष्क में प्रायः हमारे इस बाह्य और आन्तरिक जगत दोनों में एकपत होता चला जाएं।

मैंने बहुत पूर्वकाल में जब यह वाक्य मेरे मस्तिष्क में आता रहा तो इस पर बहुत

अनुसन्धान किया परन्तु अनुसन्धान करने का अभिप्रायः केवल यह नही था कि मैं अपनी मानवीय धारा को नष्ट कर देता। तो आज मैं अपने वाक्यों को अधिक समय नही दूंगा मैं अनुभव किय हैं वह जो अनुभव का विषय है वह बहुत ही गहन होता है उसको उच्चारण करना और वाक्य तो बहुत ही सहज होते हैं जो रटन्त होते है। जो मानो अपनी प्रतिक्रियाओं में नही लाए जाते हैं वह प्रभु से ही उन शब्दों का मिलान, उन शब्दों से उनकी सुगठित धारा रमण करती रहती है तो वह वाक्य आज पुनः से मुझे स्मरण आता रहता है कि मेरे अपने जीवन में एक वाक्य विशेषकर आता रहता था हमारे यहाँ हमारी जो संस्कृति है वह एक एक वाक्य में ऐसी सुगठित हो रही है कि उसमें मैं उस विज्ञान की धारा को रमण करने लगूं तो जीवन के जीवन शुद्ध बन जाते हैं।

हमारे यहाँ एक परम्परा चली। मुझे स्मरण आया कि एक समय मेरी बालिका मुगदल ऋषि आश्रम में पंहुची मुगदल गोत्र में उत्पन्न होने वाली मेरी पुत्रिका अग्नि तृष्णा रत्नों में रमण करती रहती थी वहाँ नाना प्रकार की औषधियों का लेपन मस्तिष्क पर आने के पश्चात कहा कि हे भगवन में यह क्या अपने मस्तिष्क पर अर्पित करके आपके ! तुम्हारा अभिप्रायः मेरा अभिप्रायः यह है !समक्ष आ पंहुची हूँ। मैंने कहा कि हे पुत्री कि मेरे मस्तिष्क में पर यह क्या है? मैंने कहा यह औषधि है पुत्री ने कहा कि औषधि क्या होती है? मैंने कहा कि औषधि मानव का जीवन होता है। मानव का जीवन क्या होता है मैंने कहा कि ज्ञान होता है उसने कहा कि ज्ञान क्या होता है मैने कहा कि पुत्रवत ज्ञान मानव की एक अमूल्य निधि होती है अमूल्य निधि क्या होती है वह होती है कि जो प्रभु के आनन्द को प्राप्त होती है उन्होंने कहा कि प्रभु का आनन्द क्या होता ! है प्रभु का आनन्द वह होता है जिसमें पुत्री नेति नेति उच्चारण करना स्वाभाविक हो मैं !जाता है जब यह वाक्य मस्तिष्क में आ पंहुचा तो पुनः प्रश्न किया कि हे भगवन अपने मस्तिष्क से क्या लेपन करके आई हूँ। तब मैंने कहा कि लेपन करने का अभिप्रायः यह कि तुम्हारा जो मस्तिष्क है इस पर लेपन करके इसीलिए आई हो जिससे बुद्धि तीव्र हो जाएं क्योंकि मानव के मस्तिष्कि चन्दन अगर तगर और सोन व्रत शंकवेला मानो देखो, उन चार पांच औषधियों का लेपन करके मानव की बुद्धि नवीन

रहती है और मानव को चंचल नही होने देती। मानव के मस्तिष्क में बहुत सी नस नाड़ियां इस प्रकार की होती है जिनकी गति ध्रुवा होती हैं परन्तु उनकी ऊर्ध्वा बन जाती है उन औषधियों से क्योंकि इन औषधियों में चन्द्रमा का रस होता है सूर्य की किरणों का अति प्रतिमान होता है इनका लेपन करने से पुत्री तुम्हारे मस्तिष्क की जो नस नाड़ियां हैं उनकी गति ऊर्ध्वा गति होती है पुत्री ने कहा कि प्रभु मेरी जो नस नाड़ियां ! की ऊर्ध्वा गति होने से क्या बनेगा? जब कहा गया कि लोक लोकान्तरों की तुम्हारी ऊर्ध्वा गति बन जाएगी। उन्होने कहा कि ऊर्ध्वा गति क्यों बनेगी? कारण क्या है और क्यों होनी चाहिए? कहा गया कि कारण यह है कि ऊर्ध्वा गति से मानव का जीवन स्वच्छ रहता है, कामना प्रवृत्ति नही होती और कारण मानव की ऊर्ध्वा गति हो करके परमात्मा के आँगन में अग्रसर हो जाते हैं और कहा कि हमारी ऊर्ध्वा गति हो करके परमात्मा के आँगन में अग्रसर हो जाते है। और कहा कि हमारी ऊर्ध्वा गति क्यों होनी चाहिए क्योंकि ऊर्ध्वा वह चेतना है चेतना जितनी होती है उसकी गति ऊर्ध्वा में होती है इसीलिए हम भी चेतना में रमा करने वाले बनें।

उन्होंने कहा कि प्रभु चेतना में गति क्यों होनी चाहिए। चेतना ही क्यों आवश्यक है ! मानव के लिए उन्होंने कहा कि चेतना नही है तो क्या मृत्यु आनी चाहिए। उन्होंने कहा कि भगवन मृत्यु और चेतना दोनों ही आपने एक सिद्ध की हैं। जब मृत्यु शब्द मिथ्या ! है तो यहाँ आपको यह वाक्य उच्चारण करना शोभा नही देता में केवल चेतना को जानना चाहती हूँ मैंने मृत्यु का प्रश्न नही किया है तब मुझ से न रहा गया मैंने कहा कि इसीलिए चेतना की आवश्यकता है क्योंकि चेतना मानव का स्वभाव है कि वह चेतना के आँगन में चलता है उन्होंने कहा कि क्या प्रभु यह मानव का स्वभाव बन गया है कि हम चेतनावत् हो जाएं? मैंने कहा कि मानव का स्वभाव है इस चेतना का स्रोत क्या है? हृदय और हृदय का स्रोत ब्रह्म है ब्रह्म का स्रोत क्या हैं मैने कहा कि बेटा ! यह भी नेति का शब्द है यह आगे उच्चारण करने वाला शब्द नही हैं यह अनुभव का है।

उसके पश्चात उन्होंने तीसरा प्रश्न किया कि भगवन मेरे मस्तिष्क पर लेपन क्या हो !

रहा हैतब मैंने कहा कि हे पुत्री यह तुम्हारे मस्तिष्क का श्रृङ्गार है मस्तिष्क का श्रृङ्गार क्यों बनता है क्योंकि इसमें हमे यह जानकारी बनती है कि वास्तव में हम पवित्र हैं हम सुगन्धित हैं हमारे जीवन में दुगन्धि नही होनी चाहिए। दुर्गन्धि हो जाएगी तो हमारे मस्तिष्क का जो यह श्रृङ्गार है मस्तिष्क को जो तेज है वह नष्ट हो जाएगा। यदि हमरा ब्रह्मचर्यव्रत अथवा हमारी काम प्रवृत्ति बन गई तो हमारे मस्तिष्क का तेज चला जाएगा। हमारे मस्किष्क का सुकृत चला जाएगा। हृदय का सुकृत नष्ट हो जाएगा। इसीलिए पुत्री हमें अपने मस्तिष्क को सदैव ऊँचा बनाना चाहिए और औषधियों से युक्त बनाना चाहिए। हमारा जो मस्तिष्क है वही तो ऊँचा होना चाहिए। जिस मानव का मस्तिष्क नीचे चला गया उस मानव का जीवन और चेतना सब नष्ट हो जाती है।

तो उन्होंने कहा कि क्या हमारा सृकृत और तेज मस्तिष्क में ही रहता है उन्होंने कहा कि हे बेटा संसार में जितना भी विचार जाता है वह मस्तिष्क से विचारा जाता है ! मस्तिष्क में ही मन की प्रतिभा मानी है, मस्तिष्क में ही आत्मा की चेनता मानी है, मस्तिष्क में ही मानो उस चेतनावत् को स्वीकार किया गया है। आत्मा का प्रतिबिम्ब ही मस्तिष्क में आता है। इसीलिए हैं इसीलिए हमें यह अनिवार्य है कि हमारा जो मस्तिष्क है वही तो हमारा जीवन है उसी को हमें सदैव जानना है।

पुनः यह कहा गया कि प्रभु हमारा मस्तिष्क किसमें ओत प्रोत रहता है मैंने कहा कि ! हे पुत्री औषधियों किसमें ओत प्रोत रहती है चन्द्रमा में और चन्द्रमा किसमें ओत प्रोत रहता है गन्धर्व लोकों में और यह गन्धर्व किसमें ओत प्रोत रहते हैं? इन्द्रवत् में और यह जो इन्द्रवत् में है यह हृदय में प्रतिष्ठित रहते हैं और यह जो हृदय है इसी को ब्रह्म का स्थान कहा गया है। उन्होंने कहा तो भगवन हृदय को किसी में ओत प्रोत ! नही कराया जा सकता? क्या ब्रह्म को किसी में ओत प्रोत नही कराया जाएगा? मैंने कहा कि ब्रह्म को ओत प्रोत कराया जा सकता है परन्तु ब्रह्म का जो ओत प्रोत होता है वह केवल मानव के हृदय में हैं और हृदय और ब्रह्म दोनों की एक सन्तुलना करना मानव का जीवन एक महान आनन्दवत् को प्राप्त हो जाता है। पुत्रों वह भी नेत का !

है शब्द आता है।

चतुर्थ भी यही प्रश्न किया गया कि भगवनमेरे मस्तिष्क पर यह क्या लेपन हो रहा है !, तब मैंने कहा कि तुम्हारे मस्तिष्क पर प्रकृति के तत्त्वों का लेपन हो रहा है पांच औषधियों का मिश्रण है यह तुम्हारे मस्तिष्क के सुकृत को स्थिर किए हुए है इसी लिए जैसे तुम्हारे मस्तिष्क औषधियों से ओत प्रोत है युक्त इसी पुत्री मौन हो गयी। मौन हो करके यह कहा कि मेरी सन्तुष्टि नही हुई तब मैंने कहा कि तुम्हारी सन्तुष्टि जिससे वह प्रश्न करो।

तब पुत्री ने कहा कि मैं तो यह जानना चाहती हूँ कि आपने प्रार्थना में यह कहा था कि मानव के जीवन में कंचन और कामनी और जातीय अभिमान यह तीनों ही बाधक बने रहते हैं। परन्तु इसको मैं कैसे स्वीकार करूं? तब मैंने कहा कि इसको स्वीकार करना क्या यह तो महापुरूषों का वाक्य है क्योंकि कंचन में अधिक लिप्त होना वह भी मानव की मृत्यु है कामनी में अधिक लिप्त हो जाना यह भी मानव को रूढ़िवत बना देता है क्योंकि ब्रह्म किसी में जातीयता में नही होता और ब्रह्म कंचन में भी नही होता और ब्रह्म कामनी में भी नही होता ब्रह्म तो इन सब में ओत प्रोत रहता है। परन्तु इनकी अतीतता में और कृतिता में ही तो मानव के सुकृत का प्रायः हनन होता रहता है इसीलिए इसको मैं स्वीकार करता रहता हूँ उन्होंने कहा तो प्रभु मैं तो कामनी बन ! सकती हूँ? तब कहा गया कि कि कामनी का अभिप्राय पुत्रवत् तुम स्वीकार करो कि कामनी कहते किसे हैं कामनी उसको कहते हैं जिसको ज्ञान और विवेक नही होता मानो जो उदासीन नही होता कामनी वह होती है जो कामातुर रहती है वह कैसी कामना कि जिसमें संकीर्णता, जिसमें अन्धवातन्, मानो देखो, प्रसव प्रभु गच्छन्तम् रहता हे वही तो कामनी कहलाई जाती है परन्तु पुत्री संसार में कदापि कामनी नही होती उनका धृष्टवत नष्ट हो जाना क्योंकि वह पुरूष के सुकृत को नष्ट कर लेती है इसीलिए उसको कामनी तो नही बनूंगी। शम्भु कृतानि रुद्रो भेव साये ब्रह्मा आकृताम् तब यह कहा गया समय गच्छन्ति रेता नरो अश्चतम् कामाना अति ब्रह्मे व्यापनोति हे पुत्रवत् संसार में जो आयुर्वेद का पंडित बन जाता है और आयुर्वेद के विज्ञान को अच्छी प्रकार

जान लेता है वह संसार में न तो कामनी आश्रित होता है और न अपने मन को दास बनता हे सदैव औषधियों में ऐसे विकृत हो जाता है रमण कर जाता है जैसे भगवान कृष्ण मानो सोलह हजार गापिकाओं में रमण कर जाते हैं और उन्हीं में रमण करते करते उन्हें निद्रा आ जाती है उसी के सुखद में अपने को अनुभव करते। शोडश कलाओं के ज्ञाता बन गये।

संसार में आयुर्वेद का पंडित वही होता है जिसको संसार में सदैव नेति नेति कहने का अवसर प्राप्त होता रहता है और जब वह अपने मन में नेति का प्रतिपादन करता है, प्रति ह्रास करता है मानो औषधियों को जानता रहता है उन पर अनुसन्धान करता रहता है, उन पर निदान करता रहता है, उन पर कृतिमान करता रहता है। तो वह संसार में अपने मानवीयतता को प्राप्त होता रहता है

यह वाक्य मेरे मस्तिष्क में जब पुनः पुनः आया तो पुत्री जब मैंने !आयुर्वेद का प्रारम्भ किया तो आयुर्वेद में कुछ औषधि इस प्रकार की आई जिससे मेरे हृदय में यह आया कि वास्तव में तू कामी के अकृत न बन जाएं जब मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा तो मैंने और आगे का अध्ययन किया तो मेरे अन्तःकरण ने यह कहा क अनुसन्धान करो, अनुवत करो तो मैंने अनुसन्धान किया और मन्थन किया मन्थन के पश्चात आगे चलकर यह प्रतीत हुआ कि आयुर्वेद का ज्ञान तो वास्तव में ब्रह्मज्ञान है यह तो ब्रह्म के आसन को ले जाने वाला है यह तो मानव के सुकृत को उज्ज्वल बना देता है।

जब मुझे यह प्रतीत हुआ तो उस समय मैंने एक निदान किया था अपने जीवन में जो मुझे अब तक ऐसे स्मरण है जिस निदान के कारण मेरी प्रतिभा में ऐसा कृत होने लगा कि जिस निदान को करने के पश्चात मेरे जीवन की प्रतिभा में ऐसा कृत होने लगा जिस निदान को करने के पश्चात मेरे जीवन की प्रतिभा एक महानता में परणित होने लगी। जिस प्रतिभा को जानते हुए जीवन महानता में परणित होने लगा। जिस निदान को करते हुए मेरा जीवन एक सुकृतवत् होने लगा तो मुझे यह प्रतीत हुआ कि इसका निदान मैं क्या करूं क्योंकि महाराज अश्वपति के यह निदान करने का मुझे सौभाग्य ! प्राप्त हुआ जिस निदान को करते समय मेरा एक महानताकी बेला में महानता की

ज्योति और आनन्दवत् को प्राप्त होता रहा।

वह निदान इस प्रकार का था जिस निदान को करने के पश्चात मेरे जीवन की प्रतिभा ऐसे रमण करने लगी कि इसमें मैं क्या कर सकता हूँ। क्योंकि निदान करना मेरे लिए कोई आश्चर्य नही था निदान में ऐसी ऐसी औषधि होती है जो मेरी बालिकाओं की मानो देखो, जिस स्थल में बालक गर्भस्थल में रमण करता है मानो जिस थैली में फट कर दो भाग हो जाते है। उसका निदान करना मेरे लिए कोई आश्चर्य नही था क्योंकि मैंने उसका बहुत अच्छी प्रकार अध्ययन किया हुआ था। वह मेरे लिए बहुत ही सहज था उसको हमें यह जानना पड़ता है कि उसके निदान के लिए हमें कौन कौन सी औषधि ऐसी लेनी होगी जिस औषधियों में आंकुचन शक्ति भी हो और प्रसारण भी हो ऐसी औषधि होती है जिनमें प्रसारण भी होता है और उन्हीं में आंकुचन होता है जिनमें प्रसारण भी होता है और उन्हीं में आंकुचन होता है जिनमें प्रसारण भी होता है और उन्हीं में आकुंचन होता है एक ही औषधि में दो रूप होते हैं परन्तु दोनों का मिश्रण करने से उनका एक ऐसा रूप बन जाता है जिसको पान कराने से ही मानो देखो, जैसे एक वस्त्र को हम धागे से कृत कर देते हैं इसी प्रकार वह औषधि आगे का कार्य कर जाती है। वह जो औषधि है उनका पान करना हमारे लिए एक बहुत ही आश्चर्य नही थ्ज्ञा इसका जब मैंने अध्ययन किया और अश्वपति से मैंने इसका निदान कराया। उस औषधि का नाम देखो, एक कृतिका नाम की औषध होती है और कृतिका में तीन प्रकार के गुण होते हैं क्योंकि उसकी जड़ में एक प्रसारण शक्ति होती है और मध्य मे आंकुचन होता है और उसकी जो फूल पतियां होती हैं उसमें व्यापकवत् होता है एक ही औषध में तीन प्रकार के गुण होते हैं परन्तु इसका निदान इस प्रकार किया जाता है मानो उसकी जो जड़ है उसको आधी ले लेना चाहिए और मध्यम् भाग भी आधा ले लेना चाहिए और फूल और पति भी आध आधी ले लेनी चाहिए। और मध्यम् भाग भी आधा ले लेना चाहिए उनमें एक कूकक नाम की औषध होती है जिसमें यह गुण होता है कि उसमें ऊर्ध्वा गति होती है उसकी जो जड़ है उसमें ऊर्ध्वा गति होती है और उसका जो पता होता है उसमें ध्रुवा गति होती है और उसका जो पता होता है उसमें ध्रुवा गति

होती है। अब दोनों औषधियों को बअराबर लेकर मानो इनका मिश्रण करके पात बनाने से अग्नि में तपा देना चाहिए। अग्नि में तपाने के पश्चात स्वर्ण को जो कृत होता है, स्वर्ण की जो अकृत धातु होती है उस स्वर्णरूपी अनात धातु को लेकर के उसका मानो देखो, एक अकरात भाग लेकर के उसक निदान करने के पश्चात मानो उसको पान कराने से वह जो मानो बालकानि अनुत ध्वनि होती है वह सब खुलती चली जाती है उसके पान करने से क्योंकि उसमें पांचों तत्त्वों का मिश्रण बराबर होता है और उसमें उस जल को शक्तिशाली बना करके पान कराया जाता है तो मेरी पुत्रियां जो होती हैं उनके किसी प्रकार का रोग नही होता है क्योंकि उनका रक्तमान सुन्दर होता है श्वासों की गति सुन्दर होती है।

जिस समय हम निदान करते हमें यह विचारना होता है कि उस मानव का श्वास कैसा है, उसके नेत्रों की गति किस प्रकार की है उसकी रचना किस प्रकार की है, उसका हृदय किस प्रकार का है और उसकी जो नस नाड़ियां है। वह किस प्रकार की चल रही हैं यदि नेत्रों में लालान का असर हो तो जानो कि उसके ब्रह्मचर्य की सुकृता नष्ट होने जा रही है, हरियाली हो तो जानो कि उसका ब्रह्मचर्य जम रहा है आन्तरिक जम रहा है और बाह्य जाता है तो बहुत ही पतला बन करे जाता है यदि उसकी नासिका का अग्रभाग विकृत हो जाता है तो मानो कि उसके ब्रह्मचर्य में वायु का प्रकोप आ गया है यदि रसना में तिक्तपन आ गया है, नीलापन आ गया है तो मानो उसमें कफ की प्रतिभा अधिक आ गई है। उसी प्रकार यदि उसकी तीन प्रकार की नाड़ियां में सोमान और मान्यवत हो गया है तो मानो उसमें पित की प्रधानता अधिक हो गया है इसको अच्छी प्रकार निदान करने के पश्चात हमें यह जानना होगा क आयुर्वेद का हम कितना किस प्रकार अध्ययन कर सकते हैं उस आयुर्वेद की जो प्रतिभा है हमें उसका निदान करना होगा।

कोई पुत्री है उसके पुत्र उत्पन्न नही होता है तो हमें उसकी कई प्रकार की गति जाननी होगी। सबसे प्रथम उसके नेत्रों की जानना होगा उसके पश्चात हमें उसके मस्तिष्क को जानना होगा, उसके पश्चात उसकी रसना को जानना होगा, उसके पश्चात उकसे नख

होते हैं उनको भी जानना होता है इसी प्रकार उनकी जो कुचम्भ होती है उसको भी जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है योनि का जो अग्रभाग है यदि उसमें किरकिर आ गया है उसको भी हमें कहते है। शून्यवत् हो जाना उसमें अग्रत गति न होना, उसमें प्रतिभा और मनमोच हो जाना यह सब उस गति को जानना होना, परन्तु जैसा मुझे प्रिय जी ने वर्णन करया आयुर्वेद के सिद्धान्त में भी आता है आयुर्वेद का बहुत ऊँचा विज्ञान आत मेरे समक्ष मेरे मस्तिष्क में आ रहा है परन्तु इसको मैं अधिक विलम्ब नही दूंगा न इसमे मुझे जाना है।

मैं केवल ब्रह्म की चर्चा कर रहा था उसमें मुझे आनन्द आना चाहिए था परन्तु चलो आज तुम्हें एक वार्त्ता प्रगट कराए देता हूँ। जिसको जानना तुम्हारे लिए अनिवार्य ही है परन्तु आयुर्वेद के सिद्धान्त से उसे अच्छी प्रकार जाने मन की गति को यह जान जाएं कि मन में किस प्रकार की क्रोत उत्पन्न है उस क्रोतपन को जानना है। क्रोतपन उसे कहते हैं क्योंकि योनि में क्राण गति को जाना क्राण गति उसे कहते हैं जिसमें रात कटिक अनुवोच हो जाना अनिवार्य हो जाता है। जब उसका निदान करना। उसके निदान के लिए हमें एक तो सदैव मन के प्रसन्नता की आवश्यकता होती है और मन उस काल में प्रसन्न रह सकता है जबमि हमारे द्वारा खान पान हमारा औषध सुन्दर होगा क्योंकि यह जितना अन्न है यह सभी औषधि कहलाया गया है जो भी हम पान करते है जिससे रक्त बनता है, मज्ञा बनती है, ब्रह्मचर्य बनता है, जिससे हमारे नेत्र पुष्ट बनते हैं सब औषधि कहलाती है।

अब हमें इसका निदान करना है हमें उन औषधियों को लाना है जिन औषधियों को हम चमत्कार और अन्धकार से प्रकाश में लाना चाहते हैं हमें अब उन औषधियों को जानना है। हमारे यहाँ एक कटकुत होती है। उस पर मानो श्वेत वर्ण का पुष्प आता है इसका निचला भाग श्वेत और नील वर्ण पर होता है उसके जो पत्र होते हैं वह पुष्पांजली के तुल्य होते हैं उसके जड़ के निचले भाग में लगभग एक सहस्त्र कीड़े हाते है उसकी जड़ में पर्वतों में प्रायः प्राप्त होती है उसकी जड़ में पर्वतों में प्रायः प्राप्त होती है क्योंकि उसमें वह विशेषता होती है कि उस औषधि में मानो मधु का अधिक सञ्चार होता है

परन्तु वह कीड़े भी अपनी उद्धवन गति को प्राप्त होते रहते हैं क्योंकि उसकी जड़ में मधुपन होता है उसका जो मध्यम भाग होता है उसमें कड़वाहट होती है यह उस औषधि की एक विशेष पहचान मानी गई है। उसके तीनों भाग हमें रसना से जान लेने चाहिए। उस औषधि को लायें हमें एक औषधि और लेनी पड़ती है जिसे हम शंक अनुवात् कहते हैं शंख आनुवत् वह औषध होती है जैसे एक हमारा बादाम होता है उस पर जैसा पुष्प आता है वैसा ही शंख आनवत पर आता है ऐसे ही उसके पत्र होते हैं परन्तु उसकी जो छाल होती है वह कड़वाहट में होती है, उसका जो पत्र होता है वह आनवत मधु होता है और उसकी जो जड़ होती है उसमें एक ऐसा विशेष रस होता है जो न मानो कड़वा होता है न मधु होता है उसमें एक बकाअकृत होता है अकृत रस होता है इसके पतों को, उसके पुष्पों को और उसकी छाल को, उसकी जड़ की कृतिमा को इन तीनों को लेकर के और वह जो मैंने पूर्व स्ि्लों में देखो, किर किर का नामोच्चारण किया था इन छह भागों को लेकर के तीन भाग उसके और इसके पञ्च भाग ले लेने चाहिए। यह अष्टांग बन जाता है देखो, एक होता है पंचांग और एक होता है अष्टांग बन जाता है अष्टांग को हमें पात पकाना है इसका पात बनानी है और पात बना करके एक ऐसे पात्र में स्थिर करना है जिसे रज के पात्र में स्थिर करने से उसका विष वह रज स्वयं अपने में शोषण कर ले परन्तु उस विष को हमें दूरी नही देना है उस औषध को मेरी पुत्री को चालीस दिवस तक पान करा करके ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कराते हुए तो किसी प्रकार के दोष हों, योनि दोष हों, नेत्र दोष हो, अवतनत् नाड़ि दोष हो सब दोष उसी से नष्ट हो जाते हैं उसको अष्टांग कहते हैं एक पांचाग होता है, एक त्रिगात होता है और भी नाना प्रकार का मैंने इससे निदान किया है, जब महाराज दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टि यज्ञ किया गया था उस समय मैं लगभग चौरासी वर्ष तक आयुर्वेद का अध्ययन कर चुका था पुत्रेष्टि यज्ञ कराने कावही पण्डित अधिकारी होता है जो आयुर्वेद का महान प्रकाण्ड पण्डित होता और आयुर्वेद का पण्डित ही यज्ञ की सुगन्धित औषधियों को जानता है कि यज्ञ मं कौन कौन सी औषधियों को पान कराने से यज्ञमान के नासिक में नेत्रों, श्रोत्रों में, उसकी रसना के अग्रभाग में लग जाने से कौन कौन से दोष दूर

होते हैं यह सब आयुर्वेद का पण्डित जानता है यह कोई ऐसा आसान विज्ञान नही हैं जिसको हम दो ही दिवस में जान जाते हैं यह ऐसा विज्ञान है जिसको हमें बहुत अनुसन्धान करना है।
सबसे प्रथम राजा दशरथ का ही निदान किया कि दशरथ के द्वार अकृत में क्या था क्योंकि मानव के दस द्वार होते हैं और दसों द्वारों में देवता विराजमान होते और उन देवताओं को शुद्ध करने के लिए नौ ही प्रकार की औषधियां होती है अब इन औषधियों को जानना होगा जैसे हमारे नेत्र में एक जमदग्नि बैठा हुआ है एक में विश्वामित्र बैठा हुआ है एक श्रोत के अगले भाग में भारद्वाज है, एक में जमदग्नि बैठा हुआ है और एक नासिका के अग्र भाग में अश्वनी कुमार है इसी प्रकार इन्हीं के प्रति हमें इनको शोधन करने के लिए उन औषधियों को जानना होगा क्योंकि औषधि भी इन्हीं के नामों से उच्चारण होती है जैसे जमदग्नि औषध होती है भारद्वाज औषध होती है जिन औषधियों में भवण अधिक होता है क्योंकि भवण का अभिप्रायः है जिन औषधियों में मित्रता अधिक होती है औषधियों की मित्रता को जानना हमें कि कौन से रूग्ण की कौन कौन सी मित्रता को उत्तम बना सकती है। मानो यह सब औषधि यज्ञशाला में प्रविष्ट होनी चाहिए। इन सब औषधियों की हमें सामग्री बनानी पड़ती है।
जैसे मैने बहुत पूर्व काल में इसका अध्ययन किया पुत्रेष्टि यज्ञ का उच्चारण करना तो बहुत ही सहज है परन्तु उसका करना या उसका निदान करना यह आश्चर्यजनक नही क्योंकि उसी प्रकार की उसमें समिधा होती है पुत्रेष्टि यज्ञ में मानो एक तो आक की समिधा होती है शमी की समिधा होती है उसमें जटामासी होती है त्रिकाट होती है उसमें चन्दन होता है दोनों प्रकार का चन्दन, अनुभूत चन्दन भी होता है उसके एक समुभूक नाम का वृक्ष होता है उसमं अनीकृत ना की समिधा होती है इसमसें देखो, लगभग दस प्रकार की समिधा होती है उन समिधाओं का निदान किया जता है कि यज्ञशाला में उन समिधाओं को कैसे प्रतिष्ठित करना है जैसे मेरे उस चैतन्य देव परमात्मा ने माता की जो योनि बनाई है उसी प्रकार की हमें यज्ञशाला बनानी है उसी प्रकार की योनि बनानी है उसी प्रकार की उसमें समिधाओं को चुननता है जैसे जैसे समिधा चुनते

रहते हैं उसी प्रकार उसमें र्भु भुव स्वः जैसे उच्चारण करते रहते हैं उन्हीं मन्त्रों का उच्चारण करते करते मेरी पुत्रियों के जो घाव होते हैं वह उन समिधाओं और वह जो सामग्री होती है उसकी सुगन्धि से, उसके घुम्र से वह सब शुद्ध होते चले जाते हैं इसी प्रकार बहुत कुछ जानने की आवश्यकता है। परन्तु क्या जाने संसार मं कुछ जानते भी नही। इतना जानने के पश्चात भी कुछ नही जाना जाता। कुछ है ही नही जाने भी क्या। जानने के लिए संसार हैं परन्तु जाना भी नही जाता। कैसे जाने इस संसार को यह मुझे बड़ी संशय रहती है कि मैं इस संसार को कैसे जानूं क्योंकि यह आयुर्वेद का तो इतना बड़ा विज्ञान है जिसमें मानव के जन्म जन्मान्तर समाप्त हो जाते है।

मुझे इसका निदान करने का सौभाग्य रहा। मैंने तीनों रानियों को एक पंक्ति में एकत्रित किया। उस समय मैं यह नहीजातना था पुत्रीवत् कैसा होता है अध्ययनतो किया था कि योनि भी होती है अंगरत होता है इसको मैंने श्रवण तो किया था परन्तु वास्तव में इसके रूप को नही जानता था मैंने आयुर्वेद के सिद्धान्त से कहा कि तुम मुझे ज्ञान कराओ क्योंकि भोली वार्त्ता इसी प्रकार की होती है वास्तव में संसार में जिस वाक्य को जो नही जानता उसमें किसी प्रकार का उसे दोषारोपण भी नही होता। उसी प्रकार मैंने कहा कि तुम मुझे अपनी योनियों का दिग्दर्शन कराओ। जब तक मैं योनि को नही जानूंगा तक तक मैं यज्ञशाला भी कैसे बनाऊंगा परन्तु महर्षि वशिष्ठ के लिए यह बड़ी लज्ञा का विषय बन गया था क्योंकि वह जानते थे इन विषयों को उस समय महारानी अरूणधती ने कहा कि भगवन हे ऋषि पुत्र ब्रह्मणानासतंग। यह कैसे आपको दृष्टता ! ब्रह्‌्मे उन्होंने कहा कि मुझे दर्शन होने चाहिए उन सब पुत्रियों ने मुझे सबने अपना दिग्दर्शन कराया दिग्दर्शन कराते मैंने उनकी योनियों को जाना तीन ही प्रकार की यज्ञशाला बनाई गई एक ही यज्ञशाला में तीन प्रकार का भाव बनाना पड़ा उस भाव बनाने से तीन ही प्रकार की उसमें योनियां बनाई उसी प्रकार की यानि ठीक यज्ञशाला ही तो सफल होती है अन्यथा यह सारा जगत ही यज्ञ में परणित हा ेरहाहै उस समय मुझे ज्ञान हुआ कि यह जितना भी जगत है यह यज्ञ हो रहा है मानो जितना भी जगत

जो आहार करत है दृष्टिपात करता है यह सभी एक प्रकार का यज्ञ हो रहा है। पुत्रेष्टि याग के कई भागों में मैंने कई प्रकार की लेखनी लिखी आज मुझे यह लेख प्राप्त नही होते हैं परन्तु न प्रति महानन्द जन उन लेखों को ला सकते हैं आज मुझे प्रतीत नही यह लेख कहाँ प्राप्त हो जाएं। परन्तु उस पोथी के एक एक भाग में लगभग एक एक हजार पृष्ठों का मैंने एक एक निदान बनाया। उससे ही मुझे ज्ञान हुआ कि वास्तव में यह कितना बड़ा विज्ञान है इसकी कितनी ऊँची प्रतिभा है मानव अनुसन्धान करने के लिए तो आया ही है। आज मानव नाना प्रकार के भागों के लिए तो आता ही नही जगत में क्योंकि भोग तो केवल इन्हीं के लिए आता है कि जो भी कुछ हम जानते हैं उसका हमें भोग भोगना है आज हम एक कन्या से क्रीड़ा करने लगते हैं परन्तु वास्तव में हमारा भोग नही है वह तो केवल हमारी एक धृष्टता है हमारे विनाश का समय आ गया है परन्तु भोग और हमें जो क्रीड़ा करनी है वह तो बेटा हमें ज्ञान और ! विज्ञान से ही करनी होगी। क्योंकि जब तब हम उससे क्रीड़ा नही करंगें अपने मे मन्थन नहीं करेंगें तो उसका हमें कैसे ज्ञान प्राप्त होगा हम कैसे संसार को आगे मार्ग दिखा सकते हैं क्योंकि हमें स्वयं को ही जानना है दूसरों को मार्ग तो हम तभी चेता सकते हैं जब मार्ग के स्वयं पथिक होंगें। मेरे मस्तिष्क में यह वाक्य पुनः पुनः आता रहा मैंने इसका बहुत निदान किया, निदान करने के पश्चात नानाप्रकार की औषधियों को जाना एक समय मैं भयंकर वन में चला गया एक औषधि को जानते जानते लगभग एक माह लग गया। उसके रस का स्वादन करता रहा किसी काल में उसकी पतियों को जानता रहा एक पत्ती को रसना के नीचे दबाते एक दिवस हो गया कि इसमें कितने प्रकार के रस होते हैं क्योंकि देखो, एक कुरूक नामक औषध होती है वह वृद्ध होता है। उसका पत्ता जब मैंने अपनी रसना के नीचे दिया तो रसना सूक्ष्म से बहुत विशाल बन गयी। जब विशाल बन गई तो मैं उसका रस एक दिवस तक पान करता रहा जब एक सर्वत्र दिवस हो गया तो रसना बहुत प्रबल बन गई और वाक्य उच्चारण करने से वंचित्त हो गया अब मैंने उसकी जड़ के अग्रभाग को जो छिलका होता है उसे एक दिवस लगाया तो उसका जो प्रदीप्त था वह उसे चूंस गयी। जब विष को पान कर गई और जब

उसकी बकली को रसना के निचले भाग में लिया तो वह इतना कैषला कि रसना ऐंठ कर कृत हो गई अब उसके जो पुष्प थे वह बकली के रस को चूस गया इसी प्रकार जब मैंने इसका पंचांग लिया और आगे उसके गुद्दे को लेने लगा तो वह ऐसा था कि मानो इन चारों भागों को अपने गर्भ में धारण करने वाला था उसमें इतना अक्रात सुन्दर आनन्द आता कि जैसे इसको पान ही किए जाओ। तो मानो इस प्रकार की औषधियां हमें आयुर्वेद के विज्ञान से प्राप्त होती हैं यह अनुभव है अनुभव जो है वह बहुत ही बड़ा होता है अनुभव करना हमारे लिए कोई सहज नही होता प्रायः मानव के लिए और यह आश्चर्य भी नही होता क्योंकि जब हम जिससे भोग भोगने लगते हैं उसका भोग हमें स्वयं को भोगना चाहिए। उसके भोगों में हमें सूत्मवत् नही करना चाहिए। क्योंकि हमारा जो भोग है, हमारी जानकारी है हमारा अनुभव है संसार में केवल अपने मन की प्रक्रियाओं को नष्ट करने का नाम ही भोग नही कहलाया जाता है।

मैं कंचन कामनी के सम्बन्ध में अपने चिर देना रहता हूँ उसको भी हमें सदैव विचारना होगा द्रव्य को भी हमें विचारना होगा क्योंकि द्रवय भी तो औषध है क्योंकि इसको पान करना इसको शुद्ध रूप से ग्रहण करना, इसका औषध बनाना यह सब आयुर्वेद में आता है। तो आयुर्वेद का अध्ययन हमें होना चाहिए क्योंकि कुछ धनवन्तरि जी ने इसके ऊपर अपनी लेखनीबद्ध की हैं, कुछ मानो चरक, सुश्रुत ने भी इसका निदान किया है अब मैं जब यह जानता रहता हूँ कि हमारा जो अनमोल शरीर है इसी में ही सब कुछ है तो हमें और भी आगे जाना होगा। तो बेटा इस सम्बन्ध में मैं कल वाक्य उच्चारण करूंगा ! कि शरीर का निदान शरीर से कैसे किया जा सकता है। यह बहुत ही अनिवार्य है मैं इन वाक्यों को समाप्त करने जा रहा !क्योंकि इसमें संसार का विज्ञान है अब बेटा हूँ।

वाक्य उच्चारण करने का केवल हमारा अभिप्राय यह है कि हम वाक्य तो ब्रह्म का उच्चारण करना था परन्तु हम आयुर्वेद सिद्धान्त पर चले गये। आयुर्वेद के विज्ञान पर चले गएं आयुर्वेद पर आज नही जाना था क्योंकि आयुर्वेद में जब चला जाता हूँ तो मुझे यह मार्ग प्राप्त नही होता कि मैं क्या उच्चारण करूं क्योंकि इस सम्बन्ध में मैंने बहुत

कुछ अनुभव किया है। अनुभव करने के पश्चात परन्तु मेरा जीवन अधूरा रहने के कारण जीवन में पथदर्शन न होने कारण आपति काल होने के कारण उस आयुर्वेद का मैं पूर्णतव इतना लाभ संसार को प्राप्त नही करा सकता जितना मैंने स्वयं इसका अनुभव किया है। यह कोई ऐसा वाक्य ानही हैं क्योंकि इसमें मुझे आश्चर्यजनक या वाक्य प्रगट करने का मुझे इतना सौभाग्य या इतनी प्रतिभा तो अपने मस्तिष्क में लानी ही नहीं चाहिए क्योंकि इसमें तो प्रायः मानव सभी संसार में अपने कर्मठता के आधार पर सभी अपना अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं। तो अब मैं अपने वाक्य को विराम देने जा रहा हूँ आज का वाक् यह समाप्त अब मुझे समय मिलेगा तो मैं कल यह वाक्य उच्चारण करूंगा कि आयुर्वेद से मानव की कायाकल्प कैसे हो जाती है और मानव अपने सूक्ष्म और कारण शरीरों में भी आयुर्वेद के सिद्धान्त से कैसे पंहुच सकता है। मैंने इस विज्ञान को अध्ययन किया और अपने प्यारे महानन्द जी को भी इसका निदान करया और अपनी पुत्री को भी इसको बहुत ज्ञान कराया था कल का मेरा विषय बहुत ही गम्भीर है जिसका मैंने अनुभव किया है, मेरे प्यारे महानन्द जी ने भी अनुभव ! किया है यह भी इसमें अपना वाक्य उच्ारण करेंगें। अब आज का वाक् यह समाप्त अब वेदों का पाठ होगा।

८ 18 01 1970 पुष्प 13

मेरे प्यारे आज का हमारा वेदार्थ मन्त्राः हमें उस उपास्थानमि मधु !ऋषि मण्डल ! कानच्य मर शिव गत्यव आज का हमारा अनुवात प्रक्कथन उस मार्ग के लिए प्रेरित करता चला जा रहा था जिस मार्ग में जाने के पश्चात मानव का हृदय पवित्र होता चला जाता है वह जो आनन्दमयी प्रभु है। हम उसकी याचना करने के लिए आते हैं इस संसार में हामरा जो मुख्य लक्ष्य हाता है वह उस परमपिता परमात्मा की उपासना आनन्दमयी होती है आज मैं अपने वेदना भरे शब्दों को कैसे उच्चारण करूं क्योंकि वाणी में शब्द नही रहता। जब मैं उस प्रभु की महिमा का गुणगान गाने लगते हैं तो हृदय हमारी जो मस्तिष्क की एक देन है वह तेरे में ही हमें ओत प्रोत प्रतीत होती है हे प्रभु ! यह जो संसार मुझे दृष्टिपात आ रहा है, जिस संसार में अपमान की तरंगें मुझे छू रही

हैं, मुझे नाना प्रकार की विडम्बना मस्तिष्क में आती है प्रभु उस विडम्बना को मैं नही ! चाहता मैं उ समान अपमान को भी नही चाहता जो मेरे जीवन के महान शत्रु बने हुए मैं उस शत्रुता को भी नही चाहता जो संसार के लिए महान घातक और !हैं हे प्रभु जीवन को अधोगति में ले ज ाने वाला है।

प्रभु मेरा जो क्रियात्मक जीवन है मैं उसे सदैव चाहता रहता हूँ कि मेरा जीवन इस संसार में कर्मठता को प्राप्त होता रहे क्योंकि कर्मठता ही तो जीवन है जिसे हमें जानना है हम सदैव अपने जीवन में विचार विनिमय करते रहते हैं हे भगवन तू वास्तव में ! विचारक ो ं का भी विचारक है अखण्ड सदैव रहने वाला है तेरा संसार में कोई विभाजन भी नही कर पाता तू इतना महान है और विभु माना गया है जो सर्वत्र ओत प्रोत है मैं आपके चरणों की वन्दना करने आ रहा हूँ प्रभु यह जो अन्तरिक्ष है यह आपका मस्तिष्क ही है प्रभु यह जो दिशाएं है यह ही तो आपकी भुजाएं हैं, यह पृथ्वी ही तो आपके तालु का कार्य कर रही हैं भगवन आप जो पृथ्वी पर विचरने वाले जो ! नदीवत है वह आपके नाना स्रोत हैं आपके शरीर के स्रोत हैं पर्वत अस्थियों का कार्य यह जो सारा जगत है यह एक ब्रह्म के स्वरूप में मुझे द !करते रहते हैं भगवन ृष्टिपात आ रहा है यह क्या इसको मैं जान नही पाता। जहाँ केवल इपने ही मानवत को नष्ट किया जाता है तो प्रभु यह जगत सुन्दर प्रतीत नही होता। मुझे तो केवल एक ब्रह्म ! ही प्रतीत होता है जिसका यह विराट ब्रह्माण्ड एक शरीरवत प्रतीत होता है मैं और मेरी बालिका सदैव उस मह ान मृगराजों के मध्य में विराजमान हो करके मृगराजों से कलोल किया जाता, उनसे विनाद भरी वार्त्ता प्रगट की जाती थी वह समय मुझे आज स्मरण आता चला जा रहा है क्योंकि वह समय कितना कर्मठता में परणित होता था जहाँ मृगराज एक बाल की भांति लोरियों में आने के लिए तत्पर होते। वह समय मानव का सौभाग्य से ही प्राप्त होता है क्योंकि वही तो प्रभु का एक दिग्दर्शन है जहाँ मानव ! इतना अहिंसा परमोधर्म हो जाता है वही तो ब्रह्म का एक उज्वल स्वरूप है ब्रह्म का स्वरूप और है कहाँ निर्भयता में ही तो ब्रह्म का स्वरूप माना गया है परन्तु निर्भयता मानव में उस काल में आती है जब उस के विचारों में शुद्धवत हो जाता है विचारों में

एक महानता का एक दिग्दर्शन होने लगता है वह अहिंसा परमोधर्म का सबसे प्रथम प्रतीक है जहाँ ब्रह्म को इस प्रकार कल्पना करके उसको क्रियात्मक लाया जाता है वहीं तो ब्रह्म को इस प्रकार कल्पना करके उसको क्रियात्मक लाया जाता है वही तो ब्रह्म का स्वरूप प्रतीत होता है आत्मा की जो व्याकृति है वह हमें ब्रह्म में लय होती प्रतीत होने लगती है तो मेरे प्यारेआओ !, हम अपने उस प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए अपने जीवन को धिक्कारते चले जाएं हम कहाँ चले गएं कौन सा आँगन हमारे लिए था और हम किस आँगन में चले गये।

तो मेरे प्यारेआज हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते चले जा रहे थे !ऋषिवर !, हम अपने प्यारे प्रभु का महिमा का गुणगान गाते हुए अपने जीवन को महान और पवित्र वेदी पर ले जाना चाहते हैं परन्तु मन की विकृतता मानव की बाधक बन जाती है मुझे सदैव, परम्परागतों से ही, इन बाधाओं से पृथक होने का सौभाग्य तो प्राप्त हुआ है परन्तु मानव कर्मों की गति का ऐसा एक अकृत होता है जो मानव को कहीं का कहीं ले जाता है

मेरे प्यारेआओ !ऋषिवर !, आज हम प्रातःकाल में ब्रह्म का स्वरूप अपने समीप लाना चाहते हैं ब्रह्म की आनन्नदमयी ज्योति को लाना चाहते हैं जिसको जानने के पश्चात हमारा जीवन एक महान हो जाता है और महानता में वही वाक्य परणित हो जाता है तो मेरे प्यारे आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है हम अपने प्यारे !ऋषिवर ! प्रभु का गुणगान गाते हुए अपने जीवन को उज्वल बनाना चाहते है। महानता में परणित करना चाहते हैं आज हम अपने देवता का गुणगान गाते ही तो चले जाएं जिस प्रभु की महिमा का गुणगान गाने में ही मानव को जीवन प्राप्त होता है आनन्द की तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं परन्तु जहाँ संसार वेदना में परणित हो रहा है वहाँ मुझे अपनी बालिका की चर्चा स्मरण आने लगती है। जब भी मैं किसी काल में व्याकुलता को प्राप्त होतारहता था परन्तु वहाँ मृगराज बालिका विनोद करने के पश्चात हर्ष ध्वनि अन्तःकरण में प्रेरित हो जाती क्योंकि हृदय में ज्ञान की भी एक विडम्बना होती है उसमें जाना भी मानव को सान्त्वना की आवश्यकता होती है क्योंकि जहाँ ज्ञान की पराकाष्ठा मं मानव

चला जाता है मानव कहीं कहीं नास्तिकवत को प्राप्त हो जाता है कहीं कहीं ब्रह्म की अपने से दूर कर देता है परन्तु वहाँ भी एक सान्त्वना की आवश्यकता रहती है, विनोद की आवश्यकता रहती है और वह विनोद बड़ा सम्भ होता है, परमात्मा के आँगन के निकट होता है उससे पृथक नही होता।
आओ, आज मैं उस वाक्य को लेता चला जाऊं जहाँ मानव अपनी प्रतिभा को सुन्दर बना सकता है मैंने कुछ आयुर्वेद के अंगों को ग्रहण किया है जो आज तक मेरे अन्तःकरण के पटल पर अंकित हो रहे हैं मैंने आयुर्वेद के सम्बन्ध में कल कुछ चर्चायें कही हैं। आज भी मैं सूक्ष्म सी चर्चा कर पाऊंगा। यह जो नाना प्रकार का सुन्दर निदान है मैं कल पुत्रेष्टि यज्ञ के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कर रहा था मुझे जब पुत्रेष्टि यज्ञ के अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ मानो नाना प्रकार की औषधियां को एकत्रित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ क्योंकि मानव अपनी इन्द्रियों से इन्द्रियों का निदान कर सकता है। मानव को अपनी इन्द्रियों का निदान करना है जिस मानव को क्षय का रोग हो जाता है। रूग्ण हो जाता है, अस्थियों में एक क्रटिक उत्पन्न हो जाता है तो उन परमाणुओं को नष्ट करने के लिए अपनी इन्द्रियों को निदान करना बहुत अनिवार्य है उसमें गो मूत्र लिया जाता है अपना स्वयं का मूत्र लिया जाता है और वह जो कनक होते है। स्रोत इन्द्रियां इनका कुछ गोपितीति का मल लिया जाता है और नेत्रों का भी कुछ मल लिया जाता है और कुछ घ्राण का मल लिया जाता है इन सब मलों को ले करके इनको अग्नि में तपाया जाता है इनका एक दूसरा निदान यह भी है कि इनको खरल कर लिया जाता है छाया में कृत करने के पश्चात अग्नि में तपाना इसीलिए अनिवार्य हो जाता है इसको पान करने में सुगमता होती है और उसमें सहदेही एक ज्ञानिकक नाम की औषध होती है दोनों का उसमें मिश्रण किया जाता है दोनों को उसमें मिश्रण किया जाता है अग्नि में तपने के बाद उसको खरल किया जाता है और उसको खरल करने के पश्चात उसे सुन्दर पात्र में स्थिर करले और उसको पान करने का केवल कए ही कृत है गो दुग्ध को लिया जाएं, गो घृत को उसमें परणित होना चाहिए, उसके साथ पान करने से वह रोग समाप्त हो जाता है परन्तु इसका निदान बहुत सुन्दर होना

चाहिए। इसके लिए मानव को आलसी और प्रमादी नही बनना चाहिए। यह औषध वैसे प्राप्त नही होती। इसके लिए मानव को पुरूषार्थ और विचार की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार मानव अपनी क्रियात्मक उन्नत बनाना चाहता है इसका दूसरा स्वरूप भी माना गया है सहदेही और यदोदेही, शंकुली, त्रिकटम, आचांगानी इन सबका पान बनाया जाता है। पात बनाने के पश्चात इसको लेपन किया जाता है चालीस दिवस लेपन करने के पश्चात मानव की त्वचा सुन्दर बन जाती है और मानव की नस नाड़ियों में एक विद्युत उत्पन्न हो जाती है एक पवन कौतुक नाम का आसन होता है वह करना बहुत अनिवार्य है इससे मानव के मन में जो एक विडम्बना होती है वह नही होगी और काम प्रवृत्ति उत्पन्न नही होगी, ब्रह्मचर्यव्रत स्थिर होता चला जाएगा। ब्रह्मचर्य व्रत स्थिर हो जाने के पश्चात यदि उसमें कुछ सूक्ष्म प्राणायाम प्रारम्भ कर दे तो वह स्वर्ण में महान सुहागे का कार्य करता है और उससे मानव का अन्तरात्मा सुन्दर और उत्थान के आँगन में प्राप्त होने लगता है।

एक ब्रह्म केतुक नाम की औषध होती है सर्पकेतुक नाम की औषध में उसका दोनों का मिश्रण होता है बराबार और उसमें एक विरुध नाम की औषध होती है उसको भी उसमें बराबर लिया जाता है और किरकिट नाम की औषध को उसमें खरल करने के पश्चात अपने ही मूत्र में उनका खरल करना चाहिए। चालीस दिवस उसका पान करने के पश्चात आत्मा का उत्थान ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होता चला जाता है। यह मैं नही कहता आयुर्वेद कहता है महाराज धनवन्तरी जी ने इसके बड़े सुन्दर आंकड़े दिए हैं। हमारे यहाँ अश्वनी कुमारों ने भी इसका बहुत अनुभव किया है मैंने तो अभी तक इसका इतना अनुभव नही किया केवल इसको जाना ही है।

परन्तु देखो, अपना मूत्र लेना ही मानो देखो, क्योंकि इससे उत्तम संसार में कोई भी रसायन मानव उत्पन्न कर ही नही सकता क्योंकि नाना प्रकार के जलों को भी लिया जाएं इसके पश्चात भी उत्पन्न नही कर सकता क्योंकि यह प्राकृतिक होने के पश्चात इसको इसीलिए सर्वोतम स्वीकार किया जाता है क्योंकि इसमें जितना पारा होना चाहिए, जितना स्वर्ण होना चाहिए, जितना लवण चाहिए वह सब मात्रायें इनमें ओत

प्रोत होती हैं इसको महाराजा चक्र इत्यादियों ने भी बड़े सुन्दर रूपों से मान्यता दी है। औषधियों का रस पान करने से मानव को अन्न की प्रतिभा इतनी व्याकुल नही करती। जो ऋषि मुनि होते हैं हमारे यहाँ वह औषधियों का आश्रय लिया करते है।

हमारे यहाँ जैसे महर्षि भारद्वाज थे उन्होंने इनका बहुत कुछ वर्णन किया है। शंखाहुलि है, सर्पकेतु है और मौरकिक भी है, त्रिकाट है निधिनन्त है, मानो देखो, जैसे आनन्दकर है अधु ओत नाम की वृक्ष इत्यादियों को सबका पंचांग लेकर के इन सबका रस बनाया जाता है उससे अन्न की इतनी आवश्यकता नही होती। जहाँ अन्न की आवश्यकता नही होती इन औषधियों से प्राण शक्ति अधिक होती है इसीलिए मानव का काया कल्प हो जाता है काया कल्प हो जाने से ही उनका चित्त पांचांग लेने से सुन्दरवत को प्राप्त हो जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है कि जैसे पीपल का पंचांग है उसे मानव नित्यप्रति पान करता रहे तो उसके पान करने से सर्प का विष व्याप्त नही होता। क्योंकि पीपल के पंचांग में मानव की प्रवृत्तियां और रक्तवहन होता है उसमें सुन्दरवत वह विद्युतता का सञ्चार अधिक हो जाता है। उसको कोई भी विषधर प्राणी हो उसका पान अधिक हो परन्तु निदान सुन्दर होना चाहिए। उसके निदान में सूक्ष्मता नही आनी चाहिए यदि उसे निदान में सूक्ष्मता आ जाएगी तो उसका विपरीत कार्य भी हो सकता है क्योंकि मुझे स्मरण आता रहता है जब मेरे प्यारे महानन्द ही आश्रम में परणित हुए तो मेरी ! पुत्री ने ही उनका पालन किया क्योंकि प्रवृत्तियों में एक ऐसी महान चंचलता आ गई थी, ऐसा कामातुर हो गया था कि वर्णन करते हुए लज्जित होता रहता हूँ तो उस समय मेरी बालिका ने स्वयं औषध लानी और कई वृक्षों का पंचांग लेकर उन्हें पान कराते बारह वर्ष तक पान कराने से ही कामातुरतव सब समाप्त हो गया था कामना के संस्कार ही मानव के नष्ट हो जाते हैं उसके पश्चात प्राणायाम और निध्यासन करने से मानव की प्रवृत्तियों में एक महान सूक्ष्मवत् हो जाता है सूक्ष्म गति को जब मानव प्राप्त हो जाता है तो मानव का मस्तिष्क चेतनित हो जाता है जब मानव के मस्तिष्क में चेतना की धारा उत्पन्न हो जाती है तो उसी से मानव का जीवन एक महानता में परणित हो जाता है जैसे हमारे यहाँ जाल का वृक्ष होता है और किरकिट का वृक्ष होता है और एक वृक्ष

जो हमारे यहाँ पीपल है, त्रिवहाट है मानो देखो, उन पांचों का पंचांग लेने के पश्चात इनका सोमरस बना करके जो मानव पान करता है तो उस मानव के उदर का मल नही बन पाता परन्तु प्राणों का सञ्चार सुन्दरवत को प्राप्त होता रहता है।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने इनका लगभग चौदह वर्ष तक पान किया। इनका सोमरस ! बनाकर के पान करने से ऐसी गति को प्राप्त हो गएं कि उसमें प्राणायाम करते रहते निध्यासन करते रहते आज्ञा के अनुसार और सूक्ष्मवत् शरीरों को प्राप्त हो गये। क्योंकि इनके पंचांग से ही इस आत्मा की जो तीन गतियां है उनको जान लेता है। क्योंकि इनमें ही पञ्च महाभौतिक पिण्ड है पञ्च महाभौतिक पिण्ड को उत्तम बनाने के लिए स्वयं इन पांचों पंचांगों की सदैव आवश्यकता रहती है। इसको पान करने से ही मानव के जीवन में एक सुन्दरता और एक कृति अदभुत उत्पन्न होने लगती है।

मैं इस सम्बन्ध में अधिक वाक्य प्रगट करने नही आया क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी ! भी अपने शब्दों का वाक्य उच्चारण करने ही वाले है।

समु गत्यं नमो वायानि कृत्यं ब्रह्मे आक्रोति रेवाः

मैने एक वाक्य यह कहा था प्रभु का चिन्तन करते हुए अपने मानवतव को सुन्दर बनाना है। और आयुर्वेद सिद्धान्त को जानता तो मेरे लिए एक वन में पंहुच जाना है। मुझे मार्ग प्राप्त नही होता कि मैं कौन सी औषधि का वाक्य उच्चारण करूं क्योंकि इसमें नाना प्रकार के पंचांगों की बड़ी महिमा गाई है आयुर्वेद में बड़ा सुन्दर कहा है कि जो स्त्री अनाघात हो जाती है मानो जो बन्ध्यापन को प्राप्त हो जाती है पुत्रवत् की उत्पति नही होती परन्तु उनमें पांच प्रकार की काप्तधनु अनेक आचांगरिध होती है परन्तु उनमें कुछ ऐसी होती हैं जिनका संसार में कोई औषध प्रभु ने बनाया तो है परन्तु वह बड़ा आश्चर्यजनक है परन्तु कुछ ऐसा है जिनका औषध और पात बनाने से ही जीवन की प्रतिभा सुन्दर बन जाती है। जैसा मैंने कल के वाक्यों में भी कहाथा आज भी मुझे कोई द्वितीय औषधि स्मरण आ रही है, जैसा मैंने अधुधूत और सिंवनी, अंचारी, निधिनाश्चा, आधूरोति, स्वर्णानुअनात मानो देखो, इन सभी को बराबर लेकर इनका पात बना करके सोम रस बनाने से ही चालीस दिवस पश्चात उनके शरीरों में रक्तों में महान सुन्दर और

त्रिधि उत्पन्न होने लगती है। उससे मानो मेरी पुत्री का मेरी बालिका इन सब औषधियों को जानती थी जानने के पश्चात इस पर हम दोनों का शास्त्रार्थ भी चला करता था क्योंकि एक एक औषध पर हमारा शास्त्रार्थ हो जाना बहुत अनिवार्य हो जाता था क्योंकि शरीरों का जो निदान है शरीर को जान जाना ही संसार में ब्रह्म को प्राप्त हो जाना है यदि हम भगवान को जानना चाहते हैं तो सबसे प्रथम अपने शरीर को जाने बिना हमारा जीवन कदापि सुन्दरवत् को प्राप्त नही होता। तो मैं अपने वाक्य को यहीं विश्राम देना चाहता हूँ। कि आज मेरा कोई ऐसा विषय नही है। वाक्य उच्चारण का अभिप्रायः केवल यह है कि हम परमात्मा का चिन्तन करते रहें और आनन्दवत् को प्राप्त होते रहें जिससे जीवन की प्रतिभा सुन्दरवत् को प्राप्त होती रहे। अब मेरे प्यारे महानन्द जी ! दो ही शब्दों का प्रतिपादन करेंगें अधिक इनको देना नही है।

पूज्य महानन्द जीः समवर्धन नमा वसुचर वेश्वरा आभ्यानम् गुरुभ्यो नमः अस्वते नमः। देव दयानिधि !चरण बन्धनम् !प्रतिपालक !जगत उद्धभुव निरंजन्म् !आनन्द करूणामयी ! !पलका !मेधान

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मैं कोई शब्दों का प्रतिपादन करने नही आया हूँ। मैं तो केवल कुछ वन्दना करने आया हूँ क्योंकि संसार एक ही सागर है यह जो संसार दृष्टिपात आ रहा है यह एक अग्नि का प्रज्ञवलित किया हुआ एक ही आसन है क्योंकि मैं सदैव परम्परा से ही इन वाक्यों में बड़ा दुखित होता चला आया हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की यह वार्त्ता जैसा दूसरों को उपदेश देना है वह तो हमें भी बहुत ही प्रिय लगता है, और उसमें कितना मधुरपन रहता है परन्तु जब हम यह विचारने लगते हैं कि पूज्य गुरुदेव कितने उस मार्ग पर चलते हैं तो वहाँ गोल मोल हो जाता है रहा यह वाक्य कि अनुसन्धान किया गया, बहुत कुछ अनुसन्धान किया मैं तो सूर्य के समक्ष ऐसा हूँ। जैसे सूक्ष्म सा प्रकाश होता है परन्तु मानव को मानव की दशा कहाँ ले जाती है। एक एक बहुत विचारक वाक्य हैं मेरे पूज्यपाद ने एक पुस्तक लेखनीबद्ध की थी जिसमें लगभग तीन हजार पृष्ठ थे। उसमें कितना मुधर ज्ञान था वह जैनकाल में अग्नि के मुख में चली गई, वह प्राप्त नही होती। कोई वाक्य नही होता उसमें क्रोध की कितनी उज्ज्वलता थी,

कितना उसमें स्पष्टीकरण था कि क्रोध करने से कौन सी नाड़ी कैसे नष्ट हो जाती है, कैसे ज्ञान की सूक्ष्म सूक्ष्म नाड़ियां समाप्त हो जाती हैं परन्तु न जाने क्यों इस प्रकार की प्रवृत्तियां बनती चली जा रही है। यह नही जान पाता। क्रोध के कारण ही नाना प्रकार की यातनाएं, आपतियों को सहन करना स्वीकार हो गया, क्योंकि क्रोध का दण्ड देना मुझे तो शोभा नही देता परन्तु दण्डित करना भी शोभा नही देता। शिरोमणी गच्दन्तः रुद्रो भागा प्रभु अस्ति जहाँ क्रोध ही एक प्रकार की मात्रा है यह मुझे कोई सुन्दर प्रतीत नही होता। इसीलिए मैं कलयुग के प्राणी से यह वाक्य अवश्य उच्चारण करता रहता हूँ। जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है कि क्रोध नही करना चाहिए। मैं अपने सूक्ष्म शरीर से दृष्टिपात कर रहा था कि क्रोध में जब मानव को अपने शरीर का ज्ञान नही रहता तो मानव का ज्ञान और वहाँ की नाड़ी कहाँ रह सकेगी, उन का भी ह्रास हो जाएगा। परम्परा से जाते हुए कि क्रोध पर अनुशासन न करने का परिणाम भयंकर होता चला आया है। परन्तु संसार में जो भी रचना होती है उसका एक मानवत्व निमित होता है किसी भी प्रकार की रचना हो, वह कलात्मक रचना हो, मानव की यौगिक रचना हो परन्तु उसका श्रेय मानव को नही होता उसका श्रेय प्रभु को ही होता है क्योंकि जितने भी शुभ कार्य होते हैं उनका श्रेय तो मानव को निहित ही होता है परन्तु उनका श्रेय प्रभु को उत्तम होता है इसीलिए मैं इन वाक्यों को उच्चारण करने जा रहा हूँ। किसी भी मानव को कभी अभिमान नही होना चाहिए। कि मैं किसी कार्य को करता रहता हूँ। क्योंकि दर्शन नही कहता इस वाक्य को तो केवल भगवान की जब हृदय में प्रतिष्ठा मानी हैं क्योंकि मेरी भोजाई परम्परा से पूज्यपाद गुरुदेव से शास्त्रार्थ करते यही कहती थी कि हृदय क्या होता है हृदय के ऊपर इनका एक हृदयांगिनी पुस्तकम् थी जिसमें चौदह हजार पृष्ठ थे तो बारह वर्ष की तपस्या के उपरान्त लेखनीबद्ध की थी आज मानव को यह पुस्तक प्राप्त नही होती। उसमें केवल यही था कि हृदय में भगवान की प्रतिष्ठा कैसे है भगवान क्या है मुझे यह वाक्य स्मरण आता रहता है। मैंने उस प्रतीत होता है कि हृदय में ब्रह्म की प्रतिष्ठा है और जब ब्रह्म में ही भगवान की प्रतिष्ठा है कितनी भी शुभ प्रेरणा उत्पन्न होती हैं वह सब भगवान की ही प्रेरणा हुआ करती है। इसके ऊपर

बहुत लेखनियां बद्ध की गई हैं। इसके ऊपर पोथियां की पोथया आरकराय और शतपथ ब्राह्मरा में बड़ा सुन्दर वर्रान आता है महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने भी बहुत सुन्दर अपने विचारों को एक लेखनीबद्ध की। मैं केवल इन वाक्य को इसीलिए उच्चाररा करने जा रहा हूँ। कि जहाँ हमारी आकाशवाराी जा रही है। मानव को विचार करके अपने वाक्यों को उच्चाररा करना बहुत अनिवार्य है क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो जितना इनको बिगड़ना था बिगड़ चुके। इनका बिगड़ना ही क्रोध पर अनुशासन नही हुआ है और न आगे रहने की सम्भावना रह पाती है मुझे सदैव इसके ऊपर बड़ा दुखित होता रहता हूँ किसी किसी काल में अनायास ही क्रोध की मात्रा उत्पन्न होना यह कोई सुन्दर वाक्य नही हैं, यह शोभा नही देता परन्तु इसमें किया भी क्या जाएं। मेरा ऐसा वाक्य नही हैं मैं तो केवल उच्चाररा ही कर सकता हूँ। इसीलिए गो घृत को पान करना बहुत अनिवार्य है परन्तु गऊओं को इस राष्ट्र के राष्ट्रनायक नष्ट करते चले जा रहे हैं तो गो घृत कहाँ से प्राप्त हो जाएं कोई वाक्य नही।

आज मैं केवल एक वाक्य उच्चाररा करने करने आया हूँ कि यदि पुत्री पर किसी प्रकार का आक्रमरा भी करना है त्रिगत भी करना है तो उसको बहुत ही विचार करके करना है आक्रमरा का अभिप्राय यह नही है कि डराडे से आक्रमरा किया जाएं विचारों से आक्रमरा करना मानो शोभा देता है, क्रोध से आक्रमरा करना शोभा नही देता। मैं यह एक वाक्य सदैव स्वीकार करता रहता हूँ। यह आज कोई नवीन वाक्य नही हैं परम्परा का ही वाक्य है जो आज स्मररा आता चला जा रहा है।

एक समय का वाक्य विराजमान थे मैं भी विराजमान था एक मृगराज आ गया विचार यह बन रहा था तीनों का ही कि इस मृगराज को इसके पिछले विभाग ने किसी ने आक्रमरा किया है और रक्त से बड़ा व्याकुल हो रहा था तीनों के विचार में यह आ रहा था कि मृगराज को क्यों न औषधि पान करानी चाहिए। इसी पर पुत्री ने कहा कि भगवन मैं तो कर नही पाऊंगी क्योंकि यह तो मुझे शोभा नही देता कि मैं मृगराज ! आप ही इस कार्य को कर सकते हैं !के समीप आऊं परन्तु मैंने कहा कि भगवन इसमेः विवाद इनता आ गया कि वह अपनी आसन को वहाँ से परराम् ब्रह्मे अस्ति

क्योंकि उस समय चटाई रहती थी उस चटाई को ले करके वहाँ से दूर चले गये। परन्तु महर्षि मुगदली गोत्राणि कच्छन्ति ब्रह्मा व्यापनोति कामाः नराशम् इदन्नम् गिरीशम् वेदवाणी परन्तु उस वाक्य को मैं कहाँ से ले सकता हूँ। जैसा मेरा हृदय व्याकुलता को प्राप्त होता रहता है परन्तु मैं नही जान पाता कि इस क्रोध को परिणाम किए कि मैं जाऊं और गुरुदेव की उस प्रतिभा में उनकी छत्र छाया में विराजमान हो जाऊं। वहाँ जाने के पश्चात मेरा हृदय तो बहुत ही व्याकुलता में परणित रहता था क्योंकि मैं जानता था कि जो जिसका उद्धारक और जीवन को शुद्ध बनाने वाला होता है उसके पश्चात मैं मुग्दल गोत्र के आश्रम में पंहुचा और मैंने कहा कि भगवन् मैं बड़ा व्याकुल हूँ वन्दना ! करने के पश्चात बारह वर्ष के पश्चात उन्हें अपने आसन पर ले आ पाया केवल सूक्ष्म सी घटना हो जाने के पश्चात मुझे स्वप्न में भी यह ज्ञान नहीं हो पाता था। मैं इसकी पुनरूक्ति इसीलिए देना चाहता हूँ कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को सदा से ही ऐसे वाक्यों का जन्म सिद्ध अधिकार रहा है। न प्रति मैं इस दशा में क्यों दृष्टिपात कर रहा हूँ। मैंने उस समय भी यह वाक्य कहा था जिस समय उन्होंने पुत्री की बालिका को नष्ट किया था कि भगवन आप इतना अधिक क्रोध न कीजिए क्योंकि किसी मानव को मृत्यु ! दण्ड देना यह मानव के लिए भयंकर होता है परन्तु जब एक भी वाक्य स्वीकार नही किया जाता उसका भयंकर परिणाम यह कि आधुनिक काल का जगत जो जिसके मुखारबिन्द में जो वाक्य रहता है उन्हीं वाक्यों का प्रतिपादन हो जाता है इसमें मैं क्या कर सकता हूँ किसी को भी शाप देना हमारे लिए शोभा नही देता। किसी को हम कटु शब्दों का प्रतिपादन करें वह भी हमारे लिए शोभा नही क्योंकि उससे हम बहुत ही अर्पित होते रहते है। सदैव अपना विचार इस जगत को देते रहते है।

मैं एक वाक्य यह उच्चारण करना चाहता रहता हूँ कि मेरी वह बालिका बारह वर्ष तक उस व्याकुलता में रही कि शरीर की मुझे अस्थियां दृष्टिपात आने लगी। सान्त्वना देता परन्तु कहाँ सान्त्वना आती। बारह वर्ष के पश्चात जैसे वट वृक्ष को जल देने से सूख वृक्ष हरियाली को प्राप्त हो जाता है ऐसे ही मेरी भोजाई की दशा पूर्ण बनती चली गई क्योंकि जिसकी छाया जिसके द्वार से चली जाती है उस मानव के समीप और रह ही

क्या जाता है ब्रह्मवेत्ता की छाया ब्रह्म का ज्ञान उसके द्वारा से चला जाएं वह ज्ञान से शून्य हो जाता है। अपंग हो गया इसी प्रकार बालिका के ऊपर मानो पूज्यनियों की छाया जब चली जाती है तो वहाँ एक सुखर के तुल्य हो जाता है। यों तो संसार मृत्यु को प्राप्त होता रहा है। परन्तु मैं इन व्याकुलताओं में सदा से ही रमण करता रहा हूँ। मैंने अपने विचारों में बहुत सी लेखनियां दी है। मेरा उद्धारक मेरा जीवन सदैव से यह रहा है आयुर्वेद का जहाँ तक विचार है वह बहुत ही सुन्दर विचार है अध्ययन किया, अनुसन्धान किया गया परन्तु यह क्रोध की अपनी मात्रा पर संयम होना मैं तो जानता हूँ कि कैसे हो सकता है इसका उपाय भी कई काल में वर्णन किया परन्तु वह इच्छा गच्छति रुद्र भागा वसुन्धननम् प्रेमे अस्तु मैं तो पूज्यनीय को किसी काल में मोह को ही प्राप्त नहीं हुए क्योंकि मुझे जन्म जन्मान्तरों तक की प्रतिभा स्मरण आती रहती है न तो मोह को ही प्राप्त हुए हैं और न कामना को ही प्राप्त होते है। न अकृति में किसी प्रकार का चंचलता परन्तु क्रोध की मात्रा में इस प्रकार की मात्रा की उद्बुद्ध होने लगती है कि अकारण भी किसी काल में एक समय देखो, ऐसा आघात कारण बना कि क्रोध किस वार्त्ता पर आया कि भवे लंजन्म् एक वाक्य मैं स्वीकार करना चाहता था। और यह नहीं चाहते थे। उलक अग्रणी हो रहा था क्योंकि वास्तव में मैं अशुद्धता में न धृष्टता में आ गया मैंने यह जाना कि क्या हो सकता है अपने मस्तिष्क को वज्र से अकृत कर लिया। उसमें मैंने कहा कि भगवनऐसा क्या किया गया !? कि ग्रापन नमो वांचाति दुष्टा नरो ग्रतम ब्रह्मे व्यापनोति तुम दुष्ट हो। तुम मेरे आश्रम से चले जाओ मैं तुम्हारे दर्शनों का इच्छुक नहीं ऐसे शब्दों का प्रतिपादन करना पूज्यपाद गुरुदेव को शोभा नही देता था परन्तु मैं कर भी क्या सकता था भोजाई ने कहा कि भगवन आप कहाँ क्या आपने ! अपने मस्तिष्क से रक्त का पान कर लियः है, आप इस रक्त को स्वयं पान करना चाहते हैं उससे क्रोध की मात्रा शान्त होने लगी क्योंकि वहाँ वाक्य सुन्दरवत को प्राप्त होता रहता है उसी में तो जीवन होता है मैं नेत्रों के समीप आया तो नेत्रों में जल की वर्षा हो रही है, औषधियों का पान कराया जा रहा है मैं बड़ा व्याकुल हुआ कि मैं अकारण ही अपने पूज्यनीय के शरीर का वांचछनीय बनता चला गया। परन्तु मैं क्या

कर सकता था मैंने त्रिगात नाम का सोम बनाने के पश्चात पान कराया तो वह शान्त्वत् को प्राप्त हो गये। मानो देखो, क्रोध पर संयम करना मानव के लिए बहुत अनिवार्य रहता है परन्तु गुरुदेव परम्परागत ऐसी रही है कि पराग्रति उपदेष कलं ब्रह्मे अस्ति कृतानम् कि परा उपदेश बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते हैं परन्तु किया भी क्या जा सकता है मुझे भी आज किन्हीं किन्हीं वाक्यों में व्याकुल होना ही होता है क्योंकि सदैव गुरु की छत्र छाया में पनपा हूँ। और मुझे पूज्यनीय का अब भी ऐसा प्रतीत होता रहता है कि जैसे मैं उनकी लोरियों में एक परम उपदेश को पान कर रहा हूँ। रहा यह जगत कि क्या कह रहा है मुझे इस जगत का कदापि भी संकोच नही होता और पूज्यनीय गुरुदेव का हृदय में इतनी शुद्धता है कि उनका वर्णन भी नही कर पाता क्योंकि ऐसा आश्चर्यजनक जो दृश्य है मैं संसार में दृष्टिपात करता रहता हूँ। यह आज से नही परम्परा से अभ्यास रहा है मैंने भी कुछ काल में अभ्यास किया, उसमें संशय भी बनता रहा परन्तु यह संशय किस ज्ञान से किस ब्रह्मवेत्ताओं से यह सब सान्त्वना को प्राप्त होता रहा है। उसमें न तो मुझे किसी प्रकार का संशय हो ही पाता है और न आगे होने की सम्भावना रहती है क्योंकि सदैव समय पर प्रेरणावत् करता रहता हूँ। परन्तु इस वार्त्ता से मैं बहुत ही दुखी होता चला जा रहा हूँ। इसका एक ही उपाय मैंने वर्णन किया था कि मेरी भोजाई का कर्तव्य सदैव गो घृत का पान कराना गो दुग्ध का पान कराना। संसार में जितना भी क्रोध आता है वह जानकारी के कारण अधिक आया करता है। क्योंकि एक मानव जिसको जानता नही है, उससे मानव को क्रोध भी क्या आता है क्योंकि उसकी प्रवृत्तियों को यह जानता ही नही हैं। जिसकी मानो प्रवृत्तियों को जानने लगता है उसी को क्रोध की मात्रा उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। रहा यह वाक्य कि संसार में हो क्या रहा है क्या होने जा रहा है मैं केवल सदैव एक वाक्य यही प्रगट करना चाहता हूँ कि मानव के हृदय में या गृह अकृतों के हृदयों में होता रहता है तो मानव को उससे कदापि संकुचित्त नही होना चाहिए क्योंकि वह तो सदैव जो मानव जिससे प्रीति करता चला आया है यह परम्परा का वाक्य है उसके ऊपर नाना प्रकार के वांछनीय शब्दों का आक्रमण होता रहता है उन शब्दों से यह

मानव प्रभावित नही होता वह मानव उस काल में तो प्रभावित होता यदि उस आक्रमण को प्रायः मानव करने लगता है तब तो यह कई गुणा पापी बन जाता है परन्तु जब उन शब्दों का उस मानव के ऊपर इतना वांछनीय शब्दम् और उस पर इतना मर्दन है, इतना उस पर संयम है मानो देखो, यह जगत स्वयं पापी ही बनता रहता है इससे संकुचित्त मुझे नही आ पाता परन्तु कोई भी अशुद्ध वाक्यों में प्रतिपादन आ जाएं मैंने आज से पूर्वक काल में यह कहा है कि यह समाज आज तो कोई आक्रमण कहीं हो रहा है परन्तु यहाँ जितने भी ऐसे पुरूष आए हैं सदा से ही आक्रमण होते चले जाने वाला है मैं इस वाक्य की पुनःरूक्ति नही देना चाहता परन्तु केवल एक वाक्य प्रगट करना चाहता हूँ कि मेरी यह आकाशवाणी मृत मण्डल में जा रही है परन्तु मेरी भोजाई का पुत्री का सभी का यह कर्तव्य है कि क्रोध के आने का कोई मुख्य कारण नही बनना चाहिए। एक वाक्य से यह सदैव दुखित होते चले आए हैं वह मानव देखो, इनके हृदय में परम्परा एक रचना है कोई भी मानव मन का इतना संकुचित्त बन जाता है। दूसरों की पुत्रियों पर आक्रमण किया जाता है मैंने सदैव किए हैं मानो देखो, उसको कितने सुन्दर रूपों से इनकी सान्त्वना रहती है वास्तव में जहाँ यह इतने क्रोधित होते रहते है वहाँ कितने त्रुटियों पर कदापि भी इनका विचार ही नही हो पाता। क्यों नही हो पाता क्योंकि अन्तःकरण में न तो वह संस्कार है इोर उ उसका विचार आता है परन्तु क्रोध के संस्कार तो परम्परा से रहे हैं इसीलिए क्रोध से संस्कार तो परम्परा से रहे हैं। इसीलिए क्रोध की मात्रा उत्पन्न होना इनके लिए स्वाभाविक है परन्तु जहाँ यह वाक्य है कि एक मानव है परन्तु वह दूसरों की कन्या पर आक्रमण करना चाहता है, चाहता रहता है परन्तु उनका प्रभाव उसका कृत उसका चिन्तन कदापि नही हो पाता मूल कारण उसका यह है क्योंकि उसके अन्तःकरण में उसके संस्कार देखो, करोड़ो जन्मों को भी संस्कार ऐसा नही है वह उद्बुद्ध हो सकता है मानव के समीप आ सकता है परन्तु जहाँ संस्कार उत्पन्न होते ही नही वहाँ ऐसा आना भी कोई स्वाभाविक नही हो पाता। परन्तु इसमें मेरा हृदय सदैव प्रसन्न रहता है रहा यह वाक्य कि मैंने सदैव धृष्टता की है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कितनी सान्त्वना दे करके कितना उपवास कराया

ओषधियों का पान कराया, पुत्री को नाना शिक्षा देकर के मुझे आक्रमणों से सान्त्वना दी है मैं उसका कितना कृतज्ञ रहता हूँ। मैं कितना आभारी बना रहा हूँ। उस कार्य में परन्तु सदैव यह जानता रहता हूँ कि ऐसे ऐसे कार्य मानव के समीप प्रायः आते रहते हैं अहा मैं सदैव धृष्टता में रहा हूँ। आज यदि मैं स्थूल शरीर में परिवर्तन हो जाऊं तो हो सकता है कि मेरा वह संस्कार उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक हो जाता है परन्तु उससे मुझे कोई संकुचित्तता नही हो पाता इसीलिए मैं आज यह एक वाक्य उच्चारण करना अवश्य चाहता हूँ कि एक सदैव मेरे पूज्यनीय गुरुदेव को क्रोध की मात्रा इतनी नही आनी चाहिए क्योंकि अनानायास का जो क्रोध होता है अशुद्धवत् वाक्य उच्चारण करना, दूसरो से श्रवण करना यह बुद्धिमता का कार्य नही होता परन्तु इनको बुद्धि कौन लाए वाक्य उत्पन्न है तो क्योंकि अकृतों में सम्भवनियों में किसी के वाक्य को कदापि स्वीकार नही किया। सदैव अपने विचारों में स्वतन्त्र रहे हैं। आज भी स्वतः स्वतन्त्रता में दृष्टिपात करता रहता हूँ। परन्तु परम्परा से स्वतन्त्र रहे हैं एक समय महर्षि भारद्वाज ने ऐसा कहा था कि भगवन! आपकी पुत्री ने मेरी वह भगों में नाना प्रकार का आक्रमण करके रक्त और मेरी वह पुत्री समाप्त हो गई मैं भी आपकी पुत्री को नष्ट करना चाहता हूँ। उन्होंने भारद्वाज से कहा कि मैं इस वाक्य को कदापि स्वीकार नही करूंगा। क्योंकि मेरी पुत्री में किसी प्रकार का दोष नही हैं यदि मेरी पुत्री में किसी प्रकार का दोष हो तो वास्तव में उसे मैं अपने भुजों से नष्ट कर सकता हूँ परन्तु ऐसा नही होगा कि तुम्हारी पुत्री स्वयं दोषी हो और पुत्री पर अनायास ही आक्रमण हो। उससे जो कुछ हुआ वह यथार्थ हुआ तुम में इतना बल नही है कि तुम मेरी पुत्री को इस प्रकार नष्ट कर सके क्योंकि यदि तुममें इतना बल उत्पन्न हुआ होता तो तुम्हारी पुत्री तुम्हारे गृह में उत्पन्न होने वाली इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त नही हो सकती थी महर्षि भारद्वाज के गोत्र में इस प्रकार का महान क्रान्ति आई महर्षि भारद्वाज के मस्तिष्क में एक महान क्रान्ति उत्पन्न हो गई। उस समय जब वह क्रान्ति उत्पन्न हुई तो रात्रि काल में ही रात्रि काल में ही पूज्यनीय गुरुदेव के आँगन में से ही उस पुत्री को अपने आँगन में धारण कर लिया और उसे धारण करने के पश्चात जब तक निद्रा से जागरूक हुए और कहा अरे, भारद्वाज !

तुझमें इतना बल नही है या तो उस कन्या को त्याग दीजिए अन्यथा उस कन्या के अपराध से तेरा मस्तिष्क फट जाएगा। जब यह वाक्य आया तो महर्षि भारद्वाज ने कहा कि मेरा मस्तिष्क ही नही फटेगा तुम्हारा मस्तिष्क तो फटने वाला है मैने अतितम् ब्रह्मे व्यापनोति कायाः मेरे पूज्यनीय गुरुदेव ने क्रोध की मात्रा से जो वाक्य उच्चारण किया उसमें भारद्वाज के मस्तिष्क में एक पीड़ा हो गई और पीड़ा होने के पश्चात कन्या को त्यागना पड़ा। त्याग देने के पश्चात महर्षि भारद्वाज ने कहा कि कैसे हो सकता है कि मेरा सुकृत नष्ट हो जाएं उन्होंने कहा था तुम्हारा सुकृत उस समय नष्ट हो गया था जिस समय मानो गर्भ से तुम्हारी कन्या का जन्म हुआ है वह महाराज वृष्ट की पुत्री थी परन्तु वरतेन्तु ब्रह्मचारी से उसने मोह कर लिया था उसका भयंकर परिणाम यह हुआ कि कन्या को लाने के पश्चात तुम्हारी पुत्री भी इसी प्रकार की दोषी बनी है तुम अपनी पत्नी को दोषी क्यों नही उत्पन्न कर रहे हो। महर्षि भारद्वाज को इसका इतना ज्ञान नही था और अब कर भी क्या कर सकते थे मेरे हृदय में उस काल में ऐसी क्रान्ति उत्पन्न हुई कि क्यों न महर्षि भारद्वाज को नष्ट कर दिया जाएं परन्तु उस समय पूज्यनीय गुरुदेव ने कहा कि कदापि भी नहीं महर्षि भारद्वाज तपस्वी हैं महान हैं इनको इसका परिणाम स्वयं प्राप्त हो जाएगा। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः है कि अपने विचारों में हर प्रकार के स्वतन्त्र रहे हैं परन्तु इनकी स्वतन्त्रता में अन्तर्द्वन्द्व तो उस काल में आ सकता है क्योंकि मानव के तीन कारण होते हैं यदि या तो कोई मानव कामी होता है और उकसी स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है यदि कोई मानव अकृत होता है उस मानव में किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व आ सकता है परन्तु इनमें कोई वाक्य ऐसा नही है केवल क्रोध की मात्रा से क्रोध में मानव सदैव स्वतन्त्र रहता है क्यों क्रोध में कोई भी वाक्य उच्चारण किया जाता है इसमें वह स्वतन्त्र है और उसके ऊपर टिप्पणी करने में भी स्वतन्त्र हैं और उसके ऊपर सान्त्वना देने में भी सदैव स्वतन्त्र रहता है।

परन्तु देखो, जब महर्षि भारद्वाज ने कन्या को त्याग दिया तो कन्या ने देखो, कहा कि दुष्ट हे भारद्वाज तुझे लज्ञा नही आती। तूने अपनी कन्या से विचार विमर्श नही ! किया विचार विनिमय करता तो तो तू आज तुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की गोद में से

अपने अकृतों में धारणा नही कर सकता था आज तू पाप से संसार को विजय करना चाहता है परन्तुपाप से यह जगत कदापि विजय नही होता विजय तो महानता से हुआ करता है आज तुझे यह प्रतीत है जब इस सम्बन्ध में तुम मेरे से शास्त्रार्थ करोगे या ब्रह्मवेत्ता बन कर आओ, मेरे समीप उस समय मैं स्वयं तुम्हारे आँगन को स्वीकार कर जाऊंगी यदि आपको अपनाना है तो तेरे से मेरा एक ही वाक्य है कि किसी काल में महान ऋषियों की एक महान सभा होनी चाहिए और उसमें मेरा और आपका शास्त्रार्थ होना चाहिए जब शास्त्रार्थ हो जाएगा उस समय मैं आपके स्वयं स्वामीतव को प्राप्त हो जाऊंगी परन्तु यह वाक्य होने वाला नही था जमदग्नि महर्षि के आश्रम में जब सभा हुई तो महर्षि भारद्वाज परस्त हो गएं। मानो जब महर्षि भारद्वाज निःशब्द हो गएं तो कन्या उसके कन्या उसके मस्तिष्क पर वज्र का आक्रमण करने के पश्चात अपने आश्रम में प्रविष्ट हो गई। बुद्धिमानों का ऐसा समाज नही होता था वहाँ केवल प्रतिभा मे जो पाप, का शास्त्रार्थ होता वह भी मानव को नष्ट करता रहता है महर्षि जमदग्नि ने भारद्वाज से एक वाक्य कहा था कि सदैव तुम्हारे मन में एक ग्लानि होने के कारण तुम एक कन्या से परास्त हो गएं हो। यह हमारी सभा में पहला अवसर है इस प्रकार का। मैं भी उस सभा में प्रविष्ट हुआ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे भी उस सभा में प्रविष्ट किया क्योंकि किसी प्रकार का ऐसा वाक्य होने लगे परन्तु इतनी स्वतन्त्रता रही कि कन्या पर कौन आक्रमण कर सकता था बुद्धिमानों का समाज था भारद्वाज के मन मे इस प्रकार की ग्लानि रही परम्परा से।

अहामुझे ऐसा सौभाग्य सदैव प्राप् !त होत रहा है मैं हर्षित होता रहता हूँ। परन्तु एक वार्त्ता का मुझे कितना बड़ा दुख होता रहता है उस दशा में सदैव व्याकुल रहा हूँ। परन्तु यह क्यों हैं वह असीलिए है क्यों क्रोध की मात्रा अधिक होने के कारण। क्रोध की मात्रा का मैंने एक ही उपाय निर्धारित किया है कि जल कृत कराके पान करा, गऊ दुग्ध का पान कराना, गऊ घृत का पान कराना यह मेरे पूज्यनीय गुरुदेव का सदैव परम्परा से औषध रहा है जिससे इनका क्रोध शान्त हो सकता है परन्तु अनानास भी क्रोध नही आता किसी वाक्य पर हृदय में ऐसी प्रतिष्ठा हो जाती है और वह वाक्य इनके समीप

कोई नवीन वाक्य नही है, एक ही चटाई को ले करके वह चल देते थे तो हम आश्चर्य करते थे कि कितना ज्ञान है परन्तु क्रोध के कारण किना अज्ञान इनके समीप आ जाता है पुत्री से एक समय इस प्रकार का विवदा हुआ और विवाद किस वाक्य पर था कि दोनों का एक विचार विनिमय चल रहा था कि ब्रह्म क्या है परन्तु विचार चलते चलते इस प्रकार का विवाद बढ़ा कि अन्त में नेति पर आ गएं और नेति पर आ जाने के पश्चात कोई ऐसा वाक्य आया कि पुत्री ने कहा कि प्रभु यदि मेरा सुकृत है यदि आप !
परी चला जाएं तो उसका क्या कारण होगा जब ऐसा वाक्य आया तो उन्होंने कहाकि हे पुत्री सुकृत देना कोई आश्चर्य नही होता सुकृत को मैं ग्रहण कर सकता हूँ तुम्हारे सुकृत को मैंने सदैव प्रबल किया है रहा यह वाक्य कि हमारा सुकृत को अपने में हनन कर लूं यह मुझे शोभा नही देता इस पर पुत्री ने कहा कि प्रभु ईश्वरीय सृष्टि में इसमें !
क्या पापहै तार्किकता से कोई पाप नही अन्त मे यह रहा कि मनों की माला ले करके उन्होंने आक्रमण किया और कहा कि तुम अपने सुकृत को अपने सिर पर अकृत कर लो मैं यहाँ से चला। क्रोध की मात्रा इतनी आ गई, पुत्री स्वयं व्याकुल होने लगी और कहा प्रभुमैंने केवल तर्क के नाते और ज् !ञान के नाते आपसे प्रश्न किया था, मेरा यह वाक्य नही। मेरा जो सुकृत उसका अभिप्राय यह नही है मानो मेरा जो पुण्य है उसे आप क्रोध की मात्रा से नष्ट करना चाहते हैं परन्तु एक सूक्ष्म सा आसन था उसे ले करके देखो, चार योजन की दूरी पर एक कृत आसन था उस आसन पर जा विराजे। अब किसको ऐस साहस था जो उसको जाकर लाजा। मैंने स्वय ही कहा कि हे पुत्री हम दोनों ही चलें। दोनो गएं चरणों की वन्दना करने के पश्चात आश्रम में प्रविष्ट कराया। एक वाक्य नही नाना वाक्य इस प्रकार के परम्परा से प्रगट करता रहा हूँ। यही मूल कारण है कि उसके संस्कार आज भी विद्यमान हैं मैं एक वाक्य यह उच्चारण करना चाहता हूँ। घृणा से तो मैं होने नही देता जिससे इनकी परम्परा या प्रतिष्ठा में किसी प्रकार की हानि हो जाएं। परन्तु रही यह वार्त्ता की संसार मं जहाँ प्रायः ऐसा होता रहता है आज मैं देखो, एक वाक्य यह अवश्य उच्चारण करना चाहता रहता हूँ। कि ऐसे प्राणियों को कलियुग के प्राणियों को अपने आँगन में धारण करके उन्हें शिक्षा देनी

चाहिए कि वह अपने मुखारबिन्दु ऐसे अशुद्ध शब्दों का प्रतिपादन करना यह कोई शोभा नही देता परन्तु कोई नही गुरुदेव तो स्वतन्त्रता में परणित रहते हैं जिनको अतना ज्ञान नही हैं, जिनको इतना प्रध नही हैं उनको अपने आँगन में धारण करके और यह शिक्षा देनी चाहिए। कि तुम्हें इन शब्दों का प्रतिपादक करना कोई शोभा नही देता। परन्तु यह हमारा ग्राह मानो देखो, कई प्रकार की हानि होती है परन्तु श्रेय केवल किसी को नही होता यह सब परमपिता परमात्मा को प्राप्त होता रहता है।

अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है कि जहाँ विवाद की मात्रा है परन्तु अनन्तःकरण में तो विवाद होता नही और बाह्य इतना विवद उत्पन्न नही होता इसमें मानव को सान्त्वना देना हमारा सभी का कर्तव्य है क्योंकि आपति काल में सहायक होना भी मानव का पुण्यवर्धक होता है मुझे कोई आवश्यकता नही थी इन वाक्यों को उच्चारण करने की परन्तु मैंने कुछ सूक्ष्म से बहुत से आंकड़े प्रस्तुत किए हैं मुझे समय मिलगा तो मैं पुनः इनसे और भी साहसिक की चचा। किसी काल में प्रगट करूंगा। अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य मेरे प्यारे महानन्द जी ने आज बड़ी ही पोथी का वर्णन किया ! इन वाक्यों को किए हुए। इन वाक्यों को आज !है परन्तु बहुत समय हो गया बेटा उच्चारण करने की कोई आवश्यकता तो थी ही नही। परन्तु तुम यह धृष्टता परम्परा से करते चले आए हो कोई वाक् नहीसंसार में यह प्रायः रहा है कि शुद्ध सा अमृत का पान करना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार रहा है और उसमें सदैव हम उपदेश पान करते रहे हैं जीवन हमारा सदैव परम्परागतों से सुगठित रहा है रहा यह वाक्य कि समगतः नरश्यताई तथई गचछम् नया वस्तनम् वेदान्ति वर्णनम् दर्शन यह कहता है कि बेटा ! कि संसार में जो भी जन्म लेता है उसमें किसी न किसी प्रकार का एक न एक अवगुण अवश्य होता है। परन्तु परा उपदेशक मानो इसका मन्थन बहुत कुछ किया है अब इन वाक्यों को विराम देनो हमें भी शोभा दे रहा है।

९ 06 03 1970 एकादशी व शिवरात्रि का वैज्ञानिक स्वरूप

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद

मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। आज हम उस महामना देव की महिमा का गुणगान गाते चले जा रहे थे, जिसकी चेतना से यह सर्वस्व जगत चेतनित हो रहा है। जितना भी चैतन्यवाद हमें प्रतीत होता है वह किसी चेतना के आधार पर स्थित है। क्योंकि ब्रह्म की चेतना ही मानव को चेतनित करती रहती है, अन्यथा शून्यवत रहता है। तो मेरे प्यारेआज हम अपने प्यारे प्रभु !ऋषिवर ! का गुणगान गाते चले जाएं, जो हमारे जीवन का सदैव साथी बना रहता है। उसका आनन्दमयी जीवन है उसे अपनाते हुए हम इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं।

आज का हमारे वेद पाठ में, सुन्दर सुन्दर याचनाएं उस महान प्रभु की महिमा का विगुल कृतिका में, हम रमण करते चले जाएं। आज का हमारा वेदमन्त्र हमें उस ब्रह्म के लिए, ब्रह्म का याचक बनाने के लिए, प्रेरित कर रहा था। एक नहीं नाना प्रकार के विवरण आते रहते हैं। हमारे यहां जहां ओर चर्चा आती चली आ रही थी वहां ब्रह्म के अनुसार भी, कुछ विवेचनाएं अथवा कुछ जीवन की कृतिभा का विवरण भी आता चला आ रहा था मेरे प्यारेमहानन्द जी सदैव यह चाहते रहते हैं !, कि मेरे अनुकूल ही कोई चर्चा होनी चाहिए। इनका एक विषय रहता है, इनके विचारों की एक धारा है, जो मानव को भी मुग्ध बना देती है। परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र उस महान् शिव अग्रतम् संकलन में रमण करने वाला है उसका उच्चारण कर रहा है। आज हम उस महान शिव की शरण में ले जाना चाहते हैं जो संकल्पों में विराजमान रहता है, जिसका वह मुनिवरोंशिव ही संकल्प है !, क्योंकि वह जो शिवम् सुन्दरम् वह जो शिव है वह सुन्दर है, क्योंकि वह जटामांसी बन करके रहता है।

मेरे प्यारे! महानन्द जी ने कई काल में मुझे प्रकट कराते हुए कहा है कि यह जो गंगा वृत्तं गम्ये प्रभे कृतानम् यह जो गंगा है यह महाराजा शिव की जटाओं में गमन करने वाली है। परन्तु जब मुझे यह वाक्य स्मरण आता है, इन्होंने कई काल में प्रगट कराते हुए कहा, कि हमारे यहाँ जो शिव है, ऐसा कहा जाता है कि वह महाराजा सुखमञ्जस जो राजा सगर के पुत्र थे जब महात्मा कपिल जी ने, राजा सगर के साठ हजार पुत्रों !

को मृत्यु के मुखारविन्द में अर्पित कर दिया तो महाराजा सुखमञ्जस महर्षि कपिल मुनि के आश्रम में प्रविष्ट हुए और महर्षि कपिल जी से कहा कि महाराज मेरे इस ! परिवार का कैसे उत्थान होगा? क्योंकि यह मेरे लिए एक बड़ा कलंक है और मैं कलंकित हो गया हूँ कि मेरे विधाता साठ हजार मृत्यु के मुखारविन्द में चले गये। महाराज कपिल जी ने कहा हे राजा तुम बड़े नम्र और उदार हो। एक !हे राजपुत्र ! कार्य करो ब्रह्मे कृतकं प्‌्रभाः इन्होंने गंगा को लाने का प्रयास किया। यहाँ तक कुछ समयाः ब्रह्मे अच्चुतम् तुम्हारी ही परम्परा कुछ काल के पश्चात् महाराजा भागीरथ के द्वारा गंगा का अवतरण होगा। जब महात्मा कपिल जी ने ऐसा कहा तो महाराजा सुखमञ्जन अपने राज्यस्थल को आ गये। महाराजा सगर ने कहा कि कहो सुखमञ्जस जी क्या रहा? उन्होंने कहा कि प्रभु वह तो मृत्यु के मुखारविन्द में प्रविष्ट हो गएं हैं। !

!हां महाराज !कपिल जी ने ऐसा ही किया है !उन्होंने कहा अच्छा

तो मुनिवरों कुछ जाता है कि महात्माओं की अनुपमता विचारणीय होती है। कुछ ! उसी प्रणाल !समय बेटाी में महाराजा भागीरथ हुए। जो बेटादेखो !, आकाश से, ब्रह्मपुरी से गंगा को ले आये। परन्तु जब गंगा को लाने का प्रयास किया गया, तो उस गंगा के प्रवाह को कौन शान्त कर सकता था। तो कहा जाता है कि महाराजा शिव ! के द्वारा, महाराजा सगर प्रविष्ट हो गएं और ब्रह्मे कृत्रं ब्रह्मे सगरथ च प्रमाणे अस्तेः महाराजा सगर ने भी यही याचना की। इसके पश्चात् महात्मा भागीरथ जब इनके समीप पहुंचे इन्होंने कहा कि प्रभु गंगा के प्रवाह को कौन शान्त कर सकता है। कहते हैं ! महाराजा शिव ने अपने संकल्प के द्वारा अपनी जटाओं में अर्पित कर लिया। जटाओं में अर्पित करने के पश्चात् मानो गौमुख के द्वारा इसी गंगा का अवतरण हुआ। मुनिवरों ! महानन्द जी ने मुझे यह लोककथा वर्णन कराई। परन्तु !ऐसा हमारे यहां मेरे प्यारे

इस सम्बन्ध में तो मेरा हृदय बड़ा ही गद् गद् होता रहा है।

आज भी मुझे वह समय प्रायः प्राप्त होता रहता है कि वास्तव में ऐसा ही स्वीकार किया जाएं। परन्तु हमारे यहाँ ऐसा माना गया है कि शिव के नाना पर्यायवाची शब्द होते हैं। शिव नाम परमात्मा का भी है और शिव नाम आत्मा को भी कहा जाता है। शिव नाम

की कुछ औषधियाँ भी होती हैं परन्तु यहाँ शिव नाम पर्वतों का उच्चारण करने में कोई किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं होगा। क्योंकि शिव नाम पर्वतों का भी कहा गया है। यह जो गंगा का अवतरण है, यह केवल देखो, पर्वतों से हुई मानवीय कल्याण के लिए पृथ्वी के आसन को आकृत करती हुई और सुखद देती हुई, समाज को अपनी प्रतिभा से बेटा यह अपने मार्ग से चली आ रही है। इसी प्रकार ऐसा कहा जाता है कि ! शिव हम पर्वतों को कहते हैं !महाराजा, क्योंकि गौमुखम् ब्रह्मे क्योंकि शिव वह पर्वत का जो ऊपरी भाग होता है उसको जटावासी कहते हैं। जटाओं में रहने वाला मुनिवरों ! देखो, ऊपरी भाग से जो आ रहा है उसी को हमारे यहाँ जटावासी शिव कहा जाता है। परन्तु जहाँ हम यह स्वीकार करें कि शिवं ब्रह्म रात्राणि गच्छन्त रूद्रोः मेरे प्यारे ! महानन्द जी का यह कथन है कि आज वह शिव सुन्दर रात्रि है जिसमें माता पार्वती और शिव दोनों जागरूक रहते थे। उन्होंने अपनी साधना को परिपक्व किया था, उन्होंने योगाभ्यास में अपनी पारायणता को प्राप्त किया। हमारे यहाँ यह कहा जाता है इस सम्बन्ध में जो परम्परागतों से ही, माना गया है कि शिवं ब्रह्मे शिव सुन्दरम् अच्तम ब्रह्मे आक्राति लोकाः ऐसा कहा जाता है कि यह शिव मानो संकल्प को कहा जाता है। आज का जो दिवस है वह केवल गंगा अवतरण का ही नहीं है परन्तु जहाँ गंगा अवतरण का है क्योंकि आज के दिवस परमापिता परमात्मा की प्रतिभा के आधार पर सूर्य का निर्माण हुआ। सूर्य को भी हमारे यहाँ शिव कहा जाता है। उसकी नाना प्रकार की किरणें हैं वह मानो जटावासी कहलाई गई है। वह जो शिव सुन्दर है, शिव है, शिव उसे इसलिए कहते हैं परमात्मा को क्योंकि वे परमपिता परमात्मा का संकल्प है और परमात्मा का जितना भी संकल्प होता वह सर्व ब्रह्माण्ड को क्रियाशील बना रहा है। जैसे एक मानव का संकल्प होता है मानवीय संकल्प है एक माता का प्रिय पुत्र है परन्तु ऐसा ही पिता का होता है माता के प्रति एक संकल्प है एक महान शिव संकल्प है उसके मस्तिष्क में क्या यह मेरा पुत्र है परन्तु पुत्र का संकल्प ही तो उसके मस्तिष्क में रहता है और पुत्र के हृदय में यह संकल्प रहता है यह मेरी मातेश्वरी है, इसके उदर से मैंने जन्म को ग्रहण किया है। आदरणीय मातेश्वरी के गर्भ में, मैंने अपनी प्रतिभा को

प्राप्त किया है। आज मुझे इसका निरादर नहीं करना है। परन्तु इस प्रकार का संकल्प दोनों के हृदय में होता है। इसी प्रकार पति पत्नी का संकल्प होता है। उसमें भी शिव का एक संकल्प होता है। वाक्य उच्चारण करना यह है कि जितना भी यह जगत है यह सब उस प्रभु का संकल्प है, उस शिव का संकल्प है। मानो देखो, उसी संकल्प के आधार पर बेटा यह संसार की चेतना चल रही है। संसार अपनी क्रिया में क्रियाशील ! हो रहा है उसकी जो क्रिया है, मानो उसकी जो चेतनावत है उसी में महान शिव का एक संकल्प है। वह जो शिव का उज्ज्वल संकल्प होता है, वही मानो मानवीयता को पवित्र बनाने वाला है इससे मानवता का एक प्राप्त हो जाता है परन्तु मानवता में ह्रासपन नही आता इसीलिए हमारे आचार्यों ने कहा है कि मानव को संकल्प कर लेना चाहिए। परमात्मा की, माता की प्रतिभा माता का संकल्प है कि मेरा पुत्र मानो परमाणुओं का समूह विराजमान है, आत्मा का ही तो संकल्प है बेटा यह शरीर परमाणुओं का बना ! हुआ मानो यह ज्यों का त्यों पिण्ड के रूप में रहता है। जितना भी पिण्डवाद है उसमें प्रभु उस शिवका एक उज्ज्वल संकल्प होता है बेटा !

मेरे प्यारे वह जो संकल्प होता है उसी संकल्प के आधार पर हमें अपने !ऋषिवर ! जीवन, अपनी मानवीयता को विचार विनिमय कर लेना चाहिए। एक मेरी प्यारी माता है, परन्तु उस माता के प्रति एक अपने प्रारब्ध के ऊपर उसे विश्वास होता है, उसमें संकल्प आ जाता है कि वो प्रभु ही रचता है। वह जो संकल्पवाद है, वही मानव को स्थिर करने वाला है, वही जीवन का एक कृत घोष कहलाया गया है। हमारे यहाँ शिव के समय मानो यह जो एकादशी एकदश ब्रह्मे शिवं रात्राणि गच्छन्तम् ऐसी मेरे प्यारे ! महानन्द जी प्रेरणा दे रहे हैं। आज मेरे प्यारे महानन्द जी भी शिव के ऊपर कुछ ! सूक्ष्म सा अपना प्रकाश देंगे। मैं तो केवल इतना वाक्य उच्चारण करने के लिए तत्पर रहता हूँ कि यह जो प्रभु का महान संकल्प शक्ति के आधार पर यह जो मानो जगत स्थिर हो रहा है। एक पिता के हृदय में यह कल्पना है यह संकल्प है कि यह मेरी पुत्री है परन्तु पुत्री के प्रति उसे कितना संकल्प है। इसी प्रकार मुनिवरों शिव ! नाम उस महान प्रभु का है, और प्रभु का ही जो संकल्प है कि यह जगत अपना कार्य

कर रहा है। एकादशो जो एकादशम् ब्रह्मे मानो एकादशो हमारी इन्द्रियाँ हैं यह आत्मा का विशेषण संकल्प कहलाया गया है क्या मेरी इस यज्ञशाला में मानो यह दस पात्र हैं और ग्यारहवां मन होता है मानो पात्रों में आहुति प्रदान करने वाला जैसा हमारी योग की परम्परा में महाराजा शिव और पार्वती दोनों के शब्दार्थों में ऐसा विवरण प्रायः आता रहा है। मुनिवरोंदेखो !, जैसे हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि ब्रह्मे आत्म ब्रह्मे एकादशो का अभिप्राय यह है प्रायः हमारे यहाँ एकादशी व्रत को प्रायः बहुत उज्ज्वल माना जाता है। आज से नहीं परम्परा से ही पवित्र माना गया है। हम भी एकादशो व्रत को सदैव से धारण करते चले आए हैं और भी ऋषि मुनियों का ऐसा सिद्धान्त रहा है। परन्तु एकादशो का अभिप्राय क्या है? अन्नवता ब्रह्मे त्याग्य ब्रह्मे नैत्यं सर्व ब्रहे अस्ताम् ऐसा कहते हैं आचार्य जन कि अन्न को त्यागना ही हमारे लिए एकादशो नहीं। अन्न को त्यागना भी वैज्ञानिक रूपों से परणित और सम्बन्धित किया गया है। हमारे जीवन का जो सम्बध है वह मानो उस महान प्रकृतिवाद से रहता है, अन्न से रहता है। अन्नवाद ब्रहे अन्न में कई प्रकार के दोष अवृत दोष होते हैं। क्योंकि एकादशी मानो यह जो सूर्य की गति के आधार पर हमारी एकादशी बनती है, जैसे मानो द्वादश बनती है, त्रयोदश बनती है, चतुर्दश बनती है, पञ्चम् बनती है, षटं बनती है, सप्तमी बनती है, अष्टमी बनती है, नवमे बनती है और दशमी बनती है। इसी प्रकार एकादशी का सबसे प्रथम ऐसा महत्व क्यों माना है? वास्तव में जितनी भी तिथियाँ होती हैं उन सबकी जो गति होती है वह सूर्य की गति के आधार पर होती है। जिस समय द्वादश होती है द्वादश का जो प्रभाव है। वह एक महत्वपूर्ण माना गया है। द्वादशी में मानों कृतिका और भानु दोनों नक्षत्रों का दोनो नक्षत्रों की प्रतिभा रहती है। मुनिवरोंदेखो !, वह जो प्रतिभा है, वह मानव के पिण्ड में भी उसी प्रकार गति करती है। अहा माता के वह जो दिवस होता है वह बड़ा सुन्दर और महान होता है। उसमें गर्भा प्रभेव अचतम् लोकां ब्रह्मे अस्ति इस विज्ञान में मैं अधिक नहीं जाना चाहता हूँ केवल तुम्हें यह विज्ञान का वाक्य प्रकट करा रहा हूँ। अष्टमी में भी दोषारोपणों की वास्तव में प्रकृति में कोई दोषण हो जाता हैं वह चन्द्रमा की गति के आधार पर, क्योंकि पुष्य और जेष्ठाय नक्षत्र दोनों की प्रतिभा इसमें

प्रतिष्ठित हो जाती है। इसलिए उनका अच्छी प्रकार स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। परन्तु आज का वह जो एकादशो आज मैं सभी तिथियों के सम्बन्ध में अपना प्रकाश नहीं देना चाहता। वेद के ऊपर विचार विनिमय करना हमारे लिए मानो देखो, उतना समय आज्ञा नही दे रहा है वाक् केवल यह है कि एकादशी जो शिवं व्रतं ब्रह्मे वास्तव में देखो, इस एकादशी के दिवस मानव शिव का संकल्प करता है और संकल्प क्या करता है कि मैं संसार में त्रुटियों को त्यागने का प्रयास कर रहा हूँ। अपने जीवन को मानो एक महान सूक्ष्म वेला में लेना चाहता हूँ। बाह्य जीवन सूक्ष्मतम् बन जाएं और आन्तरिक जो जीवन विस्तारवादी बन जाएं। क्योंकि विचार मेरा विस्तार का हो और मेरे जितने दोषण हैं उनमें बहुत संकुचित्तवत् होना चाहिए। वह मेरे द्वारा सिमट जाएं इसी प्रकार मुनिवरों ! देखो, मेरे मन में एक संकल्प रहा है इस प्रकार का जब मानव का संकल्प रहता है। तो यहाँ मानव तुच्छवत को प्राप्त नहीं होता।

मेरे प्यारेएकादशो का अभिप्रायः क्या है !ऋषिवर !? एकादशी के व्रत का अभिप्राय यह है कि व्रत नाम है संकल्प का व्रत कहते हैं संकल्प को और एकादशो कहते हैं कि पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं और ग्यारहवां मन कहलाया गया है। क्योंकि यह मन ही संकल्प की प्रतिभा का एक प्रतीक माना गया है, इसमें प्रायः ऐसा कहा जाता है कि इसमें अन्न को ग्रहण नहीं करना चाहिए। और मुनिवरोंदेखो !, अन्न को क्यों नहीं ग्रहण करना चाहिए? हमारे यहाँ ऐसा कहा गया है देखो, **कृत्तिका और भानु नक्षत्र** दोनों का प्रभाव सूर्य की किरणों में होता है। सूर्य की किरणों की जो प्रतिभा है वह अन्न में जाती है क्योंकि अन्न का जो स्थूलवत है मानो वह मानो सूर्य की किरण के आधार पर ही स्थित रहता है। उसी से उसमें एक क्रीड़त गति होती है, उसी गति के आधार पर कुछ वैज्ञानिकों ने कहा है जो वैदिक वैज्ञानिक हुए हैं, परम्परागतों वाले जो वैज्ञानिक हुए हैं उन्होंने कुछ ऐसा माना है क्या वह मानो उसकी तो प्रति ब्रहा सूर्य की किरणों के आधार पर कुछ ऐसा माना है कि अन्न में किसी प्रकार का एक विषधर हो जाता है। व्रत नाम संकल्प का है और एकादशो का अभिप्रायः यह है कि हम मन, वचन और

कर्म से ही हम अपनी इन्द्रियों को संयम में बनाएं।

पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, और उनके साथ में लगा हुआ जो मन है जिसे एकादशो कहते हैं, एकायतुक यही इन्द्रियों का प्रतीक माना गया है। बिना मन के इन्द्रियों का अपना कोई भी अस्तित्व नहीं होता अस्तित्व नही होता, क्यों नही होता? क्योंकि मानव के नेत्रों की ज्योति चलती है उसमें मनीराम ही विराजमान रहते हैं। मन के आधार पर ही यदि मन नेत्रों के साथ लगा हुआ है तो नाना प्रकार की चंचलता, नाना प्रकार का उदारपन नेत्रों के समीप आता रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के साथ मन होता है। परन्तु वह जो मन की प्रतिभा है मन की जो स्थिति है वह जो मन का एक प्रतेक प्रवाह माना गया है। तो मुनिवरोंमन की वह जो चेतना है !, मन का जो विभाजनवाद है वह इन्द्रियों को ही अपना अस्तित्व दे करके बेटा इन्द्रियों को विरेक करता रहता ! है। तो विचार विनिमय केवल यह हमारा है आज के इन वाक्यों का अभिप्रायः यह है आज का दिवस इसलिए हमारे यहाँपरम शोभनीय माना गया है कि आज के दिवस शिव के संकल्प के आधार पर, सूर्य का निर्माण हुआ। क्योंकि सूर्य अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त हो गया था। आज के दिवस, चन्द्रमा की भानकेतु, चन्द्रमा की कृति कान्त अन्वेषणों में उसमें भी एक प्रतीक माना गया है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर वाक्य के उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज के ! दिवस जो एकादशी व्रतम् ब्रह्मे जिसको शिवरात्रि कहा जाता है इसको शिवः शिवरात्रि को कहते हैं क्योंकि यह सबसे प्रथम रात्रि संसार में आई। जब संसार की रचना हुई तो सबसे प्रथम रात्रि शिवरात्रि, जिसको एकादशी अकृत कहा जाता है। मेरे प्यारे ! कुछ ऐसा भी माना गया है !ऋषिवर, हम जब यह स्वीकार करते हैं कि एकादशो व्रत धारण करने से जीवन की प्रतिभा को ले करके ही बेटा जीवन में एक महानता की ! ज्योति प्रकट हो जाती है, उससे ही जीवन का एक उज्वल लक्ष्य हमारे समीप आने लगता है।

तो मेरे प्यारे आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ वाक् यह !ऋषिवर ! उच्चारण करने का अभिप्रायः है आज का वह शुभ शोभनीय एक दिवस है, रात्रि है,

जिसमें मुनिवरोंदेखो !, मानव पिंड का निर्माण हुआ। सबसे प्रथम मानव पिंड रूप में जागरूक हो गया था जागरूक हो जाने के कारण क्योंकि वह शिव का संकल्प था, परमात्मा के संकल्प के आधार पर ही मानव अपनी सम्पन्न कलाओं से परिपक्व हो गया था। उसी को हमारे यहाँ जीवन की एक स्वात धारा कहा जाता है जिसको अपनाने के पश्चात् हमारे जीवन में एक आनन्दवत उत्पन्न हो जाता है, जिसको धारण करने के पश्चात्, हमारी इन्द्रियों में एक महान संकल्प की पवित्र धारा ओत प्रोत हो जाती है।

तो मेरे प्यारेआज का यह वाक्य क्या कहा रहा है !बेटा !ऋषिवर !? हमें विचार लेना चाहिए। आज हम अपने शिव संकल्प को अपनायें क्योंकि वह संकल्प ही हमारे जीवन के साथी है। मानव एक मिथ्यावाद को अपना लेता है, अनायास ही मिथ्या उच्चारण करता है, परन्तु वह उसका शिव संकल्प नही होता, मानव का संकल्प वह होता है जिसमें मानव अपनी प्रतिभा बना लेता है, अपना संकल्प बना लेता है कि जो मैंने कहा है वह मुझे करना है मानो वह क्रियात्मक में लाना है। जब मानव का इस प्रकार का संकल्प हो जाता है तो उस मानव के जीवन में, इन्द्रियों को संयम में करने की शक्ति प्रबल हो जाती है। इन्द्रियों को संयम में करना ही उसका लक्ष्य एक हो जाता है। आज उस लक्ष्यवाद को हमें जानना है। उसी लक्ष्यवाद के आधार पर अपने मानवीय समाज को ऊँचा बनाना है।

जैसा हमारा परम्परागतों से वाक् होता रहा है। मेरे प्यारेआओ !ऋषिवर !, आज हम तुम्हें उस मार्ग पर ले जाना चाहते हैं, दो वाक्य तुम्हारे समीप प्रगट किए हैं। मानव एकादशी के व्रतों को क्या महत्व देता है एकादशी मानो शिवरात्रि जिसमें शिव का संकल्प भी होता है। शिव का संकल्प मानो देखो, उस रात्रि इस दिवस को मानो आज की रात्रि के दिवस तो मानव का निर्माण हुआ, सूर्य का निर्माण परिपक्व हो गया था इसीलिए मानवीय जाति में शोभनीय माना जाता है। आओ मेरे प्यारे एक !ऋषिवर ! वाक् तुम्हें ओर प्रगट कराते चले जाएं क्योंकि यही दिवस हमारे लिए शोभा ब्रह्मे व्यापनोति सर्वां हमारे संसार के लिए उज्ज्वल कहता रहा है संसार में प्रायः एक महान ज्योति उसमें जब ही प्रविष्ट हो जाती है जब मानव में व्यापकवाद में संकल्पवाद की

प्रतिभा होती है यह है बेटाआज का हमारा वाक् !, मैं कोई अधिक चर्चा करने नही आया हूँ। हमारे यहां शिव पर्वतों को भी कहा जाता है। शिव नाम परमात्मा का भी है। शिव नाम आत्मा को भी कहा गया है। शिव सूर्य को भी कहा गया है परन्तु यहाँ शिव की जो महिमा है वह केवल जैसा हमने अभी अभी कपिल मुनि के वाक्यों को अभी अभी हमने प्रकट कराया था सुखमञ्जस इत्यादि के आधार पर परन्तु देखो, उसमें जाना हमारे लिए शोभा नहीं देता। वाक्य केवल यह है कि यह कहा जा सकता है कि महाराजदेखो !भागीरथ इस गंगा को पर्वतों से मुनिवरों !, इस महान पृथ्वी मण्डल पर ले आये। लाने का अभिप्राय क्या था, कि यह संसार सुखद बनें, मेरा राष्ट्र सुखद बने क्योंकि वह जहाँ जहाँ शंख की ध्वनि को करते चले जाएं, जहाँ जहाँ अपनी प्रतिभा को लेते चले आये, वहीं गंगा का प्रवाह, पृथ्वी मण्डल पर आता रहा है। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है बेटा जब हमारे यहां राजा सगर की परम्पराओं में ही राजा सगर के ! साठ हजार पुत्रकहलाए गएं हैं। पुत्र क्या उनके यहाँ साठ हजार सेना का समूह रहता था, वह सब उनके पुत्र के तुल्य था। उनको अभिमान की प्रतिभा आ गई थी। उन्होंने पृथ्वी में गढ़ढे बनाएं, प्रधांगगिरि किया, निर्माण किया, नाना निर्माण करने के पश्चात् वह महाराजा सुखमञ्जस ने भी वही कार्य किया। मानो इसी प्रकार और भी राजा हुए जैसे सुखमञ्जस के पुत्र रेणुकान्त राजा हुए उन्होंने भी यही किया। रेणुकांत राजा के पुत्र शोभिन नाम के राजा हुए वह भी यही कार्य करता था। सुगनात नाम के राजा थे परन्तु वह भी यही करते थे। इसी प्रकार यह प्रायः गंगा को पर्वतों से, पृथ्वी पर लाने का नाना प्रयास करते रहे। प्रयास करने का परिणाम यह हुआ कि वह कुछ काल के पश्चात मानो सातवीं प्रणाली में महाराजा सगर जो सौनात नाम के राजा के पुत्र कहलाए जाते थे परन्तु देखो, वह उन राजाओं की परम्पराओं में ऐसा प्रायः प्रयास होता रहा अन्त में राजा सगर को उसका श्रेय प्राप्त हुआ श्रेय प्राप्त होते हुए, उन्हें गंगा को पृथ्वी पर लाने का श्रेय प्राप्त हो गया क्योंकि वह संसार को जलमय, आनन्दवत में बनाना यह राजाओं का कर्त्तव्य होता है।

तो मेरे प्यारेमैं अब इन वाक्यों को भी विराम देने जा र !ऋषिवर !हा हूँ। अब मेरे

प्यारे महानन्द जी अपने कुछ सूक्ष्म से विचार व्यक्त कर सकेंगे। समय तो इतना ! नहीं है, जो मेरे प्यारे महानन्द जी अपनी कुछ विवेचना कर सकें परन्तु चलो कुछ ! सूक्ष्म समय प्रदान किया जा रहा है।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यम रथाः यम गताः यौ शिवं मना चरयच्चतं ग्राभं देवो स्वरयी गता मानं ब्रह्मा। मेरे पूज्यनीय गुरुदेव मेरे पूज्यपाद !भद्र समाज !ऋषि मण्डल ! गुरुदेव ने यह अमूल्य समय प्रदान किया। जिस समय में मेरे पूज्यपाद गुरूदेव का प्रवाह चल रहा था विचारों का, और शिव संकल्प के सम्बन्ध में भी, इनका विचार विनिमय हो रहा था। मुझे इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं करनी है। केवल विवेचना यही करनी है एकादशो शिव संकल्प प्रव्हे आज का वह पुनीत और उज्ज्वल दिवस है जिसको हमारे यहाँ शिवरात्रि कहा जाता है। शिव रात्रि की प्रायः पूज्यनीय गुरुदेव ने सभी वार्त्ता प्रकट कर दी है। वैज्ञानिक रूप भी हमारे समक्ष नियुक्त किया है और व्यावहारिक रूप भी हमारे समक्ष नियुक्त किया है परन्तु जहाँ मैं यह उच्चारण करने जा रहा हूँ कि हमारे यहाँ शिवरात्रि कहते किसे हैं? इसको शिव रात्रि क्यों कहा जाता है? ऐसा भी हमारे यहां पर्व माना गया है, इसको शिवरात्रि क्यों कहा गया है महाराज जो शिव थे, उन्होंने राष्ट्र को अपनाया राष्ट्र को अपनाते समय उसी दिवस एकादशी का दिवस था। इसीलिए राजा ने अपने राष्ट्र में मानो देखो, एकादशी व्रत का पालन कराया था। वास्तव में यह वाक्य परम्परा से ही चला आ रहा था, परन्तु यह वाक् कोई नवीन नहीं था। राजा के लिए एक शुभ अवसर और भी प्राप्त हो गया। इसलिए मानो देखो, मानवीय समाज में हम यह वाक्य भी उच्चारण करने के लिए तत्पर रहते हैं, कि वास्तव में जो शिव संकल्प है, वही मानव का जीवन है, वही राष्ट्र का जीवन है। महाराजा शिव ने अपने राष्ट्र में संकल्प बनाया कि मेरे राष्ट्र में इतने ऊँचे विचारों वाली प्रजा होनी चाहिए, जैसे कैलाश पर्वत होता है। कैलाश पर्वत जितना विशाल है ऐसे ही मानव के विचारों में भी विशालवाद होना चाहिए। उसी विशालवाद से राष्ट्र और समाज दोनों ही उन्नत बना करते हैं। जहाँ मैं यह वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूँ क्या मानो देखो, आज की जो शिवरात्रि है वह बड़ी ही महान शोभनीय होती है, परन्तु आज का जो

मानव है वह जहाँ शिव रात्रि का व्रत धारण करता है इन्द्रियों पर संयम नहीं रह पाता है। जहाँ इन्द्रियों पर संयम नहीं रह पाता वहाँ शिवरात्रि उसके लिए और भी हानिकारक हो जाती हैं। हानिवत हो जाती है। हमें विचारना है कि वास्तव में हम शिवरात्रि को अपनाना चाहते हैं, परन्तु हम अन्न को भी त्यागना चाहते हैं, अन्न को त्यागने से पूर्व हमें यह विचारना है कि हमें अपने उदर को भी सुन्दर बनाना है। उदर में किसी प्रकार का रुग्ण नहीं होना चाहिए, विषधर नहीं होना चाहिए, जिससे मानव रुग्ण हो करके ऐसे नष्ट हो जाएं, जैसे सायंकाल का सूर्य समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार जब मुझे प्राप्त होता है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह समय प्रदान किया है। आज का समाज तो एकादशो का व्रत धारण करता है वह केवल रूढ़िवाद से करता है। रूढ़िवाद क्या है? आधुनिक काल में हमारे मस्तिष्कों में सबसे प्रथम वह विचारधारा रहती है कि मैं सनातनी न कहलाऊं, परन्तु देखो, बहुत से इस व्रत को करते हुए इसलिए लज्जित होते हैं क्या, मैं यह कार्य करूंगा, तो सनातनी बन जाऊँगा। सनातनियों के मस्तिष्क में यह विचारधारा रहती है कि यदि मैं व्रत नहीं करूंगा तो कोई मुझे आर्य व्रत कहेगा काई आर्य समाजी कहेगा। इस प्रकार की विचारधारा उनके मस्तिष्कों में प्रायः आ जता है। परन्तु देखो, जहाँ संकल्प है, अच्छाइयाँ हैं, वह संसार में मानव के लिए एक ही तुल्य मानी गई है। उसमें किसी प्रकार विवाद किसी भी काल में नहीं होता।

परन्तु जहां एकादशो, शिवरात्रि में जागरूक रहना बहुत अनिवार्य है। ऐसा भी माना गया है परन्तु क्यों माना गया है? क्या एक मानो देखो, इस दिवस में इस **कृतिका नक्षत्र** में क्योंकि जहां मानो देखो, एकदाशी आती है वहाँ सूर्य की किरणों का सम्बन्ध अधिक होने के नाते ही **कृत्तिका और बृद्ध भानु दोनों नक्षत्रों** की प्रतिभा रहती है, जो मध्यरात्रि में, उस नक्षत्र की प्रतिभा समाप्त हो जाती है। इस रात्रि में मेरी गर्भवती पुत्रियाँ हैं उनको तो प्रायः जागरूक रहना ही चाहिए, क्योंकि **कृत्तिका और वृद्धभानु** जो दोनों नक्षत्र हैं इनमें बहुत सी मेरी पुत्रियों के गर्भ में जरायु में किसी प्रकार का दोषारोपण होने की आशंका रहती है क्योंकि जो पिण्ड है वही ब्रह्माण्ड है। इसी प्रकार यह कल्पना शोधनवत की हुई है। जब हम यह विचारने लगते हैं कि वास्तव में प्रायः ऐसा होना

चाहिए तो जीवन की प्रतिभाओं में एक महानता की ज्योति जागरूक हो जाती है। तो आज का जो दिवस है वह बड़ा ही महान शोभनीय और विचारणीय सुन्दरवत् कहलाया गया है।
तो इसीलिए आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रगट करने आया हूँ, आज का समाज तो अन्न को त्यागने को व्रत स्वीकार करता है परन्तु वास्तव में सनातन और समाज में किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व नहीं होना चाहिए। यह तो सभी के लिए एक ही तुल्य होता है, जो इन्द्रियों को संयम में बनाना है, संकल्प है, विचारधारा को शोधन करना है, मानो शरीरिक विज्ञान को और इस भौतिक विज्ञान को पान करना है यह सभी के लिए उत्पन्न होता है जो आज हमारे जीवन में एक महान् और सुन्दर वाक्य कहा गया है जिससे हम यह विचारने लगते हैं कि वास्तव में हमारा जीवन, उन्हीं वाक्यों से सुगठित रहता है, जिन वाक्यों में जीवन की प्रतिभा का, एक नवीन प्रतीक होता है इससे हमें उसे अपनाने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए। यह आज का हमारा वाक्य समाप्त होने जा रहा है। मैंने अपने पूज्यनीय गुरुदेव से याचना की और यह कहा कि भगवन्शिवरात्रि के सम्बन्ध में अपना कुछ प्रकाश दीजिए। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव न !े शिवरात्रि के पर्व को बहुत ही सुन्दरवत माना है। मैं भी यह स्वीकार करता रहा हूँ कि जो शिवरात्रि है इसमें मानव को जागरूक रहना तो कोई विशेषकर तो नहीं होता परन्तु कुछ होता भी है जो वैज्ञानिक रूपों से इसका सुगठित सम्बन्ध होता है। परन्तु उसमें मानव क्रिया, कर्म और वचन सभी में एक तुल्य रहना चाहिए। जैसे रात्रि में अंधकार होता है, तो अन्धकार सामान्य होता है, प्रकाश होता है तो प्रकाश भी सामान्य होता है। इसी प्रकार जो शिव का संकल्प है अहा मानव इसी दिवस अहा जागरूक रहने का उन्होंने प्रयास किया, क्योंकि यदि वह जागरूक नहीं रहते, तो जीवन की प्रतिभा में प्रकाश नहीं हो सकता था। अब मैं अपने पूज्य गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा। मुझे केवल इतना ही वाक्य उच्चारण करना था। मेरे वाक्यों का प्रायः यह अभिप्राय रहा है कि मानव को रूढ़िवाद में नहीं जाना चाहिए, केवल एकवाद में रमण करते हुए व्रत को धारण करते चले जाओ। व्रत नाम संकल्प का है। व्रत नाम अच्छाइयों को लाना है, दुरितानि

जो है देखो, जो जितने भी दुर्गुण, जितने भी दुर्व्यवहार हैं उनको त्यागना है। यह आज का वाक् मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा अन्न को त्यागना ही कोई व्रत नही कहलाता। केवल क्षुधा को पीड़ित बनाना ही व्रत नहीं कहलाया जाता। व्रत नाम तो संकल्प में रहता है, व्रत तो देखो, मुनष्यों के मस्तिष्कों में, मन में, इन्द्रियों में सब में विराजमान रहता है। उसी संकल्प के आधार पर जीवन एक महानवत को प्राप्त हो जाता है। तो आज का अपना यह वाक्य अब समाप्त। मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा। मैंने कुछ सूक्ष्म चर्चायें की हैं। मैं कोई विशेष चर्चा करने नहीं आया हूँ। पूज्यपाद गरुदेवः मेरे प्यारेमहानन्द जी ने !आज मेरे प्यारे !ऋृषिवर !, शिव के ऊपर अपनी एक विचारधारा प्रकट की कुछ सूक्ष्म से शब्दों में इन्होंने विचार व्यक्त किया कि मानव को रूढ़िवाद में नही जाना क्योंकि रूढ़िवाद मानव को ऐसे गढ़ेले में ले जाता है, ऐसे मार्ग पर ले जाता है, जहाँ उसे प्रकाश नहीं प्राप्त होता। अन्धकार छा जाता है तो इसलिए मेरे प्यारेमहानन्द जी ने बहुत सुन्दर शब्दों में अपने ! विचार व्यक्त किये। क्षुधा से क्षुधित होना व्रत नहीं है। व्रत नाम अपनी इन्द्रियों को विचारशील बनाना है, इन्द्रियों के ऊपर अनुसन्धान करना है यह आज के शिव के व्रत का अभिप्राय है। आज का हमारा वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। दिनांक 1970 03 06, जे 10 जोरबाग रोड पर दिया हुआ प्रवचन।

१० 22 03 1970 पुष्प 14 आस्तिकता का दिग्दर्शन

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, अब जब मानव जिज्ञासु बनकर अपने प्यारे प्रभु के द्वार पर जाता है तो उसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे ममतामयी माता की छाया में विराजमान है। जैसे क्षुधा से पीड़ित बालक माता की लोरियों में अपने जीवन को पनपाने लगता है और अपने में सौभाग्य को स्वीकार करने लगता है उसी प्रकार हम उस ममतामयी माता के द्वार पर जाना चाहते हैं जहाँ अमृत को पान करते हुए अमरावती को प्राप्त हो जाते हैं। हे ममतामयी मां तू वास्तव में हमें अपने हृदय अगम् में धारण ! करती चल। हमारा पुत्र युवा होने पर कुटुम्ब को प्राप्त हो जाता है परन्तु वह जो

ममतामयी माता है वह अपनी महानता और अपने आनन्द के स्रोत को किसी भी काल में नष्ट नहीं करती। वह माता हमें हृदय में धारण करने वाली है उसके द्वार से यह चेतना का स्रोत उत्पन्न होता है जिसको पान करने के पश्चात मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है। आज हम उस अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते चले जाएं।

आज हम उस महामना देवी की शरण में जाना चाहते हैं जो हमें आनन्द देती है, चेतना देती है, पवित्रता देती है हम उसी की लोरियों का पान करना चाहते हैं क्योंकि हम क्षुधा से पीड़ित है। हमारी पिपासा कौन शान्त कर सकता है? इस संसार के जो नाना प्रकार के ऐश्वर्य हैं वह हमारी आत्मिक पिपासा को शान्त नहीं कर पाते। वह जो पिपास हमारी है वह एक चेतना से प्राप्त होती है, उसका जो सोम है मानो वही हमें प्राप्त होना चाहिए। सोम नाम ज्ञान को कहा गया है, विवेक को कहा गया है क्योंकि जब सौम्य हो जाते हैं, हममें दृढ़ता आ जाती है, पवित्रता आ जाती है। उसी का हमें पान करना है। जिस मानव के द्वारा यह निष्ठा आ जाती है कि वह जो सोम को पान कराने वाला है वह आनन्द देव मेरा प्यारा प्रभु है और वह कैसा अनुपम देव है कि वह मानव को किसी काल में भी अपना दयाव्रत से शान्त नहीं कर पाता, नम्रता उसे सदा प्रदान करता रहता है। माना नाना प्रकार के कठोर मार्ग उसके समीप आते हैं परन्तु उन्हें भी सहन करता हुआ, अपने व्रत को प्राप्त होता चला जाता हैं और आनन्द को प्राप्त करना है, जिस आनन्द के लिए ऋषि मुनि अन्तरर्मुखी हो जाते हैं, हृदय अगम हो जाते हैं।

मेरे प्यारेजिस मानव के द्वारा निष्ठा दृढ़ता नहीं होती !ऋषिवर !, वह मानव इस संसार में न होने के तुल्य माना जाता है। यहाँ मुझे महात्मा प्रहलाद का भी जीवन स्मरण आने लगता है। उनका जीवन कितना अनुपम था। मानव में नाना प्रकार के संस्कार होते हैं। उन्हीं संस्कारों के आधार पर मानव में निष्ठा हो जाती है। आज हमें उन संस्कारों पर विचार विनियम कर लेना चाहिए। प्रहलाद का जो पिता था जिसको हिरण्यकशिपु कहा जाता था वह अपने मन में निष्ठावादी बन गया था कि इस संसार में प्रभु कोई वस्तु नहीं है। उसने विज्ञान के आधार पर अपने जीवन को, अपने राष्ट्र को उन्नत बनाने का प्रयास किया था। मुझे स्मरण आता रहता है कि उनके राष्ट्र में विज्ञान

इतना प्रबल हो गया था कि हिरण्यकशिपु को यह विश्वास हो गया कि परमात्मा कोई वस्तु नहीं है, केवल वह मानव की एक कल्पना है और परमात्मा तो केवल राजा को कहते हैं। मैं राजा हूँ इसलिए मैं प्रजा का ऐश्वर्यशाली कहलाया जाता हूँ। जब हिरण्यकशिपु को विश्वास हो गया तो एक समय उनके गुरू शौंग महाराजा उनके समीप आए और कहा हे हिरण्यकशिपु तुम परमात्मा को अपने से दूर न करो। उन्होंने कहा कि हे ऋषिवर यह मुझे निर्णय कराइये कि मैं इसे कैसे स्वीकार करूं। मेरा तो हृदय ! यह पुकार कर कहता है कि परमात्मा कोई वस्तु नहीं है। यह तो मानव की कल्पना है। मेरे राष्ट्र का निरीक्षण करके दृष्टिपात कीजिए इसमें कितनी सुन्दर मार्गशालाएं हैं, कितना विज्ञान है। मैंने नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में जाने का प्रयास किया है। परमात्मा कहाँ विराजमान रहता है। यह तो केवल प्राकृतिक एक ऋत चेतना है। एक दूसरे तत्त्व के मिलन से, एक दूसरे परमाणु के मिलन से ही चेतना का निकास हो जाता है, उसी चेतना के पृथक पृथक हो जाने पर उस चेतना का अपना अस्तित्व दृष्टिपात नहीं होता है। जब गुरू को ऐसा कहा तो वह शान्त हो गए और कहा राजन ! आज तुम विज्ञान के मध्य में आ गए हो इसलिए मैं तुमसे कोई वाक्य प्रकट नहीं करूंगा परन्तु अन्त में तुम्हें प्रभु की शरण में जाना ही होगा। यहाँ से इस शरीर को त्याग करके तुम्हें मृत्यु को प्राप्त होकर के ही प्रभु की गोद में जाना होगा। गुरू के उस वाक्य को भी उन्होंने शान्त कर दिया।

बेटा हिरण्यकशिपु के एक ही बालक था जिस का नाम प्रहलाद था। प्रहलाद ! बाल्यकाल में ही शिक्षालय में गुरूजन नाना प्रकार की विद्या का पठन पाठन कराते। पठन पाठन की परम्परा थी, उसी परम्परा के आधार पर वह शिक्षा में पारांगत होने लगा। एक समय वह बालक अपने शिक्षालय शिक्षा ग्रहण कर रहा था तो उसने देखा कि कुम्भा में से जिसमें एक राजपात्र में बिल्ला के बच्चे अग्नि में प्रविष्ट हो गए थे उस पात्र में तपने के पश्चात् ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। कुम्हार ने बालक प्रहलाद से कहा कि तुम्हारा पिता यह कहता है कि मैं परमात्मा हूँ जाओ अपने पिता से दृष्टिपात करके आओ कि ये बालक अग्नि के मुख में से कैसे जीवित रहे हैं।

मैं आज राजा को ईश्वर क्यों स्वीकार करूं क्योंकि यह तो कोई और चेतना सत्ता है जिसके आधार पर इनके प्राणों की रक्षा हुई है। बेटा उसी के आधार पर न प्रतीत ! प्रहलाद का कौन से जन्मों का संस्कार उदय हो गया। उसे निष्ठा हो गई, आस्था हो गई कि प्रभु कोई और ही है तो सर्वज्ञ है, वह अनुपम है क्योंकि वह सर्वानन्द स्वामी है, वह सब में रमण करने वाला है, सबको आनन्दवत प्रदान करने वाला है।

उस बालक ने अपने मन में यह विचार कर लिया कि वास्तव में प्रभु तो कोई और वस्तु है। मेरे पिता नहीं हो सकता क्योंकि यह तो प्रजा का स्वामी है। जो इस जगत का, लोक लोकान्तरों का स्वामी है वही तो एक ईश्वर कहलाया जाता है। जो हमारे अन्तःकरण की वार्त्ता को जानता हो, जो अग्नि के मुख में से मानव को जीवित बना देता है वही तो मानो देखो, हमारे यहाँ चेतनावत प्रभु माना गया है। मुनिवरों जब ! बालक प्रहलाद को यह निष्ठा हो गई कि प्रभु तो कोई और वस्तु है यह तो मेरा सांसारिक पिता है, वह तो संसार का पिता है जो मेरे हृदय की बातों को जानता है, वह आयु को निश्चित करने वाला है, वही तो संसार में एक प्रभु कहलाया जाता है। जब उसके मन में यह निष्ठा हो गई, आस्था हो गई तो राजा को यह प्रतीत हुआ कि तेरा पुत्र तो ईश्वरवादी बन गया है, उसी का अध्ययन करता है। नाना पठन पाठन करने वालों ने भी उसे नाना प्रकार का ज्ञान कराया और यह कहा कि अब तुम्हारे पिता तुम्हें नाना प्रकार के कष्ट में ले जाएंगे। परन्तु बालक न कहा कि मुझे इसका विचार विनिमय नहीं होता क्योंकि जो प्रभु ने मेरे लिए प्रारलब्ध के आधार पर निश्चित कर दिया है उतनी यातनाएं व कष्ट प्राप्त होंगे। जब यह उस बालक के हृदय में विश्वास हो गया कि मेरे हृदय को चेतना बना रहा है, संसार को चेतनावान बना रहा है। मानो सूर्य का प्रकाश आ रहा है परन्तु प्रभु तो प्रकाशों का भी प्रकाश है, सूर्य को भी प्रकाशित करने वाला है।

जब राजा को यह प्रतीत हुआ कि तेरा पुत्र तो ऐसा निष्ठावान बन गया है, मूर्ख बन गया है और तेरा नाम स्मरण भी नहीं करने देता। तो राजा ने अपनी पत्नी से कहा हे देवीअब हम क्या करें !, एक ही पुत्र है, वही इतना मूर्ख बन गया है कि हम उसका

प्रमाण भी नहीं दे सकते। ईश्वर ईश्वर पुकारता है, राम ही राम पुकारता रहता है। वह जो कण कण में रमण करने वाला है ऐसा वह अपने प्रभु को कह रहा है, इसका कोई मार्ग है। उसने कहा प्रभुइसमें मेरा क्या दोष है !, जैसी उस बालक के हृदय में निष्ठा हो गई है उस निष्ठा को आप नष्ट नहीं कर सकोगे क्योंकि मुझे भी किसी काल में ऐसा ही प्रतीत होता है कि चेतनावादी और वस्तु है। वास्तव में आप ऐसा उच्चारण करते हैं कि मैं ईश्वर हूँ। आप नास्तिकवाद के मार्ग पर जा रहे हैं।

मेरे प्यारे जब ऐसा माता ने कहा तो राजा ने कहा कि मैं तुम्हारे प्राणों को !ऋषिवर ! मेरे प्राणों को हनन कर सकते हो !हनन कर सकता हूँ। उस समय देवी ने कहा प्रभु परन्तु मेरे अन्तःकरण में जो चेतन ा है उसे तुम नष्ट नहीं कर सकते। राजा उस समय लज्ञित हो गया। तो देवी हमें करना क्या है। परन्तु मेरे विचार में यह आ रहा है कि ! चेतनावान कोई और वस्तु है, उस चेतना को आप जानने की चेष्टा करो। उस समय राजा ने कहा हे देवीतुम शान्त हो जाओ !, मैं तुम्हारी चेतना को अवश्य जानूंगा जिस चेतना के तुम स्वामी बन गएं हो मुझे तुम्हारे स्वामी को जानना है, दृष्टिपात करना है। यह वार्त्ता जब राजा ने प्रकट की जो वह अर्द्धांगिनी थी शान्त हो गई। राजा के मन में एक अभिमान था और वास्तव में उसका विज्ञान इतना पराकाष्ठा पर था कि उसे अभिमान अपने विज्ञान पर था।

लोकाम् प्रभाकृति अश्वन्ति लोकाः ऐसा हमारे यहाँ कहा जाता है कि जिस का आत्मा बलवान होता है, आत्मवेत्ता जो महापुरूष होते हैं वह एक विज्ञान में परणित रहते हैं। प्रहलाद ने अपने जीवन में ऐसे एक योग को अध्ययन किया था, उस योग में उसे निष्ठा हो गई थी, आध्यात्मिक विज्ञान को जानने में अपने जीवन को ओत प्रोत कर दिया था और यह विचार उसके मस्तिष्क में आया कि वास्तव में मुझे जानना है कि वह अध्यात्मिक विज्ञान कहाँ तक मानव को उन्नत बना देता है उसके द्वारा नम्रता और निष्ठा आ गई थी संकल्प इतना उज्ज्वल बना लिया था कि उस संकल्प के आधार पर बालक प्रहलाद को यह विश्वास हो गया था कि तुम्हें अग्नि नष्ट नहीं कर सकती, आत्मा चैतन्य है, आत्मा को अग्नि नष्ट नहीं कर सकती, वायु और जल अपने मार्ग में नहीं ले जा

सकते हैं। इसी प्रकार तेरा जो यह मानवीय शरीर है जिसमें तेरी अवस्था उस चैतन्य प्रभु ने ओत प्रोत करायी है उतनी ही निश्चित रहेगी उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। बालक के हृदय में निष्ठा हो गई। एक समय महाराजा हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र को कारागार में ओत प्रोत करा दिया। उस कारागार में नाना प्रकार के सर्पों को अग्रस्ति माला उसके कंठ में ओत प्रोत करा दी। जब सर्प उसके निकट आ गएं तो सर्पों का उसके द्वारा इतना संकल्प और अहिंसा परमोधर्म में इतना परणित हो गया था कि वह सर्प भी उस बालक को निगल नहीं सकते थे। यही तो मानव का हृदय होता है, यही तो मानव की निष्ठा होती है। बालक के हृदय में इतनी निष्ठा थी कि हे सर्पराज क्या ! तुम प्रभु के बनाएं हुए नहीं हो? क्या यह योनि प्रभु ने प्रदान नहीं की है? हे विषधरो ! तुम विष को धारण करने वाले हो और मानव को अमृत देने वाले हो तो क्या तुम आज मुझ को विषधर बना सकते हो? नहीं बना सकते। हे सर्पराजों तुम तो मुझे ! अमृत द ेते चले जाओ, मेरे द्वारा जो विष हो उसको अपने में पान करते चले जाओ, यही तो तुम्हारा संसार में कर्त्तव्य रहता है वह प्रभु का भक्त कैसी याचना कर रहा है और सर्पराज को अपने कंठ में धारण कर लिया है और यह कहा कि हे सर्पराज तू भी तो आत्मा है और मैं भी तो आत्मा हूँ, तू भी एक चेतना है और मैं भी एक चेतना हूँ आओ चेतना से चेतना का मिलान होता चला जाएगा।

मेरे प्यारे जहाँ मानव के हृदय में इस प्रकार की निष्ठा हो जाती है क्या !ऋषिवर ! उसको संसार में कोई नष्ट कर सकता है? कोई नहीं कर पाता। प्रहलाद को जब यह निष्ठा हो गई तो रात्रि समय वह अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाता हुआ, चेतना को स्मरण करता रहा। जब प्रातःकाल होने लगा उस समय प्रहलाद ने कहा था कि हे सर्पराजोंवास्तव में जो मानव क्रोध के द्वारा विष उगलता रहता है !, जो मानव काम के द्वारा विष उगलता रहता है, जो प्रकृति के परमाणुओं को दूषित करता रहता है, उसी विष को तुम पान करते हो, मैं इनमें से कोई सा कार्य नहीं करता। न तो मेरे द्वारा हिंसा है न मुझे किसी काल में क्रोध आता है न काम की वासना उत्पन्न होती है, मैं तो एक चेतना का भक्त हूँ, जिस चेतना से तुम चैतन्य हो रहे हो तुम मुझे किस

आधार से निगल सकते हो। जब यह वाक्य उस महान आत्मा ने प्रकट कराया तो वह सर्पराज शान्त हो गये। प्रातःकाल हो गया। हिरण्यकशिपु को यह धारणा थी कि तेरा बालक नष्ट हो गया होगा। सर्पराजों ने उसे निगल लिया होगा। परन्तु जब वह कारागार में पहुंचा तो देखा वह परमात्मा का चिन्तन कर रहा है। उसी समय राजा ने विचारा कि अब क्या करना चाहिए। विषधर भी शान्त हैं यह तो कोई आश्चर्यजनक है। उन्होंने अपने बालक से यही वाक्य पुनः कहा कि अरे, तुम मेरा नाम स्मरण करने लगो अन्यथा मैं तुम्हें नष्ट कर सकता हूँ। उस समय बालक ने कहा कि हे पितरतुम मे !रे संसार के पिता हो परन्तु जिसने मेरे शरीर का निर्माण किया है, जो संसार को रचाने वाला है वह चेतनावादी मेरा पिता है। हे पितर तुम मेरी आत्मिक चेतना को नष्ट नहीं कर ! सकते, यह जो शरीर है यह मेरा नष्ट हो जाएगा, अग्नि के मुख में जा सकता है, परन्तु मेरे हृदय में जो प्रभु चेतना है उसे तुम नष्ट नहीं कर सकोगे। यदि उसे नष्ट कर दोगे तो मैं यह स्वीकार कर सकता हूँ कि वास्तव में प्रभु कोई चेतना नहीं है।

मुनिवरों जब यह वाक्य प्रकट किया तो राजा की अन्तरात्मा तो कृत्रियों में रमण कर ! रहा था, उसे अपने विज्ञान पर अभिमान था और कहता था कि वह प्रभु कोई वस्तु नहीं है, यह मिथ्या कल्पना है। इस मिथ्या कल्पना को मुझे अपने राष्ट्र को दूर कर देना है। उसी समय राजा ने कुछ अपने सेवकों को दृष्टिपात कराते हुए कहा कि यह जो प्रहलाद है इसे पर्वतों से नीचे ओत प्रोत करा दो जिससे इसकी मृत्यु हो जाएं, मेरा अन्तरात्मा दूषित हो रहा है। यह उससे उपरामता को प्राप्त हो जाएं। मैं निर्मोही बन जाऊं। वास्तव में मैं प्रभु को स्वीकार नहीं करता हूँ।

मुनिवरों वह समय आया। सेवकों ने प्रहलाद को लेकर पर्वतों से नीचे गिरा दिया था ! परन्तु उस बालक की मृत्यु न हो सकी। क्योंकि वह इतना निष्ठावान हो गया था कि ब्रह्मचर्य से और प्रभु के विवेक में उसका शरीर वज्र के तुल्य बन गया था। यह वाक्य मैं इसलिए वर्णन कर रहा हूँ कि विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान मानव को कितना धृष्ट बना देता है और कितना महान बना देता है।

माता ब्रह्मे लोकः प्रभे हिरण्यकशिपु की भगिनी उसके समीप आ पहुंची और कहा कि

प्रभु मेरा !आप इस प्रकार निर्मोही क्यों बनते जा रहे हो। उन्होंने कहा कि हे देवी ! जो पुत्र प्रहलाद है वह परमात्मा पर निष्ठा कर रहा है, मैं उसे नहीं चाहता। मेरे हृदय की कल्पना है कि यह मृत्यु को प्राप्त हो जाएं, संसार से चला जाएं, मेरे राष्ट्र से दूर हो जाएं, परन्तु वह इतना निष्ठावान है नद प्रतीत मैं क्या करूं। मुनिवरों वह जो ! होलिका थी जिसको हमारे यहाँ उनकी भोजाई कहा जाता था वह कृतिका में रमण करने वाली थी, सदैव विज्ञानशाला में रमण करने वाली थी, विज्ञान के नाना यन्त्रों में परणित हो गई थी। ऐसा हमने श्रवण किया है वह होलिका मंगल की यात्रा करती रहती थी। वह लोक लोकान्तरों की यात्रा में सफलता को प्राप्त हो गई थी। उसी का बालक फिरणी नाम का वैज्ञानिक था जिसके द्वारा नाना यन्त्रों में वह परणित रहती थी। उसे भी यह अभिमान था कि प्रभु कोई वस्तु है ही नहीं क्योंकि परमाणुवाद में जाने के बाद मानव अपनी वास्तविक चेतना को नष्ट कर देता है उसमें अभिमान होता है। अपने कर्त्तव्य के ऊपर उसे बड़ा गौरव होता है। प्रकृति का यह स्वभाव होता है कि जो प्रकृति से निष्ठा करता रहता है यह प्रकृति उसे अभिमान लाती है, क्रोध लाती है, काम की वासना में परणित कर देती है और उसे नीचे गिरा देती है। जो प्रकृति से उपराम होकर चलता है, इस चेतना को अपना स्वामी स्वीकार करता है वह आध्यात्मिक विज्ञान में पारंगत को प्राप्त हो जाता है। प्रकृति के गर्भ से दूर होता हुआ इस चेतना के गर्भ में चला जाता है जिसको हमारे यहाँ वसुन्धरा कहा जाता है। वसुन्धरा के गर्भ में जाने के पश्चात् उसे वहाँ केवल ब्रह्म ही ब्रह्म, प्रतीत होता है। जैसा मैंने कल के वाक्यों में कहा था उसे यह दृष्टिपात होने लगता है कि प्रकृति का जो कण कण है वह ओ३म् रूपी धागे में पिरोया हुआ है, इसलिए मैं दूसरी चेतना को कैसे स्वीकार कर पाऊंगा, न कोई और चेतना है।

मुनिवरों उस समय हिरण्यकशिपु की जो भाजाई थी उसके मन में एक ही विचार ! रहता था कि मैं मंगल मण्डल की यात्रा करती रहती हूँ। उन्होंने शिवास्त्र, रेधनी अस्त्र सब मंगल मण्डल से प्राप्त किए थे, और भी नाना विज्ञान में वह पारंगत रहती थी। एक समय प्रभा गच्छन ब्रह्मे आस्वान्ति लोकाः। मामनिक ऋषि महाराज ने होलिका

से कहा था कि हे देवी तू मंगल की यात्रा करती है कभी तुझे चन्द्र मण्डल में भी ! जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है अथवा नहीं। उन्होंने कहा कि मैं चन्द्र मण्डल की यात्रा तो सदैव करती रहती हूँ। नाना प्रकार के यन्त्रों के द्वारा चन्द्रमा की यात्रा में सफलता को प्राप्त होती रहती हूँ। जब ऋषियों ने कहा कि जिसको हम चन्द्र मण्डल कहते हैं इसमें क्या है? उन्होंने निर्णय कराया कि यह जो चन्द्र मण्डल है मानो वहाँ प्राणवत् रहते हैं, प्राणी रहते हैं जिन्हें परमात्मा से जीवन प्राप्त होता है, उन्हें प्रकृति से जीवन प्राप्त होता है। जीवन की प्रतिभा उनके मस्तिष्कों में ओत प्रोत रहती है। वहाँ प्राणी वायु की प्रधानता में परणित रहता है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय वर्णन कराते ! हुए ऐसा कहा है कि यह जो आधुनिक काल का वैज्ञानिक है यह कह रहा है कि वहाँ वायु प्रधान नहीं है किन्तु मैं यह कहा करता हूँ कि वायु का वास्तविक स्वरूप क्या माना जाता है? वास्तव में पृथ्वी मण्डल पर जहाँ हम वायु का स्वरूप स्वीकार करते हैं कि इस वायु का स्वरूप स्थूल है, वृत्त है, उष्ण या शीतल है तो यह विचार नहीं आ पाता है परन्तु हमें यह सिद्ध होता है कि न तो वायु ऊष्ण है न शीतल है क्योंकि इसका जो स्वरूप है वही प्राणी और वायु की प्रधान मानी जाती है।

मेरे प्यारेविचार !ऋषिवर ! आता है कि यहाँ भी जहाँ पार्थिव तत्त्व प्राणी रहते हैं, वहाँ भी गति होती है, जहाँ गति होती है वहीं वायु की प्रधानता होती है। जहाँ वायु में तीव्रता नहीं होती, जहाँ केवल मध्यम वाद होता है, ऊष्णावाद होता है वहाँ पृथ्वी के परमाणुओं को अपने में आकर्षण शक्ति के द्वारा ग्रहण कर लेती है। ग्रहण करने के कारण उसी की प्रतिभा वायु ग्रहण करती रहती है। ऊष्ण और शीतल बनाती रहती है। उसी के द्वारा अन्न की प्रतिभा का जन्म होता है, अन्न उत्पन्न होता है, वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं क्योंकि परमाणुवाद को ग्रहण करने वाली वायु न हो तो हम प्रभु को स्वीकार ही क्यों करें। यही तो प्रभु का विज्ञान है। !

तो मुनिवरों वहाँ वायु की प्रधानता !उस समय होलिका ने ऋषि से कहा था कि हे प्रभु ! मानी जाती है। वहाँ जलाशय प्रबलवत में प्राप्त हो जाते हैं। अन्तरिक्ष जो हम दृष्टिपात करते हैं वह एक जलाशय से भरा हुआ है क्योंकि जब यहाँ पृथ्वी मण्डल पर ग्रीष्म

ऋतु आती है तो सूर्य की किरणें जल के परमाणुओं का सूक्ष्म रूप बना करके अन्तरिक्ष में ओत प्रोत करा देती है। जैसे एक योगी होता है उसका हृदय और ब्रह्म अन्तरिक्ष का हृदय दोनों का मिलान हो करके वह अगम्य हो जाता है इसी प्रकार जब सूर्य की किरणें टेढ़ी हो जाती हैं, एक रश्मी हो जाती हैं उसी समय समुद्रों से जलों का उत्थान आरम्भ होने लगता है। समुद्र के जल के परमाणु बन करके अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो जाते हैं। इन परमाणुओं का मिलान हो करके अग्नि के परमाणुओं द्वारा, इन्हीं के द्वारा वृष्टि हुआ करती है और वृष्टि हो करके नाना प्रकार का अन्न इसी से उत्पन्न होता रहता है।

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय कि उस समय राजा की भगिनी ने कहा कि हे ऋषिवर आपको मैं स्मरण कराए देती हूँ कि जब हम चन्द्रमा की यात्रा करते हैं तो ! उस समय में नाना प्रकार के प्राणियों से वार्त्ता प्रकट करने का सौभाग्य भी प्राप्त होता है परन्तु वहाँ का जो वायुमण्डल है, वहाँ की जो वाणी है उसको यह प्राणी स्वीकार नहीं कर पाता क्योंकि वहाँ कृतिमा माधुक नाम की वाणी प्रचलित रहती है, वहाँ सुहागनी अत्युत्तम जिसको हम प्राकृतिक कहते है जो हमारे वेदों की प्रतिभा रमण करने वाली है उसी के आधार पर वह अपनी वाणी का प्रसार करते रहते हैं क्योंकि ऋग और साम दोनों का मिलान सर्वथा रहता है। ऋग और साम उसी को कहा जाता है जहाँ एक दूसरे का मिलान होता हो। हमारे यहाँ जैसे पृथ्वी को ऋग कहा जाता है और वायु को साम कहा है दोनों के मिलान से ही सामगान होता है। इसी प्रकार जैसे मानव का तालु होता है और जीभ होती है दोनों के मिलान से ही मानव के मुखारविन्द से शब्द की रचना होती है इसी प्रकार वहाँ भी ऋग और साम दोनों का मिलान हो करके वहाँ वायु और जल दोनों का ऋग और साम माना है। जैसे हमारे इस पृथ्वी मण्डल पर पृथ्वी और वायु को ऋग और साम माना है वहाँ पूरे चन्द्र मण्डल में वायु को और जल को दोनों ऋग और साम को उपाधि प्रदान की जाती है। उस काल में वहाँ गान गाया जाता है। गान उसे कहते हैं जहाँ दोनों का मिलान होता है, वहाँ शब्द की रचना होती

है, वहीं मिलान होता है, वहीं नाना प्रकार की उत्पत्ति का कारण बना करता है।
तो उस समय राजा की भगिनी ने कहा कि हे ऋषिवर मैं यह स्मरण कराए देती हूँ ! कि जब तक मानव वहाँ के परमाणुवाद के विज्ञान के द्वारा नहीं जाएगा तब तक इस पृथ्वी मण्डल के प्राणी क ो वहाँ जीवित रहना असम्भव हो जाता है।
वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या है कि होलिका वैज्ञानिकता में रमण करने वाली थी। एक समय शान्त मुद्रा में विराजमान थी। होलिका ने अपनी विज्ञानशाला में यह विचारा कि जो प्रहलाद कहता है कि प्रभु ही एक चेतना है तो वास्तव में कोई चेतना तो होनी चाहिए। उसके मस्तिष्क में यह वाक्य आने वाला था कि इतने में उनके विधाता आ पहुंचे। उन्होंने कहा कि तुम क्या चिन्तन कर रही हो। उन्होंने कहा कि कुछ परमाणुओं के ऊपर विचार विनिमय चल रहा है। मैं एक दूसरे परमाणु से मिलान करने जा रही थी। उसी के विचार में मैं कुछ चैतन्य की वार्त्ता प्रकट कर रही थी और मेरे अन्तःकरण में यह प्रेरणा आ रही थी कि वह जो परमाणुओं की चेतना है उनमें जो एक गति आती है वह एक दूसरे के मिलान से आती है अथवा कोई पृथक चेतना है, इस आधार पर मेरा एक विनिमय हो रहा था। उस समय हिरण्यकशिपु ने कहा कि तुम इन विचारों में क्यों जा रही हो। यह विचार वास्तव में योग्य नहीं है। मेरा तो राष्ट्र का कार्य भी शान्त हो गया है। यह मेरा पुत्र ही मेरा शत्रु बन गया है। मैं यह चाहता हूँ कि मेरा पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो जाएं।
तो मुनिवरोंउस समय राष् !ट्र में दो विभाग हो गये। एक प्रहलाद का विचारवादी बन गया और एक हिरण्यकशिपु का विचारवादी बन गया। जो प्रहलाद के विचारों वाला प्राणी मात्र था उन्होंने नरसिंहगम् ब्रह्म कृत्रिमा ग्रति विश्वानम् अप्रेति कामाः उन्होंने नरसिंह नाम का एक समाज बनाया और एक विचार बनाया कि हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रहलाद ही हमारा राजा है और इसी को हम अपने राष्ट्र में नहीं रहने देंगे। यह विचार प्रजा में बन गया। प्रजा मे आस्तिकता की एक तंरगें भीं वह शान्त होने लगी। मुनिवरों ! मैं उस वाक्य को शान्त न करूं कि होलिका ने अपने विधाता के पुत्र का अपने आँगन मे वरण करा लिया और उन औषधियों का, परमाणुओं का मर्दन करने लगी जिसके

मर्दन से अग्नि से अग्नि उसके शरीर में प्रविष्ट नहीं होती थी। परन्तु यहाँ अग्नि का अभिप्राय यह नहीं था संभव गच्छानम् ऐसा कहा जाता था कि उस औषध के प्राणी परमाणुओं में एक विशेषता थी कि यदि वह किसी द्वितीय प्राणी को लेकर अग्नि में प्रविष्ट होती थी तो उस औषध की, उन परमाणुओं की प्रतिभा वह दूसरे मानव के शरीर में रमण कर जाती थी और रमण करने के पश्चात् वह मानव नष्ट हो जाता था जो मर्दन करने वाला होता था।

मेरे प्यारेउस समय ऐसा कहा जात !ऋषिवर !ा है जब होलिका प्रहलाद को ले करे अग्नि में प्रविष्ट हो गई तो वह होलिका स्वयं नष्ट होने लगी और प्रहलाद अपने जीवन के संकल्प को प्राप्त हो गया क्योंकि जब आस्तिकवाद का प्रसार होता है और कोई न कोई सांस्कारिक प्राणी आ करके इस संसार को आस्तिकवादी बनाता चला जाता है। तो ऐसा श्रवण किया गया कि उसी समय जो प्रजा का जो नरसिंह समाज था उसमें ऐसी महान क्रान्ति आई कि उन्होंने हिरण्यकशिपु को भी नष्ट कर दिया। नष्ट करने के पश्चात् वहाँ का राजा प्रहलाद बन गया और उसके बन जाने के पश्चात् प्रजा आनन्दवत् को प्राप्त होने लगी। यह वाक्य आज मैं इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि आज हम आस्तिवादी बनते चलें जाएं। विज्ञान यह नहीं कहता कि मैं नास्तिवाद को प्राप्त हों जाऊँ। प्रहलाद बड़ा महान वैज्ञानिक था, सुशील और आस्तिवादी था जहाँ उसका परमाणुवाद में विश्वास था वहाँ परमाणु का निर्माणवेत्ता जो प्रभु है उसमें उसकी आस्था अधिक थी। इसलिए वह अपने कार्यों में सदैव सफल रहा।

मेरे प्यारे वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि परमात्मा के पुजारी !ऋषिवर ! को संसार में कोई नष्ट नहीं कर सकता। उसका अंतरात्मा इतना शक्तिशाली होता है कि उसका प्रमाण नहीं दिया जा सकता। आज का हमारा वाक्य अब यह समाप्त होने जा रहा है। आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह है कि आज मुझे मेरे प्यारे महानन्द ! जी स्मरण करा रहे है कि आज वहीं चुतर्थदशी है जिस चतुर्थदशी के दिवस महान सिकन्दराब) (शेष भाग टैप नहीं हुआ है।) एक राष्ट्रीय दिवस मानाया जाता है।ाद,

हैदराबाद में दिया हुआ प्रवचन(

११ 26 03 1970 पुष्प 14 सत्यवादी बन कर वायु मण्डल पवित्र बनाओ

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, चार मूल वेद माने गए हैं। परन्तु इन चार मूल वेदों को शाखाएं हमारे यहाँ स्वीकार 1127 करते आए हैं।

हमारे यहाँ यह जो नाना प्रकार की शाखाएं हैं उनमें जो ऋषि मुनियों का सुंदर विचार है और एक एक शब्द पर जो टिप्पणियां है वह विचारनीय हैं। ऋषि मुनियों का जो हृदय होता है वह महान व्यापक होता है और व्यापक ही उनका ज्ञान होता है। हृदय रूपी जो गुफा है उसमें ऋषि मुनि हृदय अगात्मवत को प्राप्त हो जाते हैं, हृदय एक चेतना का स्थान माना गया है और वह जो चेतना है जिस चेतना से यह सर्वत्र जगत चैतनित हो रहा है उसमें ज्ञान का अथाह भण्डार होता है, पवित्रत और एक महानता को लिए हुए होता है।

जो मानव चेतना को जानना चाहता है, आत्मा को जानना चाहता है, वह हृदयरूपी गुफा में ध्यानावस्थित हो जाता है।

तो मेरे प्यारे !ऋषिवर !ऋषि मुनियों का विचार सबसे प्रथम उस चेतना पर होता है जिस चेतना से यह संसार चेतनानित हो रहा है। लोक लोकान्तरों में उसकी प्रतिभा प्रतीत होने लगती है। जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारे यहाँ कितने गंधर्व लोक हैं, उन गन्धर्व लोकों में कितने प्रकार के ध्रुव मण्डल है, कितने प्रकार के सूर्य लोक है, कितने प्रकार के जेठाय नक्षत्र है तो मुनिवरों वह एक चेतना में कटिबद्ध ! हो रहे हैं। वह कितनी अलौकिक चेतना है। आज उस चेतना के ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए क्योंकि बिना चेतना को जाने मानव का जीवन विशाल कदापि नहीं बन पाता। जिस मानव को संसार में विशाल बनना है वह अपनी हृदयरूपी जो गुफा है, उसमें जो चेतना है जिसको आत्मा कहते हैं उस आत्मा का जानना हमारा कर्त्तव्य है

वह कर्त्तव्य ही मानव को उज्ज्वल बनाता है और उसमें ज्ञान की प्रतिभा आती है। जब हम उसको जानने लगते हैं तो उस समय हमें उस आत्मा को जानना चाहिए जो आत्मा पुनरूक्तियों में प्राप्त होता रहता है, जीवात्मा के साथ आवागमन का एक मूल कारण बनता रहता है। हमें उस मूल कारण को जानना है। आज जो नाना प्रकार के संस्कारों की उपलब्धि होती है उन संस्कारों को भी जानना है।

एक समय महर्षि रेवक मुनि महाराज से भारद्वाज जी ने कहा था कि हे भगवन् मैं ! यह जानना चाहता हूँ कि यह जो हृदयरूपी गुफा है, मानो यह जो आत्मा का ज्ञान है, इसका जो विद्वान है उसका कोई ऐसा मूल कारण हो जिससे हमारे अन्तःकरण में वह संस्कार न उत्पन्न हों जिन संस्कारों से हमारे आवागमन की एक प्रतिभा बनती रहती है। गाड़ीवान रेवक थे उन्होंने कहा कि आपने यह वाक्य तो बहुत सुन्दर कहा है परन्तु इसका विचार विनिमय किया जाएं। हमारे ऋषि मुनियों का हृदय बड़ा विशाल और सत्यवादी, स्पष्टवत् में प्राप्त होता रहा है। महर्षि रेवक महान तपस्वी थे। वर्ष त 61क मौन धारण किया वर्ष तक उन्होंने निद्रा पान नहीं किया। उन्होंने कितना सुन्दर 61 मैं इस प्रतिभा को अभी तक नहीं जानता क्योंकि इस पर मैं !उत्तर दिया कि हे प्रभु उनका हृदय कितना महान होता है। आज हम जितने !अनुसन्धान कर रहा हूँ। बेटा सत्यवादी बन जाते हैं तो हमारा हृदय निर्मल और स्वच्छ बनने लगता है नाना छलों से रहित हो जाता है। बेटा वह संस्कार स्वतः ही मानव के हृदय में नहीं व्याप्ते ! जिनसे मानव का आवागमन बनने लगता है। भारद्वाज ने महर्षि रेवक जी को प्रणाम किया और प्रणाम करते हुए वह महर्षि पिप्लाद ऋषि के आश्रम में प्रविष्ट हो गये। पिप्लाद मुनि ने कहा कि आइये, ऋषिवर पधारिए। ऋषि ने विराजमान होकर वही प्रश्न ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव के द्वारा ऐसा कौन !किया। उन्होंने कहा कि प्रभु सा संकल्प है, ऐसा कौन सी प्रतिभा है जिससे आवागमन के संस्कार हमारे अन्तःकरण में प्रविष्ट न होने दें।

उस समय महर्षि पिप्लाद ने कहा कि भाई इस पर विचार विनिमय करेंगे। दोनों ऋषियों का विचार विनिमय प्रारम्भ होने लगा। उन्होंने कहा कि यदि ऐसा कोई कार्य है तो वह

जो आन्तरिक भावनाएं हैं उन आन्तरिक भावनाओं को इतना उज्ज्वल बनाया जाएं इतना पवित्र बनाया जाय कि जिस से यह संस्कार का जो नाना प्रकार का द्वेषवाद है, नाना प्रकार का जो रूढ़िवाद है, मस्तिष्कों में उसका संस्कार उत्पन्न न हो। हमें वह स्वप्नवत् को भी प्राप्त नहीं होना चाहिए। महर्षि भारद्वाज बोले कि हे भगवन् जब हम संसार ! में रमण करते हैं, नाना प्रकार की औषधियों का पान करते हैं हमारा प्राण इस वायु मण्डल में भ्रमण करता है, प्रकृति के गर्भ में हम आए हैं, माता अहिल्या की गोद में हम आए हैं तो नाना प्रकार के संस्कारों का जन्म होना स्वाभाविक हो जाता है। उन्होंने कहा प्रभुइन कार्यों से मानव के द्वारा संस्कार !ों का जन्म नहीं होता है। संस्कारों का जन्म उस काल में होता है जबकि मानव उन विचारों पर जो इष्ट विचार हैं उन पर टिप्पणी करना प्रारम्भ कर देता है। टिप्पणी के साथ साथ उनमें घृणा होती है और घृणा के साथ ही में अभिमान होता है और अभिमान के साथ में अपनी करूणामयी नहीं होती तो उस मानव के द्वारा उसके संस्कार जन्म ले लेते हैं। वह आवागमन का एक मूल कारण बनता चला जाता है। आत्मा इस शरीर को त्यागता है, पुनः इससे दूसरे को धारण कर लेता है। उसका मूल कारण है संस्कार। आज हमें ऐसा कर्म करना चाहिए जिससे संस्कार ही उत्पन्न न हों।

मुनिवरोंऐसा कर्म क्या है !? ऐसा कर्म है केवल अपनी चेतना को जानना। अपने में इतने सत्यवादी हो जाना कि अपने विचारों का व्यापक बनाना। जितना संकीर्णवाद है उतना मानव को आवागमन में लाता है। प्रभु का जो राष्ट्र है, प्रभु का जो यह विज्ञानमयी जगत है, जिसके ऊपर प्रत्येक मानव आता है, परम्परा से आता चला गया है, अपना अनुसन्धान करता रहता है और उस परमात्मा की प्रतिभा को हम जानते हुए अपनी हृदय अगम्यता को प्रभु के हृदय में अगम्यता में जब परणित कर देते हैं दोनों का समवन्य हो जाता है तो उस समय मानव इस संसार में कर्म करता हुआ भी इस जगत में उदासीन हो जाता है। आज हमें उन कर्मों को अपनाना है उस प्रतीभा को अपनाना है जिसको अपनाने के पश्चात् मानव का हृदय आगम्यवत को प्राप्त हो जाता है। महर्षि भारद्वाज परमाणुवाद के वैज्ञानिक थे। उनका अनुसन्धान प्रायः चलता रहता था। रात्रि

होती परन्तु उनका अनुसन्धान प्रारम्भ हो जाता। अनुसन्धान उसको कहते हैं कि रात्रि क्यों आई, रात्रि किन कारणों से आती है संसार में। इन प्रतिभाओं पर जब मानव का विचार विनिमय करने लगता है तो उसका हृदय इतना स्वच्छता को प्राप्त हो जाता है कि रात्रि भी उसे दिवस प्रतीत होने लगती है। कारण क्या है? वह महापुरूष जानता है कि प्रभु के राष्ट्र में रात्रि नहीं होती। प्रभु का राष्ट्र प्रकाशमय होता है, आनन्दमय होता है कि उसके राष्ट्र में रात्रि कोई लेश नहीं होता। इसलिए महापुरूषों को रात्रि भी दिवस प्रतीत होने लगती है।

मेरे प्यारेआज क !ऋषिवर !ा विषय ये नहीं। आज तो महानन्द जी का पुनः संकेत प्राप्त हो रहा है कल समय मिलेगा तो इसके ऊपर विचार विनिमय अच्छी प्रकार कर सकेंगे आज तो केवल हमारा विचार विनिमय यह था कि हम प्रभु के द्वार पर आयें है उसकी महानता पर विचार विनिमय करना चाहिए जो चैतन्यवत और आनन्द का श्रोत है। यह तो अग्नि है यह प्रभु का मस्तिष्क कहलाया गया हैं यह प्रभु का तेज है। मैंने कल के वाक्यों में तुम्हें प्रकट करते हुए कहा था कि अग्नि कितने प्रकार की है। वह अग्नि कितनी सुन्दर है। वायु मण्डल को प्रत्येक लोक लोकान्तरों को क्रियाशील बना रही है। आज जिसको विद्युत कहते हैं यह भी प्रकार के 96 प्रकार की होती है। 96 उसमें अणु होते हैं जिनको जानता हुआ वैज्ञानिक महान एक प्रतिभा को प्राप्त हो जाता है और अनुभव करने लगता है कि मैं कहाँ से आया हूँ। प्रकृति के गर्भ में जाने के पश्चात् मानव को यह संसार सर्वत्रपरमाणुओं का प्रतीत होता है। एक एक अग्नि में से प्रकार के अणुओं का निकास होता है। एक महान जो भौतिक वैज्ञानिक है 96, परमाणुवाद का वैज्ञानिक है उसे यह प्रतीत होने लगता है कि वास्तव में मैं किस स्थान पर विराजमान हूँ। यह प्रकृति का गर्भ इतना अथाह है, मैं इतनी अगम्यता में पहुंच गया हूँ और वह जानते हुए नेति नेति का प्रतिपादन करने लगता है।

मेरे प्यारे मुझे स्मरण आता रहता है कि मानव सूक्ष्म सा वैज्ञानिक बनता !ऋषिवर ! हुआ अपने में अनुभव करने लगता है कि मैं वैज्ञानिक बन गया हूँ। परन्तु जब वह वसुन्धरा के गर्भ में जाताहै, धेनु के गर्भ में जाता है, अहिल्या के गर्भ में जाता है तो

वहाँ उस यह प्रतीत होता है कि यह जो महान गर्भ है। इसमें जाने के पश्चात् यह जरायुज रूप प्रतीत होता है। आज तो हम संसार में विचरण कर रहे हैं जैसे जरायुज होता है। सूक्ष्म सा प्रतिभाशाली होता है परन्तु प्रकृति का गर्भ तो अथाह में परणित कहलाया गया है। जो ब्रह्मवेत्ता होते हैं जैसे महर्षि भारद्वाज, पिप्लाद, शान्डल्य आदि ऋषि। वह तो केवल सूक्ष्म से वाक्यों पर समाप्त हो जाता है कि जो प्रकृति के गर्भ में चेतना कार्य कर रही है उस चेतना को जानने वाला बन जाता है। वह चेतना मानव के हृदय में आगम्यता को प्राप्त होती रहती है। आज हमें आंतरिक और बाह्य हृदय को दोनों का समवन्य कर देना चाहिए। परन्तु वह कैसे जाएगा। यह विचार विनिमय करना है। इसके ऊपर हमें अनुसन्धान करना है इसका मूल कारण जानना है, ऋषियों का जो एक महान सनातन मार्ग है उसके ऊपर वास्तव में विचार विनिमय करने की आवश्यकता है। ऋषि मुनियों का, महापुरूषों का जो विचार विनिमय है उसके ऊपर हमारा हृदय सदैव हर्षित होता रहता है कि उनका जीवन कितना आनन्दमय में रमण करता रहता था। उनकी प्रतिभा कितनी उज्ज्वलता में सदैव रमण करता रहता था। उनकी प्रतिभा कितनी उज्ज्वलता में रमण करती रहती थी उसी के ऊपर हमें सदैव विचार विनिमय करना है।

मुनिवरों सबसे प्रथम मानव को जिज्ञासु होना चाहिए जिज्ञासु उसे कहते हैं जिसके ! द्वारा सत्यवाद आ जाता है। सत्य की प्रतिभा को सबसे प्रथम अपनाना है। सत्य को अपनाने वाले महान पुरूष को मान अपमान नहीं होता। मुझे बेटा वह वाक्य भी ! स्मरण आता रहता है जब महर्षि गौतम आश्रम में ज्वाबा पुत्र सतकाम पहुंचे और कहा मैं ब्रह्म विद्या को पान करने आया हूँ। उस समय आचार्य गौतम ने कहा कि मैं !प्रभु यह जानना चाहता हूँ कि पुत्र तुम्हारागोत्र क्या है? हमारे ऋषि मुनियों की जो परम्परा है वह यह है जो कि बालक आचार्य के कुल में आता है उसे गोत्र की जानकारी होती है क्योंकि बिना गोत्र के मानव को मानव की सुन्दरता की और उसकी प्रतिभा की जानकारी नहीं हो पाती। बालक ने कहा प्रभुमैं नहीं जानता कि मेरा ! गोत्र क्या है मैं माता से जा करके इसका निर्णय करता हूँ। जब ज्वाबा माता के समीप आया और

कहा कि हे माता मैं भी नहीं जानती !हमारा गोत्र क्या है तो माता ने कहा कि हे पुत्र ! कि तुम्हारा गोत्र क्या है?

मेरे प्यारेइसी वाक्य को लेकर जब वह गौतम ऋषि के आश्र !ऋषिवर !म में पहुंचे तो कहा कि हे प्रभु मेरी माता ने उत्तर ने दिया कि मैं तुम्हारे गोत्र को नहीं जानती। उस ! समय ऋषि ने कहा कि अरे, बालक तुम्हारी माता जो पंडिता है और तुम स्वयं पंडित ! हो मानो ब्राह्मण ही क्योंकि सत्यवादी हो। जो मानव सत्यवादी होता है, सत्य उच्चारण करने में मान और अपमान नहीं होता वह मानव यथार्थ कहलाया जाता है। वह संसार में जिज्ञासु है और उसकी जिज्ञासा देववत को प्राप्त हो जाती है। तुम्हें बेटा स्मरण ! होगा कि सतकाम को देवताओं ने ज्ञान करा दिया था। आज देवता उसके साथी बन जाते हैं जो मानव सत्यवादी होता हैतो मेरे प्यारे सबसे प्रथम मानव को !ऋषिवर ! सत्यवादी बनाना चाहिए। सत्यवादी के बाद जब उसको मार्ग प्राप्त हो जाता है, उस मार्ग में वह सफलता को प्राप्त होता रहता है।

कल मैं कुछ रामराज्य की चर्चा कर रहा था। आज इसको आगे नहीं ले जाना चाहता हूँ, आज कुछ मेरे प्यारे महानन्द जी के प्रश्न होंगे। उनका पुनः उत्तर दे सकोगे। आज ! हमें इतना समय प्राप्त नहीं है कि दोनों वाक्यों को हम आगे लेते चले जाएं। मैं उन्हीं वाक्यों पर जा रहा हूँ जहाँ हमने कल अपने विषय को शान्त किया था। वाक्य यह प्रारम्भ हो रहा था कि प्रभु के श्रोत हैं वह क्या हैं? यह जो दिशायें हैं यह प्रभु के श्रोत माने गएं हैं क्योंकि यही उसके श्रवण करने की महान प्रति आकृति मानी गई है। मेरे प्यारे जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि प्रभु का मस्तिष्क तो !ऋषिवर ! अग्नि है और प्रभु के जो श्रोत हैं वह दिशायें हैंजिन दिशाओं में सत की उत्पत्ति होती है, शब्दों की गति तीव्र बन जाती है। जहाँ ऐसा प्रतीत होता रहता है कि शब्दों को कितनी तीव्र गति है। दिशाओं में शब्द ओत प्रोत हो जाता है, विनाशता को प्राप्त नहीं होता। ज्यों का त्यों रहता है जैसा मानव उच्चारण करता है। इसलिए हमारे आचार्यों ने एक ही वाक्य कहा है कि मानव को सत्यवादी बनना चाहिए और स्पष्टवादी रहना चाहिए और नम्र। क्योंकि यदि हम अशुद्ध उच्चारण करेंगे, अशुद्धता का व्यवहार हमारा रहेगा तो

यह वायु मण्डल सब अशुद्ध हो जाएगा और जब वायु मण्डल अशुद्ध हो जाएगा तो हमारा राष्ट, हमारी मानवता, हमारा जीवन अस्त व्यस्त हो जाएगा तो हमारा राष्ट्र, हमारी मानवता, हमारा जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। हमें शान्ति नहीं प्राप्त हो पाती। शान्ति मानव को क्यों प्राप्त नहीं होता? बेटा जिस काल में मानव के द्वारा अशुद्धवाद ! होने लगता है, मिथ्यावाद आने लगता है, राष्ट्रवाद में मिथ्या आ जाता है, प्रजा में मिथ्यावाद आ जाता है तो उस समय वायुमण्डल में अशुद्ध वाद आ जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है कि मानव का जो शब्द अहिंसा परमोधर्म से सुगठित होता है उस काल में बेटा मृगराज जी उन शब्दों को श्रवण करने के लिए !मानव के समीप आ जाते हैं। मानव की वाणी में इतना सतवाद होना चाहिए, इतना कर्म वचन से सुगठित शब्द होना चाहए कि उसमें हिंसा का एक अंकुर भी नहीं होना चाहिए। उस समय हिंसक जो प्राणी होते हैं वह भी उन शब्दों को ग्रहण करते हैं उनके हृदय में अन्तरात्मा होता है, वह अन्तरात्मा जब उन शब्दों को श्रवण शक्ति के द्वारा ग्रहण करते हैं तो उनके हृदय में भी अहिंसा परमोधर्म की प्रतिभा ओत प्रोत हो जाती है।

मेरे प्यारे शब्द की कितनी प्रतिभा है इसे आज हमें विचार विनिमय करना !ऋषिवर ! चाहिए। जो मानव सदैव मिथ्या ही उच्चारण करता रहता है वह मानव इस संसार में बेटापृथ्वी पर भार ही है ऐसा हमारा दर्शन कहता है !, आचार्य कहता है। पूज्य गुरूदेव तो यह कहा करते थे जहाँ पक्षीगण भी मौन हो जाते हों वहीं तो मानव का अहिंसा परमोधर्म से सुगठित विचार होता है क्योंकि हृदय से उच्चारण किया हुआ जो शब्द होता है, हृदय चेतना से मिश्रण किया हुआ जो शब्द होता है, वह सदैव शुद्ध होता है, पवित्र होता है। वह विचार मानव के द्वारा तपा हुआ होता है जो तपा हुआ विचार होता है वह वायुमण्डल को दूषित नहीं करता है, वह सदैव पवित्र और मानवीयता को प्रसारित करता चला जाता है। वायुमण्डल उससे पवित्र हो जाता है, जब वायु मण्डल पवित्र होता है तो उस काल में यह संसार स्वर्ग में परणित हो जाता है, सतोयुग में परणित हो जाता है, तमोगुण की मात्रा नहीं रहती।

वेद का पाठ हमें सदैव सत्यता को उच्चारण करने के लिए कह रहा है। हमारे यहाँ जब

भी राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति होती है वह उसी काल में होती है जब वायु मण्डल अशुद्ध हो जाता है। जब वायुमण्डल अशुद्ध हो जाता है तो मानव के द्वारा विचार पुनः आ जाते हैं, रक्तभरी क्रान्ति हो जाती है, अशान्ति हो जाती है, राष्ट्र के राष्ट्र अस्त व्यस्त हो जाते हैं। राजा रावण के यहाँ क्या था? महर्षि कूकुट मुनि ने जब सर्वश लंका का भ्रमण कर लिया मानो कहीं विज्ञानशाला, सूर्य अनुसन्धानशाला, चन्द्र अनुसन्धानशाला, अग्नि अनुसन्धानशाला, वायु अनुसन्धानशाला, ऊँचे ऊँचे भवन, स्वर्ण के गृह जिस राजा के राष्ट्र में, मानो पृथ्वी अनुसन्धानशाला, नाना प्रकार की शालायें राजा के राष्ट्र में चिकित्सालय कितनी उत्तम कि एक मानव के हृदय से दूसरे मानव के हृदय में परिणित किया जाता हो ऐसा सुन्दर जिस राजा के राष्ट्र में विज्ञान हो परन्तु उस राजा के राष्ट्र में अशान्ति। तो उस समय यही हो कहा था कि रावण मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम्हारी लंका तो अग्नि के मुख में जा रही है क्योंकि तुम्हारे राष्ट्र में असत्यवाद आ जाता है, मिथ्यावाद आ जाता है। मानव मानव का शोषण करने लगता है तो हे रावण ! उस राष्ट्र में प्रायः अग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

तो मेरे प्यारेमुझे य !ऋषिवर !ह वाक्य आज तक स्मरण आता रहता है। भगवान श्रीराम ने यही तो किया। संसार में अपनी प्रतिभा, अपनी संस्कृति को अपनाने के लिए उन्होंने क्या क्या नहीं किया। लंका को विजय किया, रावण के भ्राता विभीषण को राज्य दे दिया और अपनी अयोध्या को आ गये। अयोध्या में आ जाने के पश्चात् राष्ट्र को स्थापित करने से पूर्व वशिष्ठ के चरणों में ओत प्रोत हो गये, वहीं विश्वामित्र आ पहुंचे, वहीं दोनों महापुरूषों के चरणों में ओत प्रोत होकर के श्रीराम ने यह कहा था भगवन अब आप ! मुझे कोई ऐसा निश्चत मार्ग दीजिए जिससे मैं अपने राष्ट्र को राम राज्यबना सकूं। अपने राष्ट्र को सदाचार के मार्ग पर ले जा सकूं। तो ऋषि मुनियों ने कहा कि हे राम ! सबसे प्रथम वाक्य यह है कि तुम्हारे राष्ट्र में मिथ्यावाद नहीं होना चाहिए। प्रजा में जब मिथ्यावाद हो जाता है तो दूसरा मानव उसका अनुसरण करने लगता है और यह भी निश्चित है कि राजा को मिथ्यावादी नहीं होना चाहिए। जब राजा स्वयं मिथ्यवादी हो जाता है, अनुशासनहीनता जिस राजा में हो जाती है प्रजा उसका अनुसरण स्वयं

करने लगती है और प्रजा में जब उसका अनुसरण हो जाता है तो प्रजा में रक्तभरी क्रान्ति आ ही जाती है। विश्वामित्र जी ने कहा कि हे राम हम यह सदैव जानते रहते ! हैं कि राम संसार में कितना चरित्रवाद है, कितनी उसके द्वारा मानवता है, ऐसे मानव जब संसार में अवतरण हो जाते हैं तो उसके पश्चात ही यह संसार महानता को प्राप्त होता रहता है। राम ने उन महर्षियों के वाक्य को ग्रहण किया और उन्होंने कहा कि प्रभु मैं यह जानना चाहता हूँ कि मैं ऐसे राष्ट्र का अधिकारी भी हूँ या नहीं। उस समय ! ऋषि ने कहा कि हे राम यह तुम्हारा हृदय जानता है। यदि तुम्हारा हृदय इस वाक्य ! को उच्चारण करता है तो तुम राष्ट्र के अधिकारी हो यदि हृदय तुम्हारा इस वाक्य को स्वीकार नहीं कर रहा है तो वास्तव में तुम अधिकारी बन ही नहीं पाओगे। आज तुम्हें हमारे ऊपर और अपनी आत्मा के ऊपर विश्‍ास होना चाहिए क्योंकि जो अपने कर्त्तव्य को ईश्वर के ऊपर त्याग देता है उसका मानव जीवन त्रुटियों से उपराम होता रहता है। जब मानव सदैव त्रुटियों में रमण करता रहता है जिसके द्वारा अभिमान आ जाता है। वह मानव जो अपने कर्त्तव्य को करता हुआ प्रभु को स्मरण करता रहता है और अपने कार्यों को प्रभु के लिए त्याग देता है उस मानव के द्वारा प्रायः सदाचार आ ही जाता है।

मेरे प्यारे वास्तव में अपने महान !राम नतमस्तिष्क हो गये। उन्होंने कहा प्रभु !ऋषिवर ! देव की याचना करता हुआ और आपकी शरण में रहता हुआ राष्ट्र का पालन करूंगा। वास्तव में राजा का जो प्रभु होता है वह गुरू होता है परन्तु गुरू वह होना चाहिए जिसके द्वारा पक्षपात न होता हो, तपस्वी हो, आत्मवेत्ता हो, ब्रह्म का चिन्तन करने वाला हो, महान प्रभु की प्रतिभाओं को जानने वाला हो। गुरूपद चिन्हों पर चलता हुआ वह राजा अपने राष्ट्र को सदाचार के मार्ग पर ले जाता है।

तो मेरे प्यारे भगवान श्रीराम ने उनके वाक्यों को स्मरण करते हुए सर्वथा !ऋषिवर ! प्रजा में स्वयं भ्रमण किया। श्रीराम की प्रजा कैसे सुन्दर प्रत्येक गृह में यज्ञ हो रहे हैं, प्रत्येक गृहों में मानो यज्ञ की ध्वनि आ रही है, वेद मन्त्रों की ध्वनि आ रही हैं बेटा ! शंख ध्वनि होती थी। शंख ध्वनि नाम वेदवाणी का है। जिस राजा के राष्ट्र में वेदवाणी

का प्रसारण होता हो उस राष्ट्र में महानता प्रायः आ ही जाती है क्योंकि वेदों को हमारे यहाँ ईश्वरीय ज्ञान माना है। जहाँ ईश्वर का ज्ञान होता है वहाँ जो प्रभु की चेतना होती है वह प्रजा उस चेतना के ही बन्धन में रहती है और चेतना के आधार पर मानव के जीवन का निर्माण होता है। उसी निर्माण के द्वारा जो उसकी शरण में रहने वाला प्राणी होता है वह पापों उपरामता को प्राप्त होता रहता है। वह मानव एक चेतना के वशीभूत रहता है। भगवान श्रीराम ने जब अपने राष्ट्र में संस्कृति का सर्वत्र प्रसार किया। जिस राजा के राष्ट्र में संसार में सफलता को प्राप्त होता रहता है। परन्तु जिस राजा के राष्ट्र में अपना कोई विचार नहीं होता, अपनी संस्कृति नहीं होती, वह राष्ट्र कभी सफलता को प्राप्त नहीं होता। वह असफल होता रहता है अपने कर्म में। उस राजा के राष्ट्र में अनुशासनहीनता होती रहती है। रक्तभरी क्रान्तियां आती रहती हैं। वहाँ का वायुमण्डल अशुद्ध हो जाता है और वायुमण्डल के अशुद्ध होने पर वह मानव वाद अस्त व्यस्त हो जाता है।

तो मेरे प्यारे !ऋषिवर !भगवान श्रीराम ने अपनी प्रजा में भ्रमण किया और प्रजा अपने कर्त्तव्य के पालन करने में संलग्न है। कर्त्तव्यवाद का नाम ही धर्म है। जो मानव अपने कर्त्तव्य का पालन करता है वह धर्म के मर्म को जानने वाला होता है। हमारे यहाँ कर्त्तव्य किसे कहते हैं? कर्त्तव्य कैसे आता है? जिस मानव का अन्तःकरण जिस वाक्य को उच्चारण कर रहा है उस कार्य को करना कर्त्तव्यवाद कहलाया गया है। जो मानव अपने हृदय के वाक्यों की अवहेलना करता है वह मानव संसार में सफल नहीं होता है। राष्ट्र हो, प्रजा हो, मानव हो, महापुरूष हो वह संसार मं सफल नहीं होता। हृदय की जो अगम्यता होती है वह ऐसी है जो मानव को आवागमन से रहित कर देती है। हृदय ही मानव का ऐसा है जो प्रभु की चेतना से मिलान कराता है। कल मैं कुछ यौगिक वाक्य प्रकट कर संकूगा आत्मा के सम्बन्ध में। कल मेरे प्यारे महानन्द जी ! का आत्मा के सम्बन्ध में एक विचार है।

कल वेद का पाठ भी आत्मवेत्ताओं के सम्बन्ध में विचारणीय है। आज तो केवल यही कि भगवान राम ने अपने राष्ट्र में भ्रमण किया। भ्रमण करने के पश्चात् महर्षि वशिष्ठ ने

और माता अरून्धदति ने दोनों ने राम का राष्ट्र अभिषेक किया और उसको स्थान दिया आओ राम विराजो अब तुम योग्य बन गए हो क्योंकि तुमने अपने राष्ट्र को उत्तम बनाने के लिए अपने पूर्वजों को जो राष्ट्र था उसको अपनाने में, उनका जो कर्त्तव्य था वह आपने किया है इसलिए हम तुम्हारा राष्ट्र अभिषेक कर रहें है। तुमने वन मे रमण करने के पश्चात् उन भीलों को अपनाया है, द्रविड़ों को अपनाया है, आर्य बल बनाया और इस राष्ट्र को विशाल बनाया है, अपनी संस्कृति का प्रसार किया है। कहाँ नहीं किया बेटारावण आतताई का संसार में राष्ट्र हो गया था !, भगवान राम ने उसको नष्ट किया। क्या था? भगवान राम के द्वारा केवल तीन ही प्राणी तो थे, उन्होंने संसार को अपनाया। बेटाजिसके द्वारा निष्ठा होती है !, चरित्र होता है, मानवता होती है और प्रभु पर उसका विश्वास होता है, आत्मनिष्ठा उनका यह जगत एक मित्र बन जाता है।

तो मुनिवरों भगवान राम का यह संसार मित्र बन गया और मित्र बन जाने के पश्चात ! रावण आतताई को समाप्त करने के पश्चात भगवान राम अयोध्या के स्वामित्व को प्राप्त हुए। इसे को राम राज्य कहते हैं। राम राज्य का अभिप्राय है जहाँ प्रजा में प्रभु का स्मरण हो और अपने धर्म को जानने वाले प्राणी हों क्योंकि धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र का निर्माण होता है और जहाँ धर्म की रक्षा नहीं की जाती हो उसको राष्ट्र नहीं कहा जाएगा क्योंकि राष्ट्र का निर्माण ही उसी काल में हुआ था जब प्रजा में अशान्ति हो गई थी अपने अपने कर्त्तव्य को त्याग दिया गया था। कर्त्तव्यवाद में लाने के लिए, धर्म में सुगठित करने के लिए प्रजा में उसी समय राष्ट्र का निर्माण हुआ और जहाँ राजा होते हुए धर्म की अवहेलना होती हो, अकर्त्तव्यवाद आ जाता हो उस राजा को राजा उच्चारण नहीं करना चाहिए। हमारे यहाँ तो ऐसा माना गया है। महापुरूषों का कर्त्तव्य है कि उस राजा को राष्ट्र से दूर कर देना चाहिए और उत्तम निष्ठावान जितेन्द्रिय राजा को राजाधिराज बना देना चाहिए ऐसा हमारे यहाँ दर्शन शात्रियों में और वैदिक परम्परा में आता रहा है। भगवान राम अपनी राष्ट्रीयता में सफल हो गये। कैसा सुन्दर उनका राष्ट्र कि उनके यहाँ कोई भी कन्या दुराचारणी न हो, मानवता हो, मार्ग में जाने वाले प्राणी उसे सब भोजाई के तुल्य माता के तुल्य दृष्टिपात करते हों, धर्म के मर्म को

जानने वाले हों उस राजा का राष्ट्र शुद्ध होता है और जिस राजा के राष्ट्र में शोषण करने वाले प्राणी हो जाते हैं तो राष्ट्र अजीर्ण हो जाता है और अजीर्ण राष्ट्र का क्या परिणाम होता है बेटा विनाश हो जाता है। मुझे एक वार्त्ता स्मरण आती रहती है जो ! ऋषि मुनि करते रहते थे। राजाओं की परम्परा से शिक्षा देते रहे हैं कि मानव का जो यह शरीर प्रभु ने रचा है, यह ब्रह्मपुरी है, इसको विष्णुपुरी कहा है, ऋषियों ने ऋषि पुरी कहा है। राजाओं ने इसे अपनी राष्ट्र नगरी कहा है। इसी में बेटा गुप्तचर विभाग ! हैं, रक्षा विभाग है। इसी में महामन्त्री विराजमान है। जो उदान प्राण है वह सब अन्न को अपने में स्थिर कर लेता है, रस बनाना त्याग देता है, उस रस को अपने में एकत्रि कर लेता है, अपने तक ही सीमित रहता है वह इस रस सामान्य को अर्पित नहीं किया जाता जिससे हमारे शरीर में सर्वत्र इन्द्रियों में वह रस चला जाएं। मुनिवरों जब ऐसा ! नहीं होता तो मानव का क्या होता है? मानव की मृत्यु हो जाती है। मानव शरीर रूग्ण हो जाता है इसी प्रकार राजा के राष्ट्र में जब द्रव्य एकत्रित करने वाले प्राणी हो जाते हैं तो राजा के राष्ट्र में अजीर्णता हो जाती है और राजा के राष्ट्र में अजीर्ण होने का परिणाम राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति आ जाती है, मृत्यु आ जाती है इसीलिए भगवान राम को वशिष्ठ और विश्वामित्र और माता अरून्धति की शिक्षा रहती थी। वही तो राम राज्य होता है। जब एक भी मानव राजा के राष्ट्र में अन्न से पीड़ित न हो अपने कर्त्तव्य से पीड़ित न हो, वही तो राम राज्य कहलाया गया है। यह है बेटा !? हमारा आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें मैं कल प्रकट कर सकूंगा।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो। गुरुदेव वाक्य तो बड़ा सुन्दर हुआ परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म !

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य । कल समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट !बेटा......... कल कुछ हम अपने दार्शनिक विचार आत्मा के सम्बन्ध में प्रकट !करेंगे। तो मुनिवरों कर सकेंगे आज हमारा वाक्य अब समाप्‍त। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात्

हमारी वार्त्ता समाप्त। (गर्ल्स हाई स्कूल सिकन्दराबाद में को दिया हुआ प्रवचन)

१२ 27 03 1970 पुष्प 14 आत्मा सम्बन्धी चर्चा

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व के जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर ज्ञान का प्रसारण होता रहता है जिसमें उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा विराजमान रहती है।

जितना यह जगत है वह आध्यात्मिक वेत्ता हो अथवा विज्ञानवेत्ता हो वह सब परमपिता परमात्मा के अन्तर्गत रहती हैं यह जो विद्युत विज्ञान है, वायु विज्ञान है। पृथ्वी विज्ञान है, जल विज्ञान है, और अन्तरिक्ष में जो शब्दों का प्रसारण होता है वह विज्ञान है वह सब विज्ञान उस परमपिता परमात्मा के गर्भ में ही तो रमण कर रहा है। तो आओ मेरे प्यारे आज अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते चले जाएं जो हमारा देव है। !ऋषिवर ! हमें देवता बना देता है। उस प्रतिभा का एक अंकुर भी मानव को प्राप्त हो जाता है तो वह मानव से देवता बन जाता है। दैत्य से भी वह देवता बन जाता है।

हे परमात्मन्तू कितना महान है !, तेरी महानता एक एक कण में दृष्टिगत हो रही है। जब हम यह दृष्टिपात करते हैं कि तेरे परमाणुवाद में कितनी शक्ति होती है। जिससे भौतिक विज्ञानवेत्ता अपने में गौरव स्वीकार करता है कि मैंने यह कितना सुन्दर ब्रह्म अस्त्र रचाया है और शिवास्त्र, आरुणि अस्त्र, त्रिकाट अस्त्र और नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से युक्त हो गया हूँ। यह सब उस महान देव की ही तो महिमा है। प्रायः मानव यह उच्चारण करने लगता है। हमारे प्यारे महानन्द जी ने यह भी हम से कहा था कि यह जो आत्मा है यह हमारे शरीर में रमण करने वाला है और यह आत्मा केवल इसी शरीर में नहीं है, यह आत्मा नाना प्राणियों में रमण करने वाला है और यह आत्मा केवल इसी शरीर में नहीं है, यह आत्मा नाना प्राणियों में रमण करने वाला है और महान सूक्ष्म है।

हमारे द्वारा नाना प्रकार के विचार आते रहते हैं कि आत्मा को विभु माना जाता है

अथवा अणु कहते हैं इस सम्बन्ध में भी भिन्न विचार परम्परा से चले आए हैं। महर्षि वायु मुनि महाराज ने आत्मा को अणु रूप में माना है। आदित्य जी ने और अंगिरा जी ने इस आत्मा को विभु रूप में परणित किया है। महर्षि पिप्लाद ने इसको और ही कुछ रूप से माना है। उन्होंने सन्निधान मात्र से माना है। महर्षि भारद्वाज ने अणु विज्ञान का वर्णन करते हुए कुछ ऐसा कहा है कि आत्मा को विभु अथवा अणु स्वीकार किया जाएं परन्तु वायु मुनि जी का इसमें एक सिद्धान्त रहा है। महर्षि शाण्डिल्य जी ने कहा और महर्षि मुदगल जी ने ऐसा कहा है सम् भव नित्यं अश्वन्ति चेतना गृहि भू अश्णाम्। : आदित्य और दधीचि ने ऐसा कहा है कि यह जो आत्मा है। एक समय आदित्य जी ने अंगिरा जी ने कहा है कि महाराज आत्मा का स्वरूप क्या है मैं आत्मा के स्वरूप ! को जानना चाहता हूँ कि आत्मा कितना सूक्ष्म है। जब ऐसा कहा तो आदित्य जी वायु जी के समीप पहुंचे और वायु जी से कहा कि तुम आत्मा को कितना परमाणु स्वीकार करते हो। अंगुष्ठ मात्र सर्वथा स्वीकार करते हो अथवा नहीं। उन दोनों महापुरूषों के विचारों का मन्थन हुआ और मन्थन होते हुए इस विषय पर विचार विनिमय करते हुए एक मास लग गया और जब कोई भी निर्णय न हो सका, आदित्य महाराज ने कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि आत्मा ऐसा सूक्ष्म है कि जिसको हम नेत्रों से दृष्टिगत नहीं कर पाते। संसार में कितना ही भौतिक वेत्ता सूक्ष्म परमाणुओं को दृष्टिपात करने वाले यन्त्रों का निर्माण करता रहे। परन्तु जब से सृष्टि प्रारम्भ हुई आज तक कोई ऐसा यन्त्र नहीं बना है जिससे आत्मा को दृष्टिगत कर सके। वह इतना सूक्ष्म है। परन्तु कितना सूक्ष्म? ऋषि ने ऐसा कहा कि मानो हमारा जो एक केश होता है उसका अगला गोल भाग लिया जाए, उस गोल भाग के सात विभाग किए जाएं और वह जो सातवां विभाग है उसके भाग किए जाएं तो कितना सूक्ष्म वह भाग होता 99 उतना सूक्ष्म आत्मा हमारे इस शरीर में स्वीकार किया जाता है। परन्तु उसको योगी ही दृष्टिपात करते हैं।

परमाणुओं को जानने वाले, आग्नेय अस्त्र बनाने वाले चन्द्रमा में जाने वाले, मंगल में जाने वाले नाना लोक लोकान्तरों में जाने वाले वैज्ञानिक कोई ऐसा यन्त्र नहीं बना सके

जो आत्मा को दृष्टिगत कर सकें। आत्मा इतना सूक्ष्म माना गया है। आज हम जब इसके ऊपर विचार विनिमय करते हैं कि आत्मा कितना सूक्ष्म है और आत्मा इस शरीर को छोड़ कर कहाँ कहाँ भ्रमण करता है तो यह एक गहन विषय हो जाता है। मानव इस संसार में केवल भोग विलास करने नहीं आता, नाना प्रकार के ऐश्वर्य के लिए नहीं आता, मानव तो अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए, इस अन्तरात्मा को जानने के लिए ही इस संसार में आता है। जो मानव प्रभु के इस महान वैज्ञानिक क्षेत्र में आकर आत्मा के सम्बन्ध में विचार विनिमय नहीं करता वह मानव अमानव कहलाया जाता है। उत्तम मानव नहीं कहलाया जाता। प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या को इस संसार में आत्मा के ऊपर चिन्तन करना है और उसके ऊपर अपना विचार देना है क्योंकि आत्मा सदैव इस मानव शरीर में पिपासित रहती है। हम प्रारम्भ से अपने जीवन की प्रतिभा को और अन्तरात्मा को जानते चले जाएं जिससे हमारा हृदय उज्ज्वल होता चला जाएं। हम अपने जीवन को उत्तम बनाने का प्रयास करें। यह आत्मा इस शरीर को त्याग करके कहाँ जाता है, मानव के द्वारा इस नाना प्रश्न उत्पन्न होते हैं। महर्षि कपिल जी कुछ उच्चारण कर रहे हैं, व्यास जी का विचार कुछ और है, महर्षि शाण्डिल्य जी का विचार और है, महर्षि पिप्पलाद इसमें कुछ और अपनी टिप्पणियां कर रहे हैं, यमाचार्य ने इस सम्बन्ध में अपने कुछ और ही विचार दिए हैं। यमाचार्य ने नचिकेता को उपदेश देते हुए अपना बहुत सुन्दर विचार दिया। उन्होंने कहा, हे नचिकेता तुम आत्मा को ! जानना चाहते हो परन्तु यह आत्मा का विषय इतना गहन है कि इसको जानते हुए अन्त में इसे नेति नेति कहना हमारे लिए स्वाभाविक हो जाता है। आज हम तुम्हें इसका सूक्ष्म सा प्रकाश दिए देते हैं।

यमाचार्य ने कहा कि हे नचिकेता यह आत्मा इस शरीर को छोड़कर कहाँ जाता है। ! इस सम्बन्ध में नाना प्रकार के विचार देते हुए यमाचार्य ने कहा है कि जब मानव इस शरीर को त्याग देता है तो तीन प्रकार की श्रेणियां होती है। सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी यह तीन प्रकार की श्रेणियां होती हैं इन तीनों प्रकार की श्रेणियों में भी लगभग ऐसा कहा गया है। श्रेणियां रजोगुण की 103 श्रेणियां तो सतोगुण की होती है। 102

श्रेणियां तमोगुण की होती है। जैसी तैसी श्रेणी में यह आत्मा जाता 152 होती हैं और है उसी के अनुसार इसको जीवन प्राप्त होता रहता है। वही योनि प्राप्त हो जाती है। बहुत से ऐसे तुच्छ कर्म इस जीव आत्मा के साथ में होते हैं कि क्षण समय में जीवन है और क्षण समय में मरण हो जाता है। पुनरावृत्ति होती रहती है। कुछ ऐसे होते हैं जो एक वर्ष में समय मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। 36 समय जन्म लेते हैं और 36 कुछ ऐसी भी योनियां होती हैं जो एक वर्ष में जीवन और एक वर्ष में मरण होता है और ऐसी भी योनियां हैं जिनका सहस्त्रों वर्ष तक जीवन चलता रहता है। तो नाना प्रकार की योनियां हैं, परन्तु विचार विनिमय यह करना है कि यह जो मानव शरीर में आत्मा जाता है यह मानव ही रहता है अथवा किसी और योनि में इसकी पुनरावृत्ति होती है यह है, एक विषय हमारा।

तो यहाँ ऋषि कहते हैं, यमाचार्य जी ने भी कहा है और महर्षि शाण्डिल्य जी ने तो बहुत सुन्दर शब्दों में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि मानव का आत्मा नाना योनियों को कर्मों के अनुकूल प्राप्त होता रहता है और जैसी इसके द्वारा कल्पना होती है संकल्प होते हैं उसी के अनुकूल जन्मां को प्राप्त होता रहता है। वही योनियां मानव को प्राप्त होती रहती है यह कोई आश्चर्यजनक वाक्य नहीं है।

मेरे प्यारेमहानन्द जी ने ऐ !सा प्रश्न किया था कि कई प्राणी ऐसे हैं जो इस आवागमन को, इस आत्मा के शरीरों को स्वीकार नहीं कर पाते। मैं यह कहा करता हूँ कि आत्मा मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। रूपान्तर को दार्शनिक रूपों से स्वीकार नहीं करता, विचार विनिमय नहीं करता, उस मानव का सिद्धान्त अपंग होता है, वह सुन्दर नहीं कहलाया जाता है। प्रत्येक विचार मानव के मस्तिष्क में आते रहते हैं। नाना प्रकार की धाराएं मानव के मस्तिष्क में आती रहती है। एक मानव नास्तिक है परन्तु जैसा कपिल जी का सिद्धान्त और गृहणी ऋषि महाराज का सिद्धान्त था कि जो कुछ है प्रकृति है, चैतन्यवत कोई वस्तु नहीं है परन्तु जब उनसे विचार विनिमय किया जाता तो उस वाक्य को स्वीकार कर लेते थे।

उनकी एक धारा थी उसी के अनुकूल उनका जीवन को उसकी विचारधारा वास्तव में

प्रारम्भ रहती थी। आत्मा किसी भी काल में मृत्यु को प्राप्त नहीं होता यह तो नाना प्रकार की योनियों में अपने कर्मों के अनुकूल प्राप्त होता रहता है। जितनी भी योनियां हैं सबमें इसे अपने संस्कारों के अनुकूल भ्रमण करना अनिवार्य हो जाता है और कुछ ऐसा भी है जिन्हें मानव से मानव ही का जीवन प्राप्त जाता है। ऐसे भी संस्कार होते हैं।

मुनिवरोंदेखो !, आत्मा जब मृत्यु के समय इस शरीर को त्यागता है और रजोगुण ! और तमोगुण दोनों की सामान्यता होती है और तो वह मानव साधारण मनुष्य की योनि में परणित हो जाता है। मानव रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण की भी योनियां होती हैं परन्तु यहाँ ऐसा कहा गया है कि जो सतोगुण प्रधान आत्मा इस शरीर को त्यागता है वह देखो, सतोगुण के मार्ग पर लगता हुआ इस संसार में मनुष्य योनि को प्राप्त करता हुआ यह अग्रणीय बनता चला जाता है। वह मानवता को प्राप्त हो जाता है। कोई ऐसा होता है जो मानव योगाभ्यास करता है। यौगिकता में ही उसका अन्तरात्मा सतोगुण से उपरामता को प्राप्त हो जाता है वह मानो इस शरीर को त्याग देता है तो वह मानव की ऋषिवत के लिए पुनरावृत्ति हो जाती है। वह इस मार्ग को प्राप्त कर लेता है जिसमें मार्ग को त्याग दिया था। उसी मार्ग पर लग करके अपने देववत जीवन को प्राप्त होता रहता है।

तो मेरे प्यारेऋ !षिवर आज मैं इस वाक्य को गम्भीर बनाने नहीं जा रहा हूँ क्योंकि ! गम्भीर बन जाने से विचारधारा में नाना प्रकार का भेद हो जाता है उस वेदन के साथ मैं अपने विचारों को यहाँ विराम देने जा रहा हूँ। विराम देने का अभिप्राय यह है कि यह विषय ऐसा नहीं जो व्याख्या के सम्बन्ध में हो तो विचार केवल मन्थन करने का होता है और अनुसन्धान करने का होता है। विचार विनिमय इन वाक्यङ्गे। पर किया जाता है। आज तो केवल मैं अपने वाक्यों की पुनरावृत्ति करने जा रहा हूँ तो आज के वेदपाठ में आते चले आ रहे थे वह जो परमपिता परमात्मा है जो मानो इन सब योनियों का रचयिता है, करूणाधार है आज हम उस महान देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, मैं अपने प्यारे प्रभु से याचना करने के लिए तत्पर रहता हूँ कि हे प्रभु !हे देव !

हे सर्वज्ञ मैं आपकी शरण में आना चाहता हूँ !हे सच्चिदनन्द, तू अपनी आनन्दमयी लोरियों में पान करा। हे प्रभुजब तेरी शुभ महान प्रेरणा प्राप्त हो जाती है !, तेरी महानता का दिग्दर्शन हो जाता है तो प्रभु हम इस संसार सागर से पार हो जाते हैं। !
यह जो मानव शरीर है इस मानव शरीर को अपनी अपनी पुरी कहा है। विष्णु ने विष्णुपुरी कहा है। ब्रह्म ने ब्रह्मपुरी, इन्द्र ने इन्द्रपुरी कहा है। ऋषियों ने ऋषिपुरी कहा है। देवताओं ने देवतापुरी कहा है। हे प्रभु आज इस महान पुरी को जानना चाहता ! हूँ। यह कैसी विचित्र नगरी है इसमें अन्तरात्मा विराजमान है, कितना सूक्ष्म है। इस नगरी में भगवन नौ द्वार हैं। नौ द्वारों वाली जो यह पुरी है !इसमें जो रमण करने वाली वह जो रमेती करने वाली चेतना है जिसे राम कहते हैं जो प्रत्येक कण कण में रमण करने वाला है रमण धातु से राम शब्द की उत्पत्ति होती है। वह रमण करने वाला जो चैतन्य देव और यह जो अध्योध्या नाम की पुरी हमारा मानव शरीर है जिसमें यह अन्तरात्मा अपना शासन कर रहा है। हे प्रभु इस शासन वेत्ता को मैं भी जानना ! चाहता हूँ, वह कैसा सुन्दर है, वह कैसा महान है। हे प्रभु वह जो रमण करने ! वाला है इसको सबने अपनी पुरी कहा है। तो आज हम इस पुरी के ऊपर विचार विनिमय करते चले जाएं।
बेटा विष्णु ने विष्णुपुरी कहा है !क्योंकि इस आत्मा को जानते हुए सतोगुण की प्रधानता से ज्ञान में रमण करने वाला ब्रह्मवेत्ता मानव बन जाता है। बेटा वह मानव जिसमें ! सतोगुण, दूसरों के प्रति दया, नम्रता ओर ओज उत्पन्न हो जाता है वह मानव विष्णुपद को प्राप्त हो जाता है। वह तेजवान होकर के, ब्रह्मचारी बन करके विष्णु लोकों को पहुंच जाता है। इसलिए विष्णु ने इस मानव शरीर को विष्णुपुरी माना है। यह आत्मा विष्णुवत को प्राप्त हो जाता है।
ब्रह्म ने बेटा ब्रह्मणे लोका अस्वस्ती शूद्रोः आध्याम लोकाः !ब्रह्मपुरी माना है। हे ब्रह्मण ! ऐसा कहा है। ब्रह्मा उसे कहतेहैं जो चारों वेदों का महान पंडित होता है। यज्ञशाला में परणित हो जाता है।
यज्ञशाला दो प्रकार की होती है। एक बाह्य यज्ञशाला होती है एक आन्तरिक यज्ञशाला

होती है जैसा याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है कि यज्ञ के दस पात्रों को जाना जाता है। यज्ञ के दस पात्र क्या हैं? उस मेरे प्यारेप्रभु ने !, चैतन्य देव ने माता के गर्भ स्थल में जब हमारे शरीर का निर्माण किया तो निर्माणवेत्ता ने यह सुन्दर यज्ञ वेदी बनाई। कैसी सुन्दर यज्ञवेदी है? बेटाजिसमें नित्य प्रति विचारों का यज्ञ होता है !, विचारों की सुगन्धि उत्पन्न होती रहती है। अविचारों की दुर्गन्ध उत्पन्न होती रहती है बेटा यह कितनी सुन्दर यज्ञवेदी है। याज्ञवल्क्य जी ने कहा है आज यदि इस संसार ! से उपराम होना चाहते हैं तो जो हमारे दस पात्र हैं, पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां हैं और इन पात्रों का होता जो आहुति दे रहा है वह आन्तरिक प्रवृत्तियां हैं वह अकृत हैं मानो वह मन और बुद्धि हैं जो होता बन रहे हैं इस यज्ञशाला में आहुति दे रहे हैं। ब्रह्मा कौन है? वह जो परमपिता परमात्मा है वह ब्रह्म चैतन्य देव है और आत्मा इस शरीर में यज्ञमान बना हुआ है जो यज्ञ करा रहा है। कितना सुन्दर यज्ञ हो रहा है। यह आन्तरिक यज्ञ कहलाया गया है जैसे ब्रह्म यज्ञ होता है उसमें एक ब्रह्म, एक होता अध्वर्यु और उद्गाता होते हैं, नाना प्रकार की वनस्पतियों को लेकर के उनकी सामग्री बना करके आहुति दी जाती है, स्वाहा कहा जाता है इसी प्रकार जैसे ब्राह्म यज्ञ करने वाला नाना प्रकार की सुगन्धियुक्त आहुति देता है और वह इस जगत को सुगन्धि देता है, परमाणुवाद को सुन्दर बनाती है। इसी प्रकार जो मानव आन्तरिक यज्ञ करने वाला है, अपनी नाना प्रकार की इन्द्रियों के यज्ञ के दस पात्रों के जो विषय हैं उनको लेकर के उनकी सामग्री बना ली जाती है और उनकी सामग्री बना करके वह जो हृदय रूपी यज्ञशाला है जब उसमें अपने इन्द्रियों के विषयों की आहुति दी जाती है, स्वाहा कह दिया जाता है तो वह कितना सुन्दर यज्ञ है। वह मानव इस संसार में ब्रह्म कहलाता है। तो आज हमें संसार में ब्रह्म बनना है। इस शरीर को ब्रह्मा ने ब्रह्मपुरी माना है। ऋषियों ने ऋषिपुरी माना है।

कैसा सुन्दर यज्ञ हो रहा है, कैसी सुन्दर यज्ञवेदी मेरे प्रभु ने बनायी है। संसार का विज्ञान इसमें ओत प्रोत करा दिया। कितना सुन्दर विज्ञान है बेटा आज जो मानव ! लोक लोकान्तरों को जानना चाहता हैतो अपनी आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाए। ब्रह्मरन्ध्र

में लगभग एक सहस्त्र नाड़ियां होती हैं और उन एक सहस्त्र नाड़ियों में से लगभग 64 नाड़ियों का निकास हो रहा है जिन नाड़ियों का सम्बन्ध लगभग देखो 65, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों से होता है। जिस योगी का आत्मा ब्रह्मरन्ध्र में दर्शन करने वाला होता है देखो, लघु मस्तिष्क अकान्त मस्तिष्क और ब्रह्मरन्ध्र में जब आत्मा परणित हो जाता है उस समय संसार का कोई लोक ऐसा नहीं है जो वह आत्मा दिग्दर्शन करा सकता हो।

तो मेरे प्यारे आज मैं यौगिक वाक्यज्ञै। को इतना महत्व नहीं देना चाहता !ऋषिवर ! हूँ और न मैं उस विषय को लेना चाहता हूँ। केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम इस मानव शरीर को ब्रह्मपुरी स्वीकार करें और इसमें विचारों का यज्ञ करते रहें। दुर्गन्धियों का यज्ञ न करें। हम ऐसे विचार न बनायें जिससे अशुद्ध संस्कारों का जन्म हो करके हम नाना प्रकार की तमोगुणी योनियों को प्राप्त होते रहें। हमें देववत योनियों को प्राप्त होने वाले संस्कारों को जन्म देना है। वास्तव में तो जन्म देना ही नहीं चाहिए। यह ¬ के सर्वश रहस्य को जानने वाला प्राणी होता है जिसका अन्तरात्मा हृदय रूपी गुफा में यज्ञ करने वाला होता है, इन्द्रियों के विषयों का यज्ञ करने लगता है।

जैसे विष्णु ने विष्णुपुरी माना है इसी प्रकार इस मानव शरीर को इन्द्रपुरी माना है। इन्द्र किसे कहा जाता है? इन्द्र नाम है जो अपनी इन्द्रियों का स्वामी है, देवताओं का स्वामी है। देवताओं का अधिराज है। कैसा सुन्दर वह इन्द्र है? इस आत्मा को भी इन्द्र कहा जाता है। यह आत्मा उस काल में इन्द्र होता है जब यह देवताओं को प्राप्त हो जाता है। देवता किसे कहते हैं बेटाकुछ जड़ देवता होते हैं !, कुछ चेतन देवता होते हैं। दोनों प्रकार के देवताओं को जानता हुआ और इस आत्मा को सब देवता अपना अधिराज चुनें। उस काल में इस आत्मा को हमारे यहाँ इन्द्र कहा गया है और इस शरीर को जिसमें रहने वाला इन्द्र है इन्द्रपुरी कहा गया है। बेटा ऋषियों ने ऋषिपुरी ! माना है क्योंकि इसमें ऋषिवर अनुसन्धान करते हैं। कैसा अनुसन्धान करते हैं कहीं योग का अनुसन्धान है, कहीं आयुर्वेद का अनुसन्धान है। अनुसन्धान करते रहते हैं और

मृत्यु से पार होने का प्रयास करते रहते हैं। ऋषियों का कर्त्तव्य यही होता है कि अपना योगाभ्यास करते हुए, अपने अन्तरात्मा को उज्ज्वल बना लेते हैं और आहुति देते हैं। सुन्दर इन्द्रियों के विषयों की आहुति देकर के अपने ऋषित्व को प्राप्त हो जाते हैं।

आज के वेदपाठ में अहिल्या शब्द आ रहा था। अहिल्या नाम इस आत्मा को कहते हैं जो अन्धकार को नष्ट कर देती है मानव को प्रकाश में ला देती है। बेटा जो प्रकाश ! में लाने वाली हो, अन्धकार को नष्ट करने वाली हो उसी का नाम अहिल्या कहा गया है। आज मैं अहिल्या की मीमांसा करने नहीं, केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। अहिल्या नाम पृथ्वी का भी है जिसके गर्भ में जाकर भौतिक वैज्ञानिक खनिज और खाद्य को जानते हुए राष्ट्रीयता को और भी अपने मानवत्व दोनों को उज्ज्वल बना देते हैं।

तो मेरे प्यारे आज मैं तुम्हें दिग्दर्शन करा रहाहूँ कि प्रभु ने कितना सुन्दर !ऋषिवर ! यह जगत रचा है। जिसमें नाना लोक लोकान्तर हैं, नाना सूर्य हैं, नाना इन्द्र हैं, नाना चन्द्र हैं, नाना ध्रुव हैं, नाना नक्षत्र हैं, उस मेरे प्यारे प्रभु ने कितना सुन्दर यह ! जगत मेरे उस प्यारे प्रभु ने संकल्प मात्र से रचा है। यह केवल संकल्प है प्रभु का। संकल्पों के आधार पर यह मानव जीवन स्थिर हो रहा है। राष्ट्र के राष्ट्र स्थिर हो रहे हैं। एक मानव अपनी पुत्री को पुत्री कह रहा है। क्यों कह रहा है? क्योंकि पिता का उसमें संकल्प है। मेरी प्यारी माता अपने पति को पति उच्चारण करती है उसमें उसका संकल्प है। यदि संकल्प हीं होता तो यह संसार जो विचित्र दृष्टिगत आ रहा है यह मुझे दृष्टिगत नहीं आ सकता था।

मेरे प्यारे यह जो सर्वश जगत है यह एक प्रकार का कल्पवृक्ष है। यहाँ !ऋषिवर ! मानव आता है उज्ज्वल कल्पना करने के लिए ऊँचा संकल्पवादी बनने के लिए। यहाँ संसार में, प्रभु के संकल्प क्षेत्र में आए हो तो तुम्हें कोई न कोई संकल्प करना है इसलिए इस संसार में महान से महान संकल्प क्यों नहीं करना चाहते। यहाँ अशुद्ध संस्कार क्यों बनाते हो। इस संसार में आए हो तो महान से महान संकल्प करो। यहाँ नाना प्रकार के अशुद्ध संकल्प करोगे तो अशुद्धवाद को प्राप्त होते रहोगे। यह जो सर्वश

जगत है, ब्रह्मपुरी कहो, विष्णुपुरी कहो, ऋषिपुरी कहो, इन्द्रपुरी कहो, मानवपुरी भी उच्चारण कर सकते हो और देवताओं की पुरी भी उच्चारण कर सकते हो परन्तु यह संसार है क्या जो नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों वाला है? यह संसार एक प्रकार का कल्पवृक्ष है। इसमें ऊँची कल्पना करो। यह परमात्मा का रचाया हुआ एक सुन्दर वृक्ष है इस वृक्ष के नीचे आकर के तुम महान से महान कल्पना करो। मानव इस संसार में आया है कल्पना करने के लिए। भोग विलासों की वह भी कल्पना है और महान आत्मा के जानने की वह भी कल्पना है तो ऋषि कहते हैं कि हे मानव तू महान से महान ! कल्पना को कर। वह कल्पनावादी बन जिससे तू इस संस ार में महान और पवित्र बनता चला जाएं।

यह है बेटा आज का हमारा वाक्य। आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं ! आया। मैं कुछ आत्मा के विषय को लेकर के चला नाना प्रकार की और वार्त्ताओं को ले करके चला। आत्मा इस शरीर को त्याग करके कहाँ जाता है यह गहन विषय था मैंने इसको उच्चारण नहीं किया क्योंकि इसको मैंने किसी काल में उच्चारण भी कर दिया था। मुझे समय मिलेगा तो मैं कल इसके ऊपर सूक्ष्म विचार प्रकट कर सकूंगा कि आत्मा शरीर को त्याग करके कहाँ जाता है। यह भारद्वाज संहिता का पठन पाठन चल रहा है इसमें महर्षि भारद्वाज का वैज्ञानिक विचार है उस विज्ञान के आधार पर मैंने कुछ अपने विचारों की टिप्पणियां की प्रकट की हैं। वास्तव में हम इतने योग्य तो नहीं कि हम पुनः इसकी भव्य व्याख्या कर सकें। यह जगत है इसके ऊपर प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या को विचार विनिमय करना है। हम अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए, मानवत्व को सुन्दर बनाने के लिए, और अपनी अन्तरात्मा को जानने के लिए इस संसार में आए हैं। संसार का कार्य भी करो, परन्तु आत्मा को भी भोजन देने का प्रयास करो और ऊँचे संस्कारों को जन्म दो जिससे तुम्हारा जीवन सुन्दर बने और आगे तुम्हारी आत्मा की पुनरूक्ति ऊँची बने और आगे तुम्हारी आत्मा की पुनरूक्ति ऊँची बनती चली जाएं। यह है बेटा आज का हमारा वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा !

तो शेष चर्चायें कल प्रकट कर सकूंगा।

पूज्य महानन्द जीः भगवनआज का आपका वाक्य तो बहुत ही प्रिय था !, विषय भी बहुत गम्भीर था परन्तु समय था बड़ा सूक्ष्म।

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटा कल समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे। !

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन् जैसी आपकी इच्छा। परन्तु कल सूक्ष्म सा विचार ! विनिमय करने का समय प्रदान कीजिए।

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा बेटाजैसा भी कल समय होगा ! उसके अनुकूल वाक्य प्रकट करेंगे।

तो मुनिवरों आज का वाक् अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। शेष चर्चायें कल प्रकट ! गुजराती विद्या मन्दिर) करेंगे यदि समय मिलेगा। अब वेदों का पाठ होगा।, जीरा सिकन्दराबाद में दिया गया प्रवचन(

१३ 12 08 1970 पुष्प 14 तप के लिए मन का शोधन

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, जब हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाने के लिए तत्पर होते हैं तो हृदय गद् गद् होने लगता है। हम यह अनुभव करने लगते हैं कि वह जो मेरा प्यारा प्रभु ज्ञान स्वरूप है विज्ञान स्वरूप कहा जाता है उस महान प्रभु को अन्तरात्मा में, उस हृदय रूपी गुफा में अनुभव करने वाले बनें। उसकी चेतना का जो हमें दर्शन होता है वह हृदय रूपी गुफा में होता है।

संसार में जितना भी जीवनवाद है वह सर्वत्र व्यापकवाद में रहता है। इसलिए जब हम परमात्मा को व्यापकवाद में दृष्टिपात नहीं करते तब हमारे जीवन में महानता का दिग्दर्शन नहीं होता और न उस परमापिता परमात्मा की चेतना को ही दृष्टिपात कर पाते हैं।

आज के वेद पाठ में कहीं राष्ट्र का वर्णन आ रहा था। कहीं त्रयी विद्या का वर्णन आ रहा था, कहीं मानव के लिए मानवत्व का सुन्दर उपदेश आ रहा था। आज हम अपने जीवन में एक महान वैज्ञानिक स्वरूप को दृष्टिपात करते चले जाएं। संसार में

विज्ञानवेत्ताओं ने कहा है, आपो रशिदम ब्रह्म लोकय प्रभा अश्वन्तम् वायुस अन्नतनम् प्राणः उद्गत् प्रभो आश्वानम् वृधि रूद्राः आचार्य कहता है कि इस प्राण का बिछौना क्या है? तो ऋषि ने उत्तर दिया है कि प्राण का जो बिछौना है वह जल माना गया है जिसको हम आपो कहते हैं। प्राणों के आँगन में रमण करने वाला जल ही ऐसा है जो विद्युत को शान्त करने वाला है, अग्नि को सान्त्वना देने वाला है। अग्नि का बिछौना भी जल माना गया है।

जब परमापिता परमात्मा ने सृष्टि का प्रारम्भ किया था उस समय पृथ्वी को रचने से पूर्व मेरे प्यारे प्रभु ने मेखला बनाई। मेखला का अभिप्राय क्या है कि समुद्र रूपी ! मेखला बनाई। यदि आज समुद्र न होता तो मानव जीवन भी नहीं होता। इसलिए हमें अनुसन्धान करना है कि वह जो अनन्त प्रभु है उसने मानव जीवन के लिए, पृथ्वी की रक्षा करने के लिए यज्ञशाला के निकट जो भी विष उगला करती है उसको निगलने वाला समुद्र कहलाया है, जल कहलाता है, आपो कहलाता है। इसलिए हमें आपो को जानना है।

जब भी विज्ञानवेत्ता नाना प्रकार का निर्माण करते हैं वहाँ भी आपो ही होता है। अग्नि का संरक्षण करने वाला जल कहलाता है। एक समय जब महाराज सिलक ने महर्षि दालम्य जी से कहा था कि महाराज मैं यह जानना चाहता हूँ कि इन प्राणों का ! बिछौना क्या है? प्राणों के द्वारा रमण करने वाली कौन सी सत्ता है। उस समय ऋषि ने कहा, ब्रह्मा आपो लोकाः वह आपो है, जल है। यही तो प्राणों का बिछौनों कहलाता है। अन्नादम ब्रह्मे लोकाः अन्न में सत्ता प्रदान करने वाला यह आपो ही कहलाया जाता है। आचार्य जनों ने कहा है कि यह जो आपो है जिसको हम जल कहते हैं यह प्राणों का बिछौना इसलिए कहलाया जाता है क्योंकि श्वासों की गति में जो परमाणु आता है वह जल के परमाणु होते हैं। यदि केवल अग्नि के ही परमाणु हों, वायु के ही परमाणु हों तो मानव जीवित न रह सकेगा। वायु का जो अपना मौलिक गुण है वह तो ऊषाग्रत कहलाया जाता है। प्राणों का बिछौना जल कहलाया गया है परन्तु ऋषि ने कहा कि प्राणों ओढ़ना क्या है? ऊपर लेने का वस्त्र क्या है? उसे अन्न कहा है क्योंकि अन्न और

जल दोनों ही एक दूसरे प्राणो के संरक्षणाता में प्राणों का शोधन करने वाला एक सर्वरूप से आपो कहलाया जाता है। जहाँ भी ऊँचे से ऊँचा उद्योग कार्य चलता है वहाँ नाना प्रकार के परमाणुओं से यन्त्रालय बनाएं जाते हैं परन्तु यह विद्युत का स्वरूप होता है, नाना प्रकार की आकर्षण शक्ति लेकर के परन्तु जल की उसमें पुट होती है, जल उसको शीतल बनाता है यदि जल उसको शीतल नहीं बनाएंगा तो वह उस योग्य भी संसार को नहीं रह सकेगा इसलिए आज हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते ! हुए उच्चारण करते चले जाएं कि वह प्रभु कितना अनन्त है जिसके ऊपर लेखकों ने नाना लेखनी बद्ध की है। मैं उन वाक्यों की पुनरूक्ति नहीं देना चाहता हूँ।

हमारा वेद कह रहा है कि मानव को तपना चाहिए जैसे आपो तपता है। प्राण अपनी गति से रमण कर रहा है, सूर्य अन्तरिक्ष में तप रहा है, चन्द्रमा तप रहा है, पवित्र माता तपा करती है इसी प्रकार प्रत्येक मानव को संसार में तपना चाहिए। जब मानव तपस्या में परणित हो जाता है तो उसके जीवन में उद्बुद्धता अती है उद्गमता आती है इसलिए जो तपा हुआ प्राणी होता है वही यज्ञशाला में उदगांता कहलाया जाता है, अध्वर्यु कहलाता है। इसीलिए आज हमे संसार में तपस्या परणित हो जाना चाहिए। जब समुद्र तपायमान होते हैं जो समुद्रों से सुदंर आभा उत्पन्न होती है, मानव की जीवन सुदंर हो जाता है। मेरी प्यारी माता यह विचार करने लगती हैं कि यह मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक है, यह मेरा पुत्र है। परन्तु आज भी वह तेरा पुत्र ही नहीं है वह समाज का है, राष्ट्र का है, संसार का है और भी नहीं तो अन्तरिक्ष में जाने वाला प्रिय बालक है। आज मेरी प्यारी माता अपने पुत्र को जन्म दे सकती है परन्तु मृत्यु को प्राप्त नहीं करा सकती क्योंकि उसका अधिकार कुछ नहीं रह पाता। यह संपदा केवल माता की ही नहीं है वह तो प्रभुकी संपदा है !, जनता जनर्दन की संपदा कहलाती है इसलिए माता को केवल तपने का अधिकार है तप का खण्डन करना अपराध करना है यह माता का अधिकार नहीं हो पाता। हे मेरी प्यारी माता जब तू अपने कर्त्तव्य का पालन करती है, तेरी महानता सूर्य के सदृश प्रकाशमान हो जाती है। मुझे माता मन्दालसा का जीवन स्मरण आता रहता है। माता मन्दालसा ने अपने प्यारे पुत्रों को अपने गर्भ !

स्थल में ब्रह्मवेत्ता बना दिया था।

एक समय त्रेताकाल में महर्षि याज्ञवलक्य महाराज अपने आसन पर विराजमान थे। वह ब्रह्मचारियों के मध्य में तप की मीमांसा कर रहे थे। ब्रह्मचारियों से बोले कि हे ब्रह्मचारियों मेर ऐसी इच्छा है कि मैं तपने के लिए जा रहा हूँ। ब्रह्मचारियों ने कहा ! यह त !कि हे भगवनो आपकी इच्छा है परन्तु हमारी शिक्षा का क्या बनेगा? उन्होंने कहा कि मेरे आश्रम के जो अग्नि देवता है, आपो देवता है यह तुम्हें ज्ञान का प्रतीक बन करके रहेंगे इसीलिए इनका अन्वेषण करना, विचार विनिमय करना तुम्हारा कर्त्तव्य कहलाया जाता है। जैसा जाबाला पुत्र सत्यकाम को यज्ञशाला की अग्नि से ही ज्ञान का प्रतीक बन गई थी कौशल ब्रह्मचारी के लिए गृह की तीन अग्नियां ही गार्हपत्य, वैष्वानर और आरण्य नाम की अग्नि ही तुम्हारे लिए ज्ञान का प्रतीक बन करके रहेगी। ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु जैसी आपकी इच्छा। !

महर्षि याज्ञवलक्य ने वहाँ से प्रस्थान किया। अपने मन में यह विचारा कि मैं तपने के लिए जा रहा हूँ परन्तु मेरी दो पत्नियां हैं एक का नाम कात्यायनी है दूसरे का नाम मैत्रेयी कहलाता है। मुझे दोनों की शिक्षा देनी है, दोनों को प्रसन्न करना है। भ्रमण करते हुए वह अपने गृह आश्रम में प्रविष्ट हो गये। सबसे प्रथम वह कात्यायनी के द्वार जा पहुंचे। ऋषि पत्नी ने अपने स्वामी का स्वागत किया। वह विराजमान हो गये। ऋषि ने पूछा कि आनन्द हो? ऋषि पत्नी ने कहा यह तो आपकी अनुपम कृपा है जब तक आपकी अनुपम कृपा है तब तक हैं आनन्द ही आनन्द प्राप्त होता रहता है। कात्यायनी ने कहा कि भगवन आज तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपका जो अन्तरात्मा है ! मैंने वेद में !वह कुछ और पुकार कर रहा है उसको उच्चारण करो। ऋषि ने कहा देवी सत्य की बड़ी मीमांसा श्रवण की है। मेरा हृदय यह पुकार कर रहा है मैं तप के लिए जा रहा हूँ तुम्हारी क्या इच्छा है? ऋषि पत्नी ने कहा भगवन उस पत्नी का बड़ा ! सौभाग्य होता है जब पति तपस्वी बन जाता है, त्यागी बन जाता है, महापुरूष बन जाता है। मेरा हृदय तो यह वाक्य उच्चारण करते ही गदगद हो रहा है इसलिए भगवन ! आप तप के लिए अवश्य जाइये। कात्यायनी के उन वचनों को पान करके ऋषि का

हृदय गदगद हो गया। ऋषि ने कहा कि वास्तव में यह तो विदुषी है। त्यागी और तपस्विनी है।

कात्यायनी के गृह को त्याग करके वह मैत्रेयी के द्वार पर जा पहुंचे। महारानी मैत्रेयी ने उसी प्रकार उनका स्वागत किया। विराजमान होने के पश्चात् देवी ने कहा कि भगवन ! वास्तव में !मुझे आपका चित्त प्रसन्न प्रतीत नहीं हो रहा है। ऋषि ने कहा कि हे देवी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है क्योंकि मैं तप करने के लिए आया हूँ। तुम्हारी क्या आज्ञा है? मैं तुम्हें प्रसन्न करने आया हूँ क्योंकि तपस्या करना मानव का परम धर्म कहलाता है। उस समय मैत्रेयी ने कहा कि भगवन यह आप क्या उच्चारण कर रहे हैं क्योंकि ! पत्नी का तो प्रति एक ईश्वर के तुल्य होता है, आप तो मेरे एक ईश्वर हैं आप तप के लिए जा रहे हैं मेरा क्या बनेगा? ऋषि बोले हे देवी यह तुम क्या उच्चारण कर रही ! हो। पति संसार में कदापि एक ईश्वर नहीं होता क्योंकि आज पत्नी रूग्ण हो जाती है तो पति कदापि पत्नी को स्वस्थ नहीं कर सकता। ाज पत्नी मृत्यु को प्राप्त हो रही है तो पति पत्नी को प्राण नहीं दे सकते, वायु प्रदान नहीं कर सकते। आज पति की एक ईश्वर से कैसे तुलना की जा सकती है। यह तुम्हारा वाक्य मेरे आँगन में नहीं आ रहा है। हे देवी पत्नी जो होती है वह पति के लिए पत्नी होती है किन्तु अपने लिए पत्नी ! कदापि नहीं कहलाती। आज मैं तुम्हारे लिए पति हूँ परन्तु मैं स्वयं अपने लिए पति कदापि नहीं हूँ। तुम्हारे लिए स्वामीवत कहलाता हूँ। पुत्र है वह माता पिता के लिए पुत्र कहलाता है अपने लिए वह स्वयं पुत्र नहीं होता। इसलिए हे देवी संसार में जो कुछ ! भी होता है अपने लिए होता है। आज गृह बनवाता है, बड़ा सुन्दर भवन है, उसमें ओत प्रोत भी हो गया है और कहता है कि यह मेरा भवन है परन्तु मेरे लिए ही तो भवन है। भवन के लिए भवन नहीं है यह मेरे लिए ही भवन है इसलिए देवी संसार में ! मानव जो भी कार्य करता है वह अपने लिए ही करता है। आज कोई मानव दुराचार की मात्रा में परणित हो जाता है तो अपने लिए। संसार इसलिए उसकी निन्दा करता है क्योंकि वह संसार की संपदा होती है, वह परमात्मा की देन उसे होती है इसलिए संसार उसी निन्दा और स्तुति करता रहता है, हे देवी तुमने वाक्य उच्चारण करने से !

पूर्व यह कदापि नहीं विचारा कि पति कदापि भी पत्नी का एक ईश्वर नहीं होता इसलिए आज मैं भी तुम्हारे लिए एक ईश्वर नहीं होता इसलिए आज मैं भी तुम्हारे लिए एक ईश्वर नहीं हूँ। यह तो ऐसा जगत है, स्वार्थवाद में मानव परणित हो रहा है। त्याग, तपस्या और मानवीयता यह स्वयं मानव के साथ जाती रहती है आत्मा ने किसी का पत्नी होता है न किसी का पुत्र होता है। यह तो जैसा आकुंचन शक्ति से यह मानव शरीर सुगठित हुआ है नाना प्रकार के परमाणुओं से, इसमें चैतन्य आत्मा है तत्त्वों का गुण है, इस चेतना के कारण यह नाना कृतियों में मोह की उत्पत्ति हो जाती है। हे ऋषि कन्या आज !तुम्हें यह ज्ञान हो गया होगा कि संसार में जो भी मानव कर्म करता है वह अपने लिए करता है। एक राजा है वह अपने राष्ट्र को उन्नत बनाता है, पवित्र बनाता है उसके कारण दूसरे प्राणी कर्त्तव्य में परणित हो जाते हैं परन्तु जो भी कर्म करता है वह राजाधिराज की प्रशंसा के लिए करता है, वह अपने लिए किया करता है। हे देवी हमें विचार विनिमय करना है कि जो भी मानव कर्म करता है वह अपने ! लिए करता है इसलिए तुम्हारा यह वाक्य उच्चारण करना व्यर्थ हो जाता है।

ऋषि पत्नी ने अन्त में यह स्वीकार कर लिया कि प्रभुवास्तव में मैं अन्धकार में ! थी आप प्रकाश में रमण करने वाले स्वामी हैं। हे भगवन आप त्यागी और तपस्वी हैं ! इसलिए हम भी त्याग और तपस्या में परणित होगें। आप स्वयं यहाँ से तपस्या के लिए प्रस्थान कीजिए।

जब ऋषि पत्नी प्रसन्न हो गई तो महर्षि याज्ञवलक्य महाराज ने अपना प्रस्थान कर दिया और भयंकर वन में जा पहुंचे। वहाँ पहुंचकर उन्होंने विचार कि मैं आज्ञा तो पाकर आया हूँ परन्तु आज्ञा से पूर्व एक वाक्य और कहा था कि द्रव्य का बंटवारा किया जाएं कात्यायनी और मैत्रेयी ने कहा कि प्रभु हमें बंटावारा नहीं चाहिए। हम तपस्विनी ! बनेंगे। यह वाक्य उच्चारण करके जब भयंकर वन में पहुंचे तो विचारा कि मैं वन में तो आ गया हूँ, मुझे तपस्या करनी है। महानता में परणित होना है और मुझे कैसे तपस्वी बनना है। विचार के लिए संसार में मन की आवश्यकता है। मन को पवित्र बनाने के लिए मन का शोधन किया। शोधन क्या होता है? मन को शोधन करने के लिए अन्न

की आवश्यकता होती है। उन्होंने विचारा कि मुझे कौन से अन्न को पान करना है। ऋषि ने विचार जिस भूमि में से कृषक अपने गृह को अन्न ले जाते हैं और वह अन्न जो भूमि में पड़ा हुआ बच जाता है उस अन्न को मुझे चुनना है, उसी का आहार करना है, उसी से मेरा मन वास्तव में सुन्दर बन जाएगा। ऋषि ने संकल्प धारण कर लिया और उस अन्न को चुनना आरम्भ कर दिया जिसको सिला अन्न कहते हैं उसी का पान करने से उनका मन अच्छी प्रकार शोधन हो गया।

मन को शोधन करने के लिए अन्न की आवश्कता होती है। ऐसा कहा जाता है कि परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में सात प्रकार के अन्नों की उत्पत्ति की है जिसकी मीमांसा मैं कल कर सकूंगा। आज मुझे समय आज्ञा नहीं दे रहा है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसी प्रकार बारह वर्ष की तपस्या की। उस अन्न को पान किया, इन्द्रियों को संयम में किया। बारह वर्ष के पश्चात् उन्होंने एक पोथी का निर्माण किया जिस पोथी का नाम शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है। याज्ञवलक्य जी कहते हैं कि ब्राह्मण कौन होता है जो सत का पथिक होता है जो सत की वार्त्ता स्वीकार कर लेता है। सत का पथिक वह होता है जिसका न मान होता है न अपमान होता है। मुझे स्मरण है जब जाबाला पुत्र सत्यकाम महर्षि गौतम आश्रम में प्रविष्ट हुए उस समय आचार्य ने कहा कि तुम्हारा गौत्र क्या है और जब उन्होंने यथार्थ वाक्य प्रकट किया तो ऋषि ने कहा कि सत्यकाम तुम तो ब्राह्मण हो जिसे सत उच्चारण करने में मान अपमान न हो, उसको ब्राह्मण कहा जाता है।

ब्राह्मण उसे कहते हैं जो ब्राह्म में चरता है, सत्यवादी होता है क्योंकि सत में ही ब्रह्म ओत प्रोत रहता है। जहाँ सत होता है वहीं ब्रह्म होता है, जहाँ सत होता है वहीं ऋत होता है, जहाँ ऋत होता है वहीं सत की प्रतिष्ठा होती है। ऋत और सत दोनों ब्रह्म के अंग कहलाए गएं हैं इसलिए ब्रह्म को जानना है तो सत्यवादी बनो ऐसा आचार्य ने वर्णन करते हुए कहा है।

शतपथ नाम की पोथी का निर्माण करते हुए उन्होंने अपने प्रथम पृष्ठों में एक वार्त्ता प्रकट की है कि एक समय दैत्य और देवताओं का महान संग्राम हो गया। ऐसा विशाल संग्राम

हुआ कि देवताओं ने दैत्यों को विजय कर लिया। देवताओं में एक महानता ओत प्रोत होने लगी और प्रत्येक के हृदय में आनन्द की प्रतिभा ओत प्रोत हो गई। ऐसा कहा जाता है कि एक समय देवताओं की सभा में वृष का जन्म हो गया वृष के मुखारविन्द से एक ध्वनि का जन्म होता था उस ध्वनि को जो भी मानव श्रवण करता था वही देवता बन जाता था। जब यह संसार देवता बनने लगा तो कहा जाता है कि दैत्यों की सभा हुई। महाराजा विरोचन को दैत्यों ने निमन्त्रण दिया और प्रार्थना की कि देवताओं की सभा में एक वृष का जन्म हुआ है, उसके मुखारविन्द से एक ध्वनि का जन्म होता है जो भी ध्वनि को श्रवण करता है वही देवता बन जाता है। यह संसार जब देवता बनता चला जा रहा है हम दैत्यों का क्या बनेगा।

विरोचन जी ने कहा कि हे दैत्यों शुम्भ जी जाओ इस वृष को छला जाएं जिसके ! मुखारविन्द से ध्वनि उत्पन्न होती है। कहा जाता है उस समय शुम्भ नि‍िसुम्भ रक्तबीज तीनों दैत्यों ने क्रियात्मक कर्म करने के लिए कार्यक्रम बनाया कि वृष को छलेंगे।

वृष को छलने के लिए उन्होंने महाराज विरोचन की आज्ञा पा करके वहाँ से प्रस्थान कर लिया। तब वह वृष के द्वार आए तो वृष को यह ज्ञान हो गया था कि तू आज दैत्यों के द्वारा छला जाएगा। महाराजा वृष ने उस समय अपनी ध्वनि रेणुका को अर्पित कर दी। वह ध्वनि रेणुका में प्रतिष्ठित हो गई और वृष को दैत्यों ने छल दिया। जब दैत्य उस महान वृष को छल लाए और विरोचन के समुख लाए तो महाराजा विरोचन ने उसको मन्थन किया। मन्थन करने के पश्चात उसमें वह ध्वनि नहीं थी जिससे यह देवता बनता था वह ध्वनि जब न रही तो उन्होंने कहा कि वह ध्वनि कहाँ गई। महाराजा विरोचन ने का कि हे दैत्यों वह ध्वनि तो रेणुका के द्वार चली गई। अब रेणुका को छलने के लिए शुम्भ निशुम्भ व रक्त बीज तीनों ने प्रस्थान कर लिया। रेणुका को यह भी ज्ञान हो गया था कि तू आज दैत्य के द्वारा छली जाएगी। उस समय रेणुका ने उस ध्वनि को अग्नि के द्वारा अर्पित कर दिया। रेणुका को दैत्यों ने छल लिया और सभा में लाया गया तो महाराजा विरोचन ने उसका मन्थन किया। मन्थन करने के पश्चात उसमें भी वह ध्वनि नहीं थी जिससे यह संसार देवता बनता था। दैत्यों ने कहा कि वह ध्वनि

कहाँ गई। वह ध्वनि तो अग्नि में अर्पित हो गई है। उन्होंने अग्नि को छलने के लिए प्रस्थान किया तो अग्नि को भी यह ज्ञान हो गया आज तू दैत्यां के द्वारा छली जाएगी। उस समय अग्नि ने उस ध्वनि को यज्ञ के दस पात्रों में परणित कर दिया। अग्नि को दैत्यों ने छल लिया। राजा विरोचन के द्वारा उस महान अग्नि का मन्थन हुआ, विचार विनिमय हुआ उसमें वह ध्वनि नहीं थी जिससे यह संसार देवता बनता था। दैत्यों ने पूछा कि ध्वनि कहाँ गई तो कहा कि वह ध्वनि यज्ञ के दस पात्रों में परणित हो गई है अब तुम उस ध्वनि को अपने द्वारा अर्पित नहीं कर सकोगे।

विचार विनिमय करने का अभिप्राय यह है कि याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने शतपथ नाम की पोथी में इन वाक्यों का वर्णन किया है परन्तु उनके वाक्यों का अभिप्राय क्या है। वृष क्या है, रेणुका क्या है, अग्नि क्या है इसका विश्लेषण करते हुए महर्षि याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने कहा कि जब यह मानव की प्रकृति देववत् बन जाती है उस समय मन भी पवित्र होता है। हमारे यहाँ कहा जाता है कि वह दैत्यों पर विजय करने वाली मानव की प्रवृत्तियां होती हैं। वृष नाम मन कहा गया है। यह जो मन है इसके मुखारविन्द से पवित्रता में एक ध्वनि उत्पन्न होती है जिसको धर्म कहा जाता है। जब मनीराम के मुखारविन्द से ध्वनि का जन्म होता है उस ध्वनि को धर्म कहते हैं। अब शुम्भ निशुम्भ और रक्तबीज नाम तृष्णा का है, शुम्भ निशुम्भ मान अपमान को कहा गया है, अभिमान का नाम विरोचन कहा गया है मानो यह हमारे शरीर में देवासुर संग्राम है। उससे वह जो देवासुर संग्राम है उसको सान्त्वना देने के लिए आज हमें देववत् बनने की आवश्यकता है। जब इस बुद्धि को दैत्य छल देते हैं, बुद्धि के द्वार से वह ध्वनि अग्नि में परणित हो जाती है। अग्नि नाम वाणी को कहा गया है। जहाँ व्यष्टि समष्टि का वर्णन आता है वहाँ अग्नि वाणी में परणित हो जाती है क्योंकि अग्नि ही वाणी का स्वरूप माना गया है और वाणी ही अग्नि का स्वरूप माना गया है। इस अग्नि को जब दैत्य छल लेते हैं तो उस समय ध्वनि को यज्ञ के दस पात्रों में परणित कर देते हैं। अब अग्नि भी छली जाती है। अब विरोचन जी कहते हैं कि अब यह ध्वनि, यह धर्म तुम्हारे आँगन

में आने वाला नहीं है।

यज्ञ के दस पात्र क्या हैं? जब मेरे प्यारे प्रभु ने यह जगत रचा था तो यह मानव ! शरीर एक प्रकार की यज्ञ वेदी रची थी। इसमें दस पात्र पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्म इन्द्रियां कहलाती हैं। जिनमें धर्म समाहित रहता है मैंने धर्म की मीमांसा करते हुए बहुत पूर्व काल में कहा है कि धर्म किसे कहा जाता है। धर्म कहते हैं व्यापकता को। व्यापकता में धर्म होता है और संकीर्णता में अधर्म की प्रतिभा ओत प्रोत रहती है। जितना मानव का हृदय विशाल होता है, व्यापक होता है, उतना वह मानव धर्म में परणित होता रहता है और जितना संकीर्ण होता है उतनी घृणा होती है, जितनी घृणा होती है उतना संकुचित्त होता है, जितना जितना बुद्धि का माध्यम सूक्ष्म होता है उतना मानव के द्वार से धर्म दूर हो जाता है।

हमारे आचार्यों ने बहुत सुन्दर वाक्य प्रकट किए हैं आज मैं इन वाक्यों की पुनरूक्ति करना नहीं चाहता हूँ। आज एक मानव सुन्दर पदार्थों को दृष्टिपात कर रहा है, एक सुन्दर कन्या को दृष्टिपात कर रहा है, सुन्दर ब्रह्मचारिणी ब्रह्मचारी को दृष्टिपात कर रही है यदि संकीर्ण आ जाता है, उसको अपनाने की प्रवृत्ति आ जाती है उसमें अधर्म हो जाता है। यदि उस मानव के मस्तिष्क में यह विचारधारा आ जाएं कि अरे,? यह कितना सौन्दर्य है। यह कितना मेरे प्यारे प्रभु कलाकार ने किसी कलाकारिता से ऐसा सुन्दर ! वस्त्र रचाया है, कैसा यौवन है कौन रचाने वाला है किस अन्ध कूप में रचना हुई है इस व्यज्ञप्ता का नाम धर्म कहलाया गया है।

आज का हमारा विषय क्या कह रहा है? आज हम अपने मानव जीवन को अपनाने का प्रयास करें। पांच ज्ञानेन्द्रियां पांच कर्म इन्द्रियों को शोधन करने का प्रयास करें। इन्हें तपाना है क्योंकि बिना तप के मानव कदापि भी इन्द्रियों का स्वामीवत् नहीं बन पाता। आज हम अपनी इन्द्रियों का शोधन करने का प्रयास करें, व्यापकता में ले जाएं। श्रोत इन्द्रियों का जो देवता है वह दिशायें कहलाई गई हैं और घृणा का देवता पृथ्वी है। इससे पूर्व मैंने इन शब्दों की मीमांसा की है। इसी प्रकार कहीं एक एक इन्द्रिय के दो दो देवता माने गएं हैं मैं इन वाक्यों को अधिक विलम्ब देने नहीं जा रहा हूँ वाक्य

उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या को संसार में अपने जीवन को उत्तम बनाना है, शोधन करना है। जैसे प्राणों का बिछौना जल कहलाया गया है और उसका जो ऊपर का वस्त्र है वह अन्न कहलाया गया है इसी प्रकार मानव के तप के लिए मन शोधन की आवश्यकता है और मन का बिछौना क्या है? मन का बिछौना भी अन्न कहलाता है क्योंकि अन्न की प्रतिभा से मन की उत्पत्ति हुआ करती है उससे स्मरण शक्ति आती है। स्मरण शक्ति ज्ञान का केन्द्र कहलाया गया है। इसलिए मन और प्राण दोनों का मिलान करना है। यदि आज कोई मानव साधन बनना चाहता है, योगी बनना चाहता है तो वह संसार में ऊँचा महापुरूष बन जाता है जो मानव प्राण और मन दोनों की एक संज्ञा कर लेता है। आज संसार में मन है और मन से कोई शक्तिशाली वस्तु है तो वह प्राण है। प्राण और मन दोनों का समन्वय करना है क्योंकि इन्द्रियों का जो स्वामित्व है वह मन है, मन का शोधन करना है अन्न के द्वारा और अन्न के द्वारा शोधन करके इसको प्राण में परणित कर देना है। यह मन कहीं नहीं जाता जब प्राण में इसकी सन्तुलन हो जाती है। प्राण में जब यह मन लग जाता है तो यह मन कहीं नहीं जाता।

महर्षि कपिल जी ने तो यहाँ तक कहा है कि मन और प्राण ही संसार में दो वस्तु हैं, जिन्होंने ईश्वरवाद को समाप्त कर दिया था। परन्तु जब आचार्यों ने कहा कि तुम तपस्वी बनो, त्यागी बनो, तब तुम्हें परमात्मा का ध्यान होगा। कपिल महाराज जब तपस्वी बने, त्यागी बने तो उसके पश्चात् उन्होंने नेति का प्रतिपादन कर लिया था।

आज का हमारा यह वाक्य कह रहा है। आज हम त्याग और तपस्या में परणित हो जाएं क्योंकि बिना त्याग के संसार में मानव ऊँचा नहीं बनता। परमात्मा ने जब सृष्टि का प्रादुर्भाव किया उस समय परमपिता परमात्मा ने वायु का मन्थन किया तो वायु देवता का जन्म हो गया। अग्नि का मन्थन किया तो अग्नि देवता का जन्म हो गया। जल देवता का मन्थन किया तो जल देवता का जन्म हो गया। इसी प्रकार प्रत्येक देवता का जन्म हो करके उन्हें तपाया गया। देवताओं का जब मन्थन किया तो उन देवताओं के द्वारा भी विद्या का जन्म होता है जिसकी मीमांसा मैं कल कर सकूंगा।

आज के वाक्यों का अभिप्राय कि हम अपने मानव जीवन का उत्तमता से शोधन करते हुए, यज्ञवेदी के सन्तुलन अपने जीवन को स्वीकार करके इस यज्ञवेदी को पवित्र बनायें, महान बनायें, उत्तम बनायें, जिससे इस संसार सागर से पार हो जाएं। इस संसार में आने का हमारा केवल एक ही उद्देश्य होता है कि हम इस मानव जीवन को उन्नत करते चले जाएं। मानव जीवन को इस संसार से पार करते चले जाएं। त्यागी और तपस्वी बनने का भी परिणाम यही होता है। मन और प्राण सबको जानते हुए हमें अपनी मानवीयता का विचार विनिमय करना है।

यह है आज का हमारा वाक्य। कल समय मिलेगा तो मैं कुछ देवताओं के सम्बन्ध में प्रकट कर सकूंगा, कुछ सात प्रकार के अन्नां की मीमांसा कर सकूंगा। आज के वाक्यों का अभिप्राय कि वैज्ञानिकों को आपो ज्योति को जानना चाहिए। आपो कहते हैं जल को। जल और प्राण को जानना चाहिए। विद्युत को जानना चाहिए जिससे मानवत्व में पवित्रवाद आता चला जाएं। अब आज का हमारा वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चातवार्त्ता समाप्त। हायर सैकेन्डरी स्कूल), फिरोजपुर छावनी में दिया गया प्रवचन(

१४ 13 08 1970 पुष्प 14 सात आहार

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति कुछ वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, आज का हमारा वेदपाठ क्या कह रहा है। भू पश्चतम् भू नाम पृथ्वी को कहा गया है जिससे नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों को उत्पत्ति हुआ करती है, जिन पदार्थो को पान करता हुआ मानव अपनी जीवनचर्या को सुन्दर बनाता है, जीवन की प्रतिभा को एक मानवता में परणित कर देता है।

एक समय महाराजा अश्वपति ने महर्षि मुगदल जी से यह कहा था कि महाराज इन ! वेदों को ईश्वरीय ज्ञान क्यों कहा जाता है? उस समय ऋषि ने कहा था कि हे महाराज ! वेदों को ईश्वरीय ज्ञान इसलिए कहा जाता है क्योंकि वेदों में रूढ़ि नहीं होती और जिस ज्ञान में रूढ़ि नहीं होती वह ईश्वरीय ज्ञान होता है क्योंकि ईश्वर कदापि भी रूढ़ि

में परणित नहीं रहता। जब हम यह विचारने लगते हैं कि परमात्मा में रूढ़ि नहीं होती तो उसके ज्ञान और विज्ञान में भी रूढ़ि कदापि नहीं हो पाती। इसलिए हमारे यहाँ वेद ज्ञान को ईश्वरीय ज्ञान कहा गया है, जहाँ बुद्धिमान प्राणी विचार विनिमय करता हुआ नेति नेति का प्रतिपादन कर देता है वह ज्ञान में रूढ़ि में परणित नहीं हुआ करता है। आचार्यों ने कहा है कि आज हम रूढ़ि से पार होना चाहते हैं। रूढ़ि से पार होने का अभिप्राय क्या है? रूढ़ि किसे कहते हैं? रूढ़ि उसे कहते हैं जिसमें अज्ञान होता है, जिसमें पूर्णता नहीं होती, जिसमें ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा ओत प्रोत नहीं हो पाती, केवल अज्ञान का आश्रय ले करके वह अपनी मानवता को नष्ट करना प्रारम्भ कर देते हैं, उसको रूढ़ि कहा जाता है।

जहाँ बुद्धिमान प्राणी होते हैं वहाँ एक दूसरे के विचारों में टिप्पणी होना बहुत अनिवार्य है। जहाँ टिप्पणियां होती हैं विचार विनिमय होते हैं, अनुसन्धान होते हैं अन्वेषण हुआ करते हैं, एक दूसरे के मिलान करने की क्षमता होती है वहाँ व्यापकतावाद होता है। जहाँ व्यापकता वाद होता है वहाँ सुविचार होता है। जहाँ सुविचार होता है वहाँ एक मानवता का संगठन होता है। एक मानवीयता ओत प्रोत रहती है, वहाँ किसी प्रकार का वाद विवाद नहीं होता। जिन वाक्यों में अभिमान छा जाता है कि मेरे वाक्यों की पुष्टि क्यों नही हुई तो वहाँ रूढ़िवाद आ जाता है और रूढ़िवाद घृणा का केन्द्र है, संकीर्ण विचार होते हैं। जहाँ संकीर्ण विचार और घृणा होती है वहाँ बुद्धि का माध्यम नष्ट भ्रष्ट होता रहता है। तो आज हमें अपने विचारों को बुद्धियुक्त सुगठित बनाना है, मानवता में लाने का प्रयास करना है।

आज वेद की प्रतिभा क्या कहती चली जा रही है। वेद यह भी कहता चला जा रहा है कि मानव को अग्नि ऊर्ध्वा बनना चाहिए। जहाँ मानव के विचारों में अग्नि ऊर्ध्वा होती है जैसे विद्युत अपना सर्वत्र ओत प्रोत रहती है मन का प्रतिनिधित्व किया करती है जैसे बाह्य सृष्टि में विद्युत अपना कार्य करती है, ऐसे ही मानव शरीर में मन अपना कार्य करता रहता है। हमारा जो मन है वह सर्वत्र अंगों का स्वामित्व करता है जैसे विद्युत सब लोकों को अपने अन्तर्गत समाहित कर लेती है इसी प्रकार मन ज्ञानेन्द्रिय को अपने

में समाहित कर लेता है। जैसे विद्युत बाह्यकृति कार्य करती है जिसमें चंचलता है, व्यापकता है इसी प्रकार मन व्यापकता में रमण करने वाला है।

आचार्यों ने तो यहाँ तक कहा है कि मन विश्वेमान भी कहलाया जाता है क्योंकि मन ही संसार का विभाजन करने वाला है। मन की प्रवृत्तियों का विभाजन करने वाला मन ही है। कपिल जी ने तो यहाँ तक कहा है कि प्राणों का विभाजन भी मन के द्वारा हुआ करता है। जहाँ मानव अपने परिवार का परिचय देता चला जाता है तो परिचय भी मन के द्वारा ही दिया जाता है। पृथ्वी में जब रसों का विभाजन होता है, एक दूसरे वृक्षों में एक दूसरे वृक्षों में एक दूसरे रस का स्वादन होने लगता है वह भी मन के द्वारा। जैसे मानव शरीर में मन की प्रतिभा है इसी प्रकार पृथ्वी भी मन की प्रतिभा विश्वेमान बन करके रहती है क्योंकि जितना भी रस है प्राणों के द्वारा उसकी प्रभा चलती है परन्तु विभाजन करने वाला मनीराम कहा जाता है। इसके ऊपर टिप्पणी में कल करूंगा क्योंकि वेद का विषय भी इस प्रकार का आ रहा है। आज तो केवल यह उच्चारण करना है कि आज हम अपनी उस महान ज्योति को जानने का प्रयास करें। बाह्य और आन्तरिक जगत दोनों का विचार विनिमय करना है। दोनों का समन्वय करना है। जब तक मानव दोनों का समन्वय नहीं करेगा, तब तक उस मानव के हृदय में यौगिकता, हृदय अगमता, उद्गाता, अर्ध्युवत हृदय में आ नहीं पाता। इससे अज्ञान और रूढ़िवाद की सन्देहता रहती है। हमारे यहाँ ईश्वरीय ज्ञान उसको कहा जाता है जिसमें रूढ़ि नहीं होती क्योंकि परमात्मा भी रूढ़ि में नहीं होता।

आज मानव परमात्मा के पीछे भी नाना प्रकार की टिप्पणियां करता रहता है। अज्ञानता के कारण, न तपने के कारण मानव टिप्पणी करता रहता है कि ईश्वर है या नहीं। नाना प्रकार का सन्देह रहता है। यह विचार मानव के द्वारा तब आते हैं जब आत्मिक बल नहीं होता। आत्मा तपा हुआ नहीं होता तो यह नास्तिकता के विचार मानव के हृदय में समाहित हो जाते हैं। आज हम यह विचार विनिमय करने वाले बनें कि परमपिता परमात्मा की जो महिमा है उसको जानना है तो अन्नों को विचारा जाएं। प्राणों का जो आहार है वह अन्न कहा जाता है। जितना भी पदार्थ है वह औषध से लेकर वनस्पतियों

से लेकर अन्न तक जो आहार है वह प्राणों का ही आहार है। परन्तु जहाँ यह विचारा जाता है कि प्राण का जो ओढ़न बिछौवन है वह क्या है? तो कहा जाता है वह जो जल है वह प्राण का बिछौना कहा जाता है, वही आसन और ओढ़न कहा जाता है।
मुनिवरों संसार में जब मानव दिव्य दृष्टि से इस जगत को दृष्टिपात करता है तो यह ! सर्वशः जगत प्राण के मुख में जाता प्रतीत होने लगता है क्योंकि जब अपान और प्राण वायु दोनों का संघर्ष हो जाता है उस समय यह संसार, यह मानव समाज में जो मैं की प्रतिभा का प्रतिष्ठित हो रहा था, जो अज्ञानता में प्रतिष्ठित हो रहा था, जो ईश्वर को अपने से दूर कर रहा था वह भी उस अपान के मुख में जाने के लिए उदित दृष्टिपात होने लगता है। जब मानव दिव्य दृष्टि से इस संसार को दृष्टिपात करता है तो यह प्राण ही संसार का जीवन प्रदाता है। इसके ऊपर हमें विचार करना चाहिए। आज हम अपनी मानवता पर विचार विनिमय करते हुए जब यह विचारते हैं कि जितने भी आग्नेय अस्त्र हैं, ब्रह्म अस्त्र हैं, परमाणुवाद है, अणुवाद है यह भी प्राण की प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हो रहा है। यह सर्वश जगत प्राण में ही प्रतिष्ठित हो रहा है। इन प्राणों का जो आहार माना गया है वह अन्न माना गया है।
एक समय ब्रह्मचारी गौतम अपने पिता के द्वारा विराजमान थे। बाहर वर्ष के होते ही पिता ने आज्ञा दी कि हे बालक जाओ गुरू कुल में शिक्षा ग्रहण करो। उस ब्रह्मचारी ! गौतम ने अपने आसान को त्याग दिया और गुरूकुल जा पहुंचा। गुरू के चरणों में ओत प्रोत होकर के विद्या अध्ययन की। नाना प्रकार की विद्या अध्ययन करने के पश्चात देखो, पूर्णिमा का दिवस था, गुरू से दीक्षा प्राप्त की, आज्ञा पान करते हुए, उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा अर्पित करते हुए, ब्रह्मचारी गौतम ने अपने पिता के गृह को प्रस्थान कर दिया। जब वह गृह में प्रविष्ट हुए तो उसे अभिमान हो गया कि मैंने सर्वशः विद्याओं का अध्ययन कर लिया है। एक समय उनके पिता ने कहा कि ब्रह्मचारी तुम कोई ! वाक्य प्रकट नहीं कर रहे हो, तुम गुरू के कुल से आए हो तुमने विद्या अध्ययन की है, मैं उसको जानना चाहता हूँ। उस समय उसने कहा कि पितः आप इस विद्या को ! क्यों जानना चाहते हो मैंने आपसे अधिक विद्या को अध्ययन किया है और मैं आपसे

इन वाक्यों को क्या उच्चारण कर सकता हूँ। उन्होंने कहा कि अरे, ब्रह्मचारी तुमने अधिक विद्या अध्ययन की है परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ कि सूत और प्रसूत किसे कहा जाता है? इन वाक्यों को श्रवण करके ब्रह्मचारी शान्त हो गया और विचारा कि वास्तव में गुरू ने इन वाक्यों को मेरे द्वारा प्रकट नहीं किया है मैं इसका उत्तर कैसे दे सकूंगा। उन्होंने कहा कि हे पितःमैं इन वाक्यों को नहीं जानता हूँ !, मेरे गुरू ने मुझे इन वाक्यों का निर्णय नहीं कराया है। उन्होंने कहा तो ब्रह्मचारी तुम्हें अभिमान क्यों आ गया जब ! सूत प्रसूत को नहीं जानते। यह अभिमान तो तुम्हें होना नहीं चाहिए था। उसने कहा कि भगवनमैं आपके चरणों में ओत प्रोत हूँ !, मुझे इस ज्ञान को प्रकट कराइये कि सूत प्रूसत किसे कहा जाता है। उन्होंने कहा कि ब्रह्मचारी सूत कहते हैं जो मानो पान ! किया जाता है प्रसूत कहते हैं जिसको निगलता है जैसे हमारे यहाँ आता रहता है कि ब्रह्मे लोक अव प्रभो अस्ति सुप्रजा मानो अन्न संसार में निगला जाता है। अन्न अपने में ग्रहण किया जाता है और निगलने वाला कौन है? जिसको हमारे यहाँ प्राण कहा जाता है। हे ब्रह्मचारीइसको जानने का तुम प्रयास करो !, उसके पश्चात् तुम ब्रह्मवेत्ता बनोगे। आज तुम्हें अभिमान छा गया। इस अज्ञान को मैं नष्ट करना चाहता हूँ। उन्होंने सात प्रकार के अन्नों की मीमांसा करना प्रारम्भ कर दिया।

सबसे प्रथम वह अन्न जो सबका सांझा अन्न कहलाया जाता है जिस अन्न को मानव पान करता है, जिस अन्न को मेरी प्यारी माताएं अपने गृहों में गार्हपत्य अग्नि में जिस अन्न को तपाती है वह अन्न सांझा कहलाया जाता है। आज कृषक यह उच्चारण करने लगे कि मैंने अपनी भूमि में इस अन्न को पकाया है, जिस अन्न की मैंने रक्षा की है किसी को प्रदान नहीं करना है तो यह हो ही नहीं सकता कि वह स्वयं उस अन्न का आहार कर जाएं क्योंकि वह तो परमपिता परमात्मा ने जैसी जिसकी रचना है वैसा उसका स्वभाव है। अपने स्वभाव के अनुसार वितरण स्वतः होता रहता है। आज हम यह विचारते रहते हैं जैसा मैंने कल के वाक्यों में तुम्हें प्रकट कराया था कि महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज सिलक अन्न को ग्रहण करते थे। वही अन्न था जो सबका सांझा अन्न कहलाता है, जो सबका सामूकि अन्न होता है उस अन्न को नाना प्रकार के

प्राणी ग्रहण करते हैं। वह अन्न एक मानव का ही नहीं होता वह सबका सांझा अन्न कहलाता है। वह अन्न तो परमपिता परमात्मा ने मनुष्यों को अर्पित कर दिया, प्राणियों को अर्पित कर दिया।

द्वितीय जो अन्न है वह इसी अन्न को निचला जो भाग है वे परमपिता परमात्मा ने पशुओं को अर्पित कर दिया पशु जिस अन्न को पान करके अपनी पशुता में परणित होते रहते हैं उनका प्राणी उसी प्रकार का आहार पान करता रहता है। उनका प्राण उसी प्रकार का बलिष्ठ होता है। परमपिता परमात्मा की कितनी अलौकिक महिमा है इसके ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए। परमपिता परमात्मा कैसा महान वैज्ञानिक है, जैसा जिसका उदर होता है उसी प्रकार का उसका अन्न कहलाया जाता है। मानव का उदर सूक्ष्म है तो उसका अन्न भी उसी प्रकार का उत्पन्न होता है और पशु का उदर प्रबल है तो उसका अन्न भी उतना ही विशाल माना गया है।

हमारे यहाँ देखो, एक सूक्ष्म सी कृषि है परन्तु देखो, जितना मानव का आहार है उतना ही सूक्ष्म अन्न होता है और पशु का उससे कई गुना प्रबल होता है। यह प्रभु का विज्ञान नहीं तो और क्या कह सकते हैं। यह प्रभु की महिमा नहीं तो और क्या उच्चारण कर सकते हैं कि परमात्मा ने अन्न भी सांझा अन्न उत्पन्न किया। यह पशु का ही अन्न नहीं है मानो यह गाय का ही अन्न है वह वैश्य ही अन्न यह सामूहिक अन्न कहलाया जाता है। जैसे मानव का सामूहिक अन्न कहलाया जाता है। इसी प्रकार पशुओं का भी सामूहिक अन्न कहलाया जाता हैं। जितने पशु हैं सभी पान करते हैं जो अन्तरिक्ष में भ्रमण करने वाले प्राणी होते हैं वह भी पान करते हैं और जो भूमि के निचले भाग में रमण करने वाले प्राणी होते हैं वह भी उसको पान करते हैं। इसी प्रकार जो मनुष्यों का अन्न होता है वह भी इसी प्रकार का होता है। यह दो प्रकार का अन्न है। सर्वशः सृष्टि में जितना प्राणी मात्र हूँ सर्वत्र प्राणी को ओत प्रोत करा दिया।

आज जब मैं यह विचारना चाहता हूँ कि जैसे यह पृथ्वी मण्डल है ऐसे नाना प्रकार के पार्थिक लोक है। एक मण्डल दूसरे मण्डल से मिलान नहीं कर पाता, यह प्रभु का ऋत है, इसी को प्रसूत कहा जाता है, प्राण की गति से एक दूसरा लोक अपने आँगन को

मैं भ्रमण करता है। कैसा विशाल मण्डल है प्रभु की, कैसी विशाल आकाश गंगा है जिसमें अनन्त सूर्य माने गएं हैं, अनन्त चन्द्रमा माने गएं हैं। अनन्त ध्रुव माने गएं हैं, अनन्त जेठाय नक्षत्र माने गएं हैं। ऐसा विशाल प्रभु का मण्डल है, ऐसा अनन्त प्रभु का ज्ञान है जिसके ऊपर मानव की टिप्पणी करके अन्त में नेति का प्रतिपादन करना ही इसका एक स्वभाव हो जाता है।

आज मैं लोक लोकान्तरों की चर्चा करने नहीं आया हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में सात प्रकार का अन्न उत्पन्न किया। दो प्रकार का अन्न वह है जो एक पशुओं का है और एक मनुष्यों का है मानो देखो, जिसको मानव पान करते हैं एक पशु यह सबका सांझा अन्न कहलाया गया है इसके पश्चात दो प्रकार का अन्न है एक को हूत कहा जाता है और एक को प्रूत कहा जाता है। हूत कहते हैं आहुति देने को और प्रूत कहते हैं पुरोहित की सेवा करने को। हूत किसे कहा जाता है जो अन्न देवताओं को प्राप्त करा दिया है नाना प्रकार का शांकल्य बना करके इन्हीं वनस्पतियों में से नाना प्रकार की शांकल्य बना करके जब ब्रह्मा, उद्गाता, अध्यवर्यु और होता जन यज्ञ न करते हैं, हूत करते हैं। पुरोहित के द्वारा, प्रहूत के द्वारा जब हूत किया जाता है तो वह हूत सूक्ष्म होकर के अन्तरिक्ष में देवताओं को प्राप्त हो जाता है। यह देवताओं का अन्न कहलाया गया है। हमारे आचार्यों ने कहा है कि अग्नि देवताओं का दूत कहलाया गया है। अग्नि के सूक्ष्म रूप बना देता है, परमाणु बना देता है। देवताओं का दैत्य किसी का समुद्र में जाता है, किसी का अन्तरिक्ष में जाता है जब एक दूसरा देवता तपता है और तपकर संसार में सुन्दर सुन्दर वृष्टि हो जाती है। उसी वृष्टि के कारण नाना प्रकार की वनस्पति पुनः से जन्म ले लेती है। इसलिए आचार्यों ने कहा है कि तीसरा जो अन्न माना गया है वह हूत कहलाता है। इसलिए हमारे यहाँ प्रत्येक देव कन्या को को गार्हपथ्य अग्नि की पूजा करनी चाहिए। उस अग्नि में ही हूत किया जाता है, आहुति दी जाती है। नाना शाकल्य के साथ में मानव का संकल्प चलता है, उसी संकल्प के द्वारा आहुति से लिपटा हुआ जो मानव

का संकल्प है, वह मानव की अन्तरात्मा की इच्छा को पूर्ण करता चला जाता है।
मुनिवरों मैं यज्ञ के ऊपर अपना प्रकाश नहीं देना चाहता मैं वाक्य उच्चारण करने का ! अभिप्राय यह है कि हमें हूत करना चाहिए। हूत का अभिप्राय है आहुति देना। अग्नि में आहुति देना। अपने विचारों की आहुति देना। यदि शाकल्य सुन्दर है नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं और होता का विचार सुन्दर नहीं है, परमात्मा से सुगठित नहीं है श्रद्धा से युक्त नहीं है तो आहुति देना न देना एक ही तुल्य कहलाया गया है। ऐसा हमारे आचार्यों ने वर्णन किया है क्योंकि जो मानव श्रद्धा से कार्य करता है, हृदय से जिन शब्दों का प्रतिपादन करता है, वह हिंसक प्राणियों को भी छुआ करती है। इसी प्रकार श्रद्धा की जो आहुति होती है, वह जब अग्नि में प्रविष्ट की जाती है, अग्नि उस श्रद्धा की आहुति को, उसके संकल्प को भस्म नहीं कर सकती। अग्नि तो केवल स्थूल शाकल्य को भस्म कर सकती है, परन्तु जो मानव का संकल्प है, महान विचार है, उसको अग्नि देवताओं के द्वारा परणित कर देती है। वही विचार तपा करता है देवताओं के द्वारा और तपकर मानव की इच्छा के अनुसार संसार में वृष्टि करना आरम्भ हुआ करती है।
बेटा तुम्हें स्मरण होगा जब महाराजा जनक के यहाँ अकाल पड़ गया था और वृष्टि ! नहीं हो रही थी, उस समय राजा जनक ने ऋषि मुनियों की सभा एकत्रित की जिसमें लोमपान ऋषि आए और भी जैसे शाण्डिल्य जी, मुदगल ऋषि, शौनक जी, आमान्तरि जी नाना ऋषि उस समाज में आ पहुंचे थे जिसमें महर्षि वशिष्ठ मुनि भी आ पहुंचे थे। उस सभा में नाना विचार विनिमय करते हुए राजा जनक ने उसे यह कहा था कि हे महाराज मेरे राष्ट्र में वृष्टि नहीं हो रही है इसका क्या मूल कारण है। उन्होंने कहा ! कि तुम्हारे विचारों में अशुद्धवाद आ गया है। जब राजा के विचारों में अशुद्धवाद आ जाता है, घृणावाद आ जाता है, प्रजा के प्रति स्वार्थवाद आ जाता है तो उस राजा के राष्ट्र में अति वृष्टि अनावृष्टि हुआ करती है।
जब ऋषियों ने ऐसा कहा तो राजा जनक नमस्कार करके बोले कि प्रभु मेरी जो यह प्रजा है इसमें त्राहि माम् त्राहि माम् हो रही है, वृष्टि क्यों नहीं हो रही है इसका मूल कारण क्या है? उन्होंने कहा कि तुम्हारे ही विचार हैं। इन्होंने कहा कि अब मुझे क्या

करना है। उन्होंने कहा कि वृष्टि यज्ञ करो और स्वर्ण हल बनवा करके तुम गो के बछड़ों को लेकर के भूमि में हल चलाओ। ऐसा कहा जाता है कि राजा जनक ने ऐसा ही किया। सबसे प्रथम वृष्टि यज्ञ किया। राजा का जो संकल्प था वह प्रत्येक आहुति के साथ था। उनकी पत्नी गर्भिणी थी वह भी आहुति देती तो संकल्प के द्वारा। उस संकल्प का परिणाम यह हुआ कि राजा जनक स्वयं गो के बछड़ों को लेकर स्वर्ण हल बना करके हल चलाने लगे। कहा जाता है कि एक स्थान में राजा जनक के यहाँ हल चल रहा था और उसी राष्ट्र गृह में कन्या का जन्म हुआ और उसी समय वृष्टि प्रारम्भ होने लगी। जब वह वृष्टि प्रारम्भ होने लगी ऋषि आनन्द को प्राप्त होने लगे तो राजा से कहा कि हे राजनतुम्हारा जो संकल्प है वह पूर !आओ !्रण हो गया है, प्रत्येक आहुति के द्वारा जब होता का संकल्प होता है, यज्ञमान का संकल्प होता है, ब्रह्मा और उद्गाता का संकल्प होता है तो वह यज्ञ कार्य मानो देखो, वृष्टि प्रारम्भ कर देते हैं। कहने का अभिप्राय है कि मानव को हूत करना चाहिए। हूत कहते हैं आहुति देने को। देवताओं को अन्न प्रदान करने को छूत कहा जाता है।

मुनिवरों मुझे नाना वाक्य स्मरण आते रहते हैं। मनु महाराज की साढ़े सात हजार ! परम्पराओं ने इस भूमण्ड पर राज्य किया। इसमें एक सोमकेतु नाम के राजा हुए। उनके यहाँ प्रजा में त्राहिमाम् त्राहिमाम् होने लगी। उनक े पुरोहित जो महर्षि शाण्डल्य वंश में उत्पन्न होने वाले कृणीक ऋषि महाराज थे उनसे वह बोले कि महाराज मेरे ! राष्ट्र में त्राहिमाम् त्राहिमाम् है इसका मूल कारण क्या है? उन्होंने कहा कि तुम हूत करो। तो उन्होंने प्रजा और अपने को दोनों का समवन्य करने के पश्चात् संकल्प के द्वारा जब यज्ञ किया गया तो राष्ट्र की त्राहिमाम् त्राहिमाम् समाप्त हो गई। तो हूत का अभिप्राय क्या है? हूत का अभिप्राय आहुति देना है, विचारों की आहुति देना है। जनता जनार्दन को विचार विनिमय करना है कि जनता जनार्दन का जो विचार है वह क्या है क्योंकि यह कार्य उस काल में हुआ करते हैं जब राजा के यहाँ एक संकल्प होता है, मानवीय विचार होते हैं, महानता में सने हुए जो विचार होते हैं वे देववत को पवित्र बनाते हुए उसके संकल्प की पूर्ति कर देते हैं। यह तो विस्तार का वाक्य है। आज तो

मैं सूक्ष्म सी मीमांसा करने वाला हूँ। तीसरा जो अन्न है वे परमपिता परमात्मा ने हूत उत्पन्न किया है।

चतुर्थ प्रकार का जो अन्न है उसे प्रूत कहते हैं। प्रूत का अभिप्राय है पुरोहित। पुरोहित किसे कहा जाता है? यदि वास्तव में विचार विनिमय किया जाएं तो पुरोहित तो संसार का परमपिता परमात्मा ही है क्योंकि वह मानव को जितना सुख प्रेरणा देता है उतना कोई नहीं दे पाता परन्तु यहाँ बुद्धिमान को जो लोक कल्याण की चर्चा करता है, अपने यज्ञमान के लिए शुभ कामनाएं प्रकट करता है, राजा के लिए शुभ कामनाएं प्रकट करता है, बुद्धिमता का प्रसार करता है उसको भी पुरोहित कहा जाता है।

मुझे स्मरण आता रहता है कि पुरोहित की कितनी सेवा होनी चाहिए। बेटा त्रेता काल ! का साहित्य तुम्हें स्मरण होगा, जब महाराजा विश्वामित्र ने अपने मन में विचारा कि जो यज्ञ है, मेरी जो परिक्रिया है उस दैत्य नष्ट कर रहे हैं तो उन्होंने अपने आसन से प्रस्थान किया और रघुकुल में आ गय और महाराजा दशरथ से बोले कि राजन मैं ! आपके द्वार आया हूँ। राजा ने अपना स्थान त्याग दिया और राजस्थान पर उन्हें स्थिर तुम्हें प्रतीत है मैं क्यों आया हूँ। हमारे !किया। महाराज विश्वामित्र ने कहा कि राजन यहाँ दर्शनों में आता है कि पुरोहित की सेवा करनी चाहिए। मेरी सेवा करो। उन्होंने कहा कि भगवन क्या सेवा है मैं अवश्य कर पाऊंगा क्योंकि आप मेरे पुरोहित ही नहीं ! आप तो मेरे एक ईश्वर तुल्य हैं, प्रभु जो मुझे आज्ञा दोगे मैं उसका पालन करूंगा। ! मेरी इच्छा है कि आप अपने विधा !उन्होंने कहा कि राजनता राम लक्ष्मण को मेरे द्वारा अर्पित कर दीजिए क्योंकि मैं अपने यज्ञ की रक्षा करके देवताओं को अन्न देना चाहता हूँ। राक्षस देवताओं के अन्न को नष्ट कर देते हैं इसलिए मैं चाहता हूँ कि मेरे यज्ञ की रक्षा हो। आज इन पुत्रोंको मुझे अर्पित करो। देखो !, पुरोहित की !सेवा करना वाले महाराजा दशरथ ने अपने दोनों पुत्रों को अर्पित कर दिया था और भी नाना ! आप रक्षा कीजिए। !सम्पदा उनको अर्पित की कि भगवन

तो पुरोहित किसे कहा जाता है? पुरोहित भी एक प्रकार अन्न कहलाया गया है। अन्न की मीमांसा आचार्यों ने की है कि अन्न क्या है जिससे द्वितीय प्राणी शुद्ध होता हो,

पवित्र होता हो, महानता में लाया जाता हो बेटा उसी को अन्न कहा जाता है। अन्न ! की मीमांसा केवल आहार करना नहीं है। अन्न की मीमांसा है कि जो मानव के हृदय का विचार होता है तन का विचारों को देना है और उन विचारों की रक्षा, दूसरे प्राणी की रक्षा करने का नाम अन्न कहलाया गया है। इसी प्रकार राष्ट्र का प्राण क्या कहलाता है? एक समय महर्षि भारद्वाज ने राजा अवश्पति से कहा कि महाराज मैं जानना ! चाहता हूँ कि तुम राष्ट्र का पालन करते हो परन्तु राष्ट्र का प्राण क्या कहलाता है? उस समय अश्वपति जी ने कहा कि हे भगवन राष्ट्र का जो प्राण है संसार में सदाचार है। ! यह राष्ट्र का प्राण माना गया है। मैं संसार में पुरोहितों की रक्षा करने वाला हूँ। आज मेरे राष्ट्र में पुरोहित पुरोहित की रक्षा करते हैं। मानो राष्ट्र का जो प्राण है वह बहुत हैं जिससे एक दूसरे प्राणी की रक्षा होती है और वह एक दूसरे की रक्षा करता है। यह चतुर्थ प्रकार का अन्न कहलाया गया है। आज हमें इन चारों प्रकार के अन्नों की उपासना करनी चाहिए।

इसके पश्चात् अब तीन प्रकार के अन्न रह जाते हैं। एक अन्न वह कहलाया जाता है जिसको हम यहाँ चक्षु कहा जाता है जिनको श्रोत्र कहा जाता है और घ्राण कहा जाता है। यह तीन प्रकार के आत्मा के अन्न कहलाते हैं। सबसे प्रथम जो अन्न है वह चक्षु कहलाया जाता है। अन्न का अभिप्राय है जो किसी वस्तु को ग्रहण करता है। अन्न ही मानो परमाणुवाद को अपने में शोषण करता है। सूर्य से किरणों का जन्म होता है वह नेत्रों का प्रकाशश बनकर के आते हैं मानो वह प्रकाश का आहार करता है। जैसे प्राण इस आहार को पान करके मानव के जीवन का साथी बना करता है इसी प्रकार नेत्रों का जो साथी है, प्रकाशक है वह भी अन्न कहलाया गया है। वह आत्मज्ञान कहलाया गया है। आज हमें अपने नेत्रों का शोधन करना है। इन नेत्रों से कुछ दृष्टिपात नहीं करना। जो मानव इन नेत्रों से सुदृष्टिपात करता है उनके नेत्रों की ज्योति ज्यों की तयों बनी रहती है, वह मानव इस शरीर को छोड़ने के पश्चात् सूर्य लोक को प्राप्त हो जाता है, ऐसा ऋषि कहते हैं। इसलिए हमें नेत्रों का शोधन करना है, यह भी अन्न है। इस अन्न की उपासना करनी है क्योंकि परमाणुवाद में मानव के नेत्रों में जो छिद्र होते हैं

उनमें परमाणु आगमन करते हैं। सूर्य का प्रकाश और आत्मा के प्रकाश दोनों का समन्वय हो जाता है और तभी नेत्र इस संसार में दृष्टिपात किया करते हैं।

वास्तव में वह वाक्य तो बहुत गम्भरी बनता चला जा रहा है परन्तु यदि यह वाक्य गम्भीर बनता है तो बनने दिय जाएं। विचार क्या? नेत्रों का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता क्योंकि वह तो दूसरे की सहायता से अपना कार्य करते हैं। जब सूर्य नहीं होता तो जो आत्मवत प्रकाश होता है वह अपना अगृत कार्य किया करता है। इसलिए नेत्रों को आत्मा का अन्न कहा जाता है क्योंकि यह सूर्य से ज्योति ला करके आत्मा का समागम करता है मानो मध्य में यह एक पटल लगा हुआ है, मानो एक प्रकार की सीमा है। जैसे मल विक्षेप आवरा मानव की आत्मा और परमात्मा के मध्य में आ जाते हैं इसी प्रकार सूर्य का और आत्मा का प्रकाश दोनों का समन्वय हो जाता है। इसलिए नेत्रों को अन्न कहा गया हैं आज हमें इस अन्न का शोधन करना है, इ स अन्न का पान करना है।

इसके पश्चात् जो द्वितीय अन्न है वह श्रोत अन्न आता है जिसका दिशाओं से सम्बन्ध है। हमारे आचार्यों ने ऐसा कहा है कि मुखारविन्द से उच्चारण किया हुआ जो शब्द होता है वह एक क्षणभर में पृथ्वी की परिक्रिमा कर देता है। श्रोत अन्न में बड़ी विशेषता होती है मानो दिशाओं से शब्दों को लाता है और अन्तरात्मा से उन शब्दों का मिलान हो जाता है। आचार्यों ने ऐसा कहा है कि जिसका व्यापक शब्द होता है उसका चित्र भी उसके साथ में चला जाता है। यह वैज्ञानिक शब्द है। हमारे यहाँ द्वापर काल में भीम के पुत्र घटोत्कच थे उन्होनें एक ऐसा यन्त्र इस शब्दावली से जाना था मानो इनके परमाणुओं को जान करके कि एक शब्द से ही मानों श्रोत्रों के एक रस से बिन्दु से मानव के सर्वशः चित्र आ जाता है उसके साथ साथ। वैज्ञानिक जनों ने कहा है कि एक रक्त का बिन्दु है परन्तु उस बिन्दु से वैज्ञानिक जन शब्द की प्रतिभा उसमें लाते हैं, शब्द का मिलान करते हैं जो जिस मानव का रक्त है, शब्द का मिलान करते हैं तो जिस मानव का वह रक्त है उसी मानव का चित्र यन्त्रों के द्वारा आ जाता है। मैं इस वाक्य को गम्भीर नहीं बनना चाहता हूँ या वैज्ञानिक युग में नहीं जाना चाहता हूँ। वाक्य

उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि शब्द के साथ में मानव की चित्रावली भी होती हैं जिस मानव का शब्द होता है। इसलिए मुझे स्मरण आता रहता है ब्रह्मे लोकप प्रभा अस्ति सुप्रजा द्वापर के काल में महाराजा संजय हस्तिनापुर में कुरूक्षेत्र की वार्त्ता प्रत्यख्वा प्रकट कर रहा था। मूल कारण क्या था क्योंकि रक्तम ब्रह्मे, शब्दात ब्रह्मे लोकप प्रभा अस्ति सुप्रजाः उन्हीं शब्दों को ग्रहण करने वाला उनका चित्र भी उनके साथ में आता था मानो वह स्वतः ग्रहण होता रहता था। मैं इस वाक्य को अधिक उच्चारण करना नहीं चाहता। छठा जो अन्न है वह श्रोत है जो दिशाओं से शब्दों को लाते हैं और वह मानव को स्मरण कराते हैं। बेटात !ुम्हें स्मरण होगा आज मैंने लाखों वर्षों पूर्व इन संहिताओं का पठन पाठन किया, आज भी उन्हीं शब्दों का प्रतिपादन हो रहा था। मूल कारण क्या हैं कि मानव के अन्तर आत्मा के जो संस्कार होते हैं उन संस्कारों का समन्वय दिशाओं से हो जाता है, दिशाओं में जो शब्द होते हैं मानो देखो, पञ्चम ब्रह्मे लोकः अन्तरिक्ष से उनका सम्बन्ध होता है। अन्तरिक्ष में शब्दावली रमण करती रहती है और वह लाखों वर्षो के शब्द भी मानव के मस्तिष्क में विराजमान हो जाते हैं जो संस्कारिक शब्द होते हैं, वहीं उसी के अन्तःकरण में ओत प्रोत हो जाते है और उन शब्दों का बाह्य रूप बन जाता है। श्रोत नाम के अन्न को जानने वाले जो वैज्ञानिक होते हैं वह लाखों वर्षो के शब्दों को मन्त्रों में परणित कर लेते हैं।

मुझे स्मरण आता रहता है राजा रावण के पुत्र जिन्हें हमारे यहाँ मेघनाद कहा जाता था कि वह ऐसे मन्त्रों को जानते थे कि वह लाखों वर्षां के शब्दों को मन्त्रों में परणित कर लेते थे। लाखों वर्षों के शब्द, ऋषि मुनियों के शब्द, अन्तरिक्ष और द्यौ के द्वारा दिशा रूपी अन्न को जान करके उनकी शब्दावली अपने पितर और अपने ऋषि मुनियों को प्रसारण कराते रहते। आज मैं उन वाक्यों पर टिप्पणी नहीं करना चाहता। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय है आज हम अपने वैज्ञानिक युग में चले जाएं। हमारे यहाँ जो छठे प्रकार का अन्न है वह श्रोत्र कहलाया जाता है। आज हम श्रोत्रां को जानने वाले बनें। जैसे अन्न का आहार किया जाता है ऐसे ही श्रोत हमारे यहाँ शब्दों को आहार

करते हैं। इसलिए जो आहार करता है वह उसका अन्न कहलाया जाता है।
सातवां जो अन्न है वह घ्राण कहलाया गया है। नाना प्रकार की सुगन्धि को ग्रहण करने वाली घ्राण इन्द्रियां हैं। सुगन्ध को पान करना उसका अन्न कहलाया गया है। घ्राण इन्द्रिय को जानने वाले वैज्ञानिक वेत्ताओं ने महर्षि पुलस्त्य जी ने महर्षि भारद्वाज ने कहा है और भी नाना ऋषियों ने इनके ऊपर टिप्पणी करते हुए ऐसा कहा है कि घ्राण इन्द्रिय को जानने वाले ऋषि मुनि होते हैं तो जो घ्राण इन्द्रियों को जानने वाले होते हैं, वायुमण्डल में जो मन्द सुगन्ध भ्रमण करती है उसी को ग्रहण करके उदर की पूर्ति करते जिन्हें आचार्यों ने कहा कि वह पवनहारी होते है, उसी पवन को ग्रहण किया करते हैं उसी अन्न को ग्रहण करते हैं जो घ्राण से सम्बन्धित होता है उसी अन्न को पान करके उसी से तृप्त हो जाता है।
आज मैं पातंजल योग दर्शन में नहीं जाना चाहता हूँ। वाक्य उच्चारण करने का केवल अभिप्राय यह है कि आज हम घ्राण इन्द्रिय को जानने वाले बनें यह भी हमारा अन्न कहलाया गया है। आज हम इस अन्न को जानते हुए अपने मानवीय जीवन को यौगिकता में ले जाते जाएं। हमारे यहाँ वेदव्यास ने कहा है, जैमिनी जी का भी यही सिद्धान्त है कि जो वायु मण्डल में बारह बारह वर्ष की प्राचीन सुगन्ध होती है उसको योगिजन ग्रहण करते हैं उसे अपनी उदर की पूर्ति का साधन बना लेते हैं। वैज्ञानिकों ने इसके ऊपर और टिप्पणियां की हैं। आज मैं इन वाक्यज्ञे। में अधिक नहीं जाना चाहता हूँ। वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या है कि हम अपने मानव जीवन को विशाल बनाना चाहते हैं, महान बनाना चाहते हैं तो हम इन सात प्रकार के अन्नों को जानने वाले बनें। तीन प्रकार का अन्न आत्मा के लिए होता है और चार प्रकार का अन्न संसार की सामूहिक परिक्रमा के लिए होता है।
यह है बेटा आज का हमारा वाक्य। आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं ! आया हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाने वाले बनें, अरे, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का विचार विनिमय करो जिस मेरे प्यारे प्रभु ने यह !सात प्रकार का अन्न उत्पन्न किया। सात

प्रकार के अन्न से मानव के जीवन की प्रतिभा का जन्म होता रहता है। यह है आज का हमारा वाक्य। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है हम परमापिता परमात्मा की उपासना करते हुए अन्नों को पान करते चले जाएं, अपने मानवीय जीवन को उस महान वेदी पर ले जाते जाएं जहाँ हमारा जीवन एक महान अग्रिम ज्योतिमही बनता हुआ इस संसार सागर से पार होता चला जाएं। यह है आज का हमारा वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चायें कल प्रकट करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा। आर्य) समाज, रानी तालाब, फिरोजपुर शहर में दिया गया प्रवचन(

१५ 28 10 1970 पुष्प 15 प्रजापति की तीन सन्तानें द की व्याख्या

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हार समक्ष पूर्व की भांति !, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिसमें उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान ओत प्रोत रहता है और जिस ज्ञान और विज्ञान में यह सर्वस्व जगत अपने अपने आसन पर क्रीड़ा कर रहा है, गतिशील हो रहा है। वेदों के पठन पाठन का जो प्रकार है वह एक माधुर्यतम और विचित्रता में परणित होता रहा है। हमारे यहाँ आचार्यों ने भिन्न भिन्न रूपों में एक एक शब्द पर अपना निरूपण दिया है। अपना विचार व्यक्त करते हुए महर्षि भुञ्जु जी और सांडल्य महर्षि दोनों का एक महान विचार चलता था तो उस विचार से हमें यह व्यक्त होता है कि उनका जीवन, उनकी वाणी का उदगान उनके चरित्र का उत्थान कितना विचित्र रहा है। जब हम भगवान मनु के राष्ट्र की कल्पना करते हैं अथवा उससे पूर्व समाज की कल्पना करते हैं तो हमें यह प्रतीत होता है कि हमारी मानवता की जो उड़ान है वह कितनी भव्य और पवित्र रही है।

मुझे स्मरण आता रहा है कि महाराजा विष्णु का जो वाहन है वह गरूड़ माना गया ! है परन्तु गरूड़ की कल्पना करना हमारे लिए असम्भव हो जाता है परन्तु जब उसका वास्तविक स्वरूप हमारे समक्ष आना प्रारम्भ हो जाता है तो हम यह कहा करते हैं कि वास्तव में उनके विज्ञान की उड़ान कितनी विशाल रही है भगवान विष्णु

महान और पवित्र कहलाए गये। हमारे यहाँ विष्णु नाम परमात्मा का भी कहा गया है परन्तु सतोयुग में विष्णु नाम एक उपाधि को प्रदान किया जाता था, गरूड़ उसका वाहन रहता था। जैसे परमपिता परमात्मा को मानो एक चेतना को, एक सर्वव्यापक को विष्णु कहा जाता है परन्तु जहाँ मैं यह कल्पना करने लगता हूँ कि ऐसे विष्णु का वाहन क्या है तो उनका ज्ञान स्वरूप होना ही है क्योंकि गरूड़ नाम ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा को कहा जाता है। आज उसमें मैं और अधिक टिप्पणियां करना नहीं चाहता हूँ। उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि मैं सतोयुग की कल्पना करने जा रहा था।

सतोयुग की कल्पना है कि महाराज विष्णु का वाहन गरूड़ रहा है। गरूड़ का ! अभिप्राय क्या है? हमारे यहाँ दर्शनों में, वेद मन्त्रों में भी गरूड़ की बड़ी मिमांसा आती है परन्तु उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारे यहाँ उनकी माता उदीची प्राधृतम मानी जाती है परन्तु मैं साहित्य में नहीं जाना चाहता हूँ। गरूड़ विष्णु के यहाँ बहुत बड़े महान वैज्ञानिक को कहा जाता है। गरूड़ की जो उड़ान है वह ध्रुव मण्डल से लेकर के जेष्ठाय नक्षत्र से लेकर के आकाश गंगा तक विचरण रहा है क्योंकि उनके विज्ञान का उड़ान बहुत ही भव्य और पवित्र रहा है। यही वाक्य हमारे यहाँ त्रेता काल में राजा रावण के पुत्र नारायणतक ने महर्षि भारद्वाज से कहा कि महाराज मैं यह ! जानना चाहता हूँ कि हमारे यहाँ, परम्परागतों में मानो सतोयुग के काल में महाराजा गरूड़ की बहुत विशाल और भव्य उड़ान रही है। मैं भी उस विज्ञान के क्षेत्र में जाना चाहता हूँ जहाँ मानो नाना प्रकार की कल्पना ही नहीं उनको प्रत्यक्ष में ला सकते हैं। महर्षि भारद्वाज ऐसे विज्ञान में पारंगत रहते आए हैं। मुझे स्मरण आता रहता है जब माता अरूणदति महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और महर्षि भारद्वाज तीनों का विचार विनिमय प्रारम्भ होता था तो उनकी विचारधारा में एक विचित्रता और उनकी महानता सदैव संसार में एक भव्य और महानता में परणित होती रही है। मैं इस सम्बन्ध में अधिक व्याख्या देना नहीं चाहता। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय केवल यह है कि राजा रावण के पुत्र नारायणतक ने उनके द्वारा तीन प्रश्न थे। सबसे प्रथम उन्होंने यह कहा कि यह आकाश गंगा क्या है और द्वितीय प्रश्न में कहा कि शब्दावली क्या है, शब्दों

का विज्ञान कहाँ जा सकता है और तीसरा यह कि मानव के श्वांस के साथ में कितने वायु परमाणु परमाणु, कितने अग्नि परमाणु जाते हैं जिससे शब्दों की इतनी विशाल गति बन जाती है। उन्होंने यह तीन प्रश्न महर्षि भारद्वाज के द्वारा किये।

महर्षि भारद्वाज ने उनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि हे राजा रावण पुत्र मैं ! तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने का सदैव प्रयत्न करता रहता हूँ, सदैव इन पर अनुसन्धान चलता रहता है। आज तुम्हें यह विचारना है कि आकाश गंगा, अन्तरिक्ष गंगा उसे कहा जाता है जहाँ नाना प्रकार के सूर्य रमण करते हैं, जहाँ नाना प्रकार के चन्द्रमा है, नाना ध्रुव हैं, जहाँ अन्नता में मानव नेति नेति का प्रतिपादन कर लेता है। आज जब मैं यह विचारने लगता हूँ कि परमात्मा के इस ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार के सौरमण्डल कहलाए गएं हैं। सबसे प्रथम सौर मण्डल का जो अधिपति है वह सूर्य कहलाया गया है। द्वितीय सौर मण्डल का अधिपति बृहस्पति कहलाया गया है और तीसरे सौर मण्डल का अधिपति ध्रुव कहलाया गया है परन्तु जब इसकी और भी विशाल कल्पना विचारकों में कही जाती है तो एक एक सौर मण्डल में कितने लोक होते हैं इसके ऊपर भी विचार विनिमय करना हमारे लिए बहुत अनिवार्य हो जाता है। महात्मा गरूड़ ने तो ऐसा कहा है कि सूर्य के अन्तर्गत करोड़ों मण्डल माने गएं हैं, बृहस्पति के आसन में जाने के पश्चात् करोड़ों से भी अधिक माने गएं हैं और ध्रुव मण्डल के अधीन होने वाले नाना और भी करोड़ों मण्डल माने गएं हैं। इसी प्रकार एक आकाश गंगा में लगभग अनन्त सूर्य माने गएं हैं, अनन्त चन्द्रमा माने गएं हैं, नाना ध्रुव माने गएं हैं, नाना जेष्ठाय माने गएं हैं। उनकी गणना करना मानव के लिए असम्भव हो जाता है। परमाणुवाद के विज्ञानवेत्ताओं ने यह कहा है कि जब प्रकृति की गोद में चले जाते हैं वहाँ नाना प्रकार के परमाणुओं की गति हमारे लिए ऐसी प्रतीत होने लगती है कि वहाँ नेति नेति का उच्चारण करना हमारे लिए महान अस्त व्यस्त होने लगता है। बेटा मैं विज्ञान के क्षेत्र ! में अधिक नहीं जाना चाहता हूँ। विज्ञान की उस महानता को प्रकट करना मेरे लिए एक असम्भव सा प्रतीत होता है। आज तो इस सम्बन्ध में केवल एक परिचय देता

चला जा रहा हूँ।

आओ मेरे प्यारेॠ !षिवर मैं आज उच्चारण करता हुआ बहुत दूर चला गया हूँ। वाक्य ! !यह उच्चारण कर रहा था कि राजा रावण का पुत्र नारायणतक ने यह कहा कि प्रभु मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव की शब्दावली में कितनी तरंगे होती हैं। उन्होंने कहा कि शब्दावलियों का जो उद्गम है वह मानव के मुखारविन्द से उत्पन्न होता है। मानव एक शब्द उच्चारण करता है तो एक ही शब्द में लगभग करोड़ों परमाणु तो अग्नि के चले जाते हैं और वायु के भी चले जाते हैं। इसी प्रकार बराबर परमाणु जाने के पश्चात मानो हमारे यहाँ जो विज्ञानवेत्ता होते हैं जो परमाणुवाद में जाने वाले होते हैं जो चित्रवली लेते हैं उन्हीं परमाणुओं को एकत्रित करके ऐसा सिद्ध होता रहता है कि मानो जो मानव लगभग चार हजार वर्ष पूर्व समाप्त हो जाता है ओर एल लाख वर्ष पूर्व भी जिसका निधन हो गया है उनका जो शब्द है वह अन्तरिक्ष में विराजमान रहता है उन्हीं शब्दों के साथ में जो परमाणु रहते हैं उन परमाणुओं को एकत्रित करके वह जो एक लाख वर्ष पूर्व जिस मानव का निधन हो गया था आज उस मानव की यन्त्रों में चित्रवली सम्भव हो जाती है। मैं इस सम्बन्ध में अधिक विज्ञानवेत्ता नहीं हूँ। केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि महर्षि भारद्वाज ने महात्मा सोमकेतु मुनि महाराज जो लगभग देखो, पाँच हजार वर्ष पूर्व समाप्त हो चुके थे। परन्तु उनके एक रक्त के बिन्दु से जो उन्हें कहीं से प्राप्त हो गया था उनकी चित्रवली यन्त्रों में संभव कर दी। मुझे उस चित्र को दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मैं उस विज्ञान को अधिक चर्चा नहीं देना चाहता हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह कि आज हमें उस विज्ञान को विचार विनिमय कर लेना चाहिए जिसे विज्ञान के आश्रित हो करके मानव का विज्ञान वास्तव में परमाणुवाद में संलग्न होता हुआ इस मानव को एक पवित्र ज्योति दीर्घया प्रभे अकृत दृष्टिपात कराता रहे।

आओ मेरे प्यारे आज मैं विज्ञान की चर्चा अधिक नहीं देना चाहता हूँ क्योंकि !ऋषिवर ! यह तो वैज्ञानिकों का विषय है, विज्ञानवेत्ता समीप हों और यह वार्तायें प्रकट हों तो यह बहुत ही सुन्दर होता है। मुझे किसी किसी काल में सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। महाराजा

अश्वपति के यहाँ जब शिक्षार्थियों को शिक्षा प्रदान किया करते थे तो उस समय इस प्रकार के वेद मन्त्रों का प्रादुर्भाव होता और उसके ऊपर टिप्पणियां प्रारम्भ होती। ऋषिवर और ब्रह्मचारी दोनों हर्षध्वनित हो जाते। ऐसा प्रतीत होता था जैसे विज्ञान के युग में हों उसकी छत्रछाया में ही हमारा जीवन पनप रहा हो, हमारे जीवन की धारा उन्हीं से सुगठित हो रही हो। उच्चारण करने का अभिप्रायः कि शब्द विज्ञान, मानव विज्ञान और जहाँ तक लोक लोकान्तरों का विज्ञान है यह तो बड़ा विशाल माना गया है। जैसा माता गार्गी ने याज्ञवलक्य मुनि महाराज से कहा था कि महाराज मैं यही तो जानना चाहती ! हूँ कि यह जो सर्वत्र चेतना है यह द्यौ लोकों में किस प्रकार रहती है। महर्षि यही तो !याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि हे देवी ऋत और सत का जगत माना गया है। ऋत और सत इस जगत में ओत प्रोत रहता है। हमारे यहाँ जो उपनिषदों का सहारा लेकर मानव उज्ज्वल बनना चाहता है, पवित्र बनना चाहता है, वह मानवता की ज्योति को प्राप्त करता हुआ इस संसार सागर से पार हो जाता है।

आओ मेरे प्यारेमैं आज आत्मा की विव !ऋषिवर !ेचना पुनः करने जा रहा हूँ जिसे बहुत पूर्व काल से प्रकट कराता चला आया हूँ। बेटा मैंन कल के वाक्यों में तुम्हें ! प्रकट कराया था कि प्रजापति की तीन प्रकार की सन्तान होती है। सबसे प्रथम देवता होते हैं, दूसरे मानव होते हैं और तीसरे दानव होते हैं। एक समय ऐसा हुआ कि तीनों सन्तानों ने विचारा कि आज हम अपने पिता के द्वार पर चलेंगे और उनसे प्रश्न करेंगे जिससे हमारा कल्याण हो। उस समय तीनों सन्तान प्रजापति के आश्रम में प्रविष्ट हो गई। महाराजा प्रजापति ने उनका बड़ा सुन्दर स्वागत किया। विराजमान हो जाने के पश्चात महाराजा प्रजापति ने कहा कि कैसे आना हुआ। उन्होंने कहा कि हे भगवन ! आपके चरणों को स्पर्श के लिए आप पहुंचे हैं। उन्होंने कहा कि क्या उपदेश पान करना चाहते हो? उन्होंने कहा कि भगवन जिससे हमारा कल्याण हो। इस वहतरणी ! नदी से हम पार हो जाएं जिससे मान और अपमान होता रहता है, जिससे हमारा हृदय

विशाल हो जाएं। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर।

मेरे प्यारे आप हमें उपदेश दीजिए। !सबसे पहले देवताओं ने कहा कि भगवन !ऋषिवर ! प्रजापति ने उन्हें द का उपदेश देते हुए कहा कि तुम संसार में दमनशील रहो क्योंकि जितने देवता दमनशील रहेंगे उतना ही यह संसार और धर्म ओर मर्यादा विशालता को प्राप्त होती रहेगी। द का उपदेश पान करते ही देवता प्रसन्न हो गये।

अब मानव आए उन्होंने कहा कि प्रभु हमें भी उपदेश दीजिए। उन्होंने उन्हें भी द का उपदेश दिया। द का उपदेश पान करके जब उन्होंने गमन किया तो प्रजापति बोले, अरे, तुमने क्या जाना है? उन्होंने कहा प्रभु आपने हमें द का उपदेश दिया है। द का ! अभिप्राय है मानव को दानी बनना चाहिए। दान देना चाहिए क्योंकि मानव का कल्याण होता है वह दान से होता है। कौन सा दान? जो वस्तु अपने द्वारा हो उसका दान करो। यज्ञ करो, उसी से तुम्हारा कल्याण होगा। द से दान बनता है इसलिए हम दानी बनें, भव्य बनें। दान देते है तो हमारे द्रव्य की सुरक्षा होती है। आज जो मानव संकीर्णता में चला जाता है मानो वह कृपण बन जाता है तो उसका द्रव्य कुछ काल के पश्चात नष्ट हो जाता है। जो मानव दान देता है, उज्ज्वल कार्य करता है वह मानव मननशीलता में चला जाता है।

उसके पश्चात् दैत्य आ पहुंचे। दैत्यों को भी उन्होंने द का उपदेश दिया। द का उपदेश पान करते ही दैत्य जब गमन करने लगे तो प्रजापति बोले अरे, तुमने कुछ पान किया, उन्होंने कहा कि प्रभुआपने हमें द का उपदेश दिया है। द का अभिप्रा !य है कि दैत्यों को संसार में दया करनी चाहिए। जितने मानव उपद्रवी होते हैं वह सब दैत्यों की संज्ञा होती है। इसलिए दैत्यों को संसार में दया करनी चाहिए जब तक दयावान नहीं बनेंगे तब तक प्रजापति की संतान नहीं कहलाते। वह आगे चलकर के उद्दण्डता में परिणित हो जाते हैं। राष्ट्र की परम्परा नष्ट हो जाती है। देवताओं का जीवन त्रहि त्रहि करने लगता है।

तो मुनिवरों तीन प्रकार की सन्तान उस प्रजापति की कहलाती हैं। विचार आता है ! कि प्रजापति कौन है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने और भी आचार्यों ने कहा है कि हमारे

यहाँ जो प्रजापति है वह हृदयको माना है। जैसे परमपिता परमात्मा का यह जगत हृदय माना है। इसी प्रकार मानव का जो हृदय है वह प्रजापति कहलाता है। इसी में नाना प्रकार की तरंगों का जन्म होता रहता है। इसी में मानो देवता की प्रवृत्ति आती रहती है, मानव की प्रवृत्ति आती रहती है और दैत्य भी बन जाता है। मेरे प्यारे ! मानव को विचारना है कि तीन अवस्थाओं में मानव को सामान्य रहना है। !ऋषिवर विचारशील बनना है क्योंकि अपने जीवन को अस्त व्यस्त नहीं करना चाहिए। जो मानव उपद्रवी बन जाता है उसका अन्तरात्मा उससे दुखित होता हुआ अपनेपन की वार्त्ता को नष्ट कर देता है। इसलिए आज हमें अपने हृदय को स्वच्छ और पवित्र बनाना है। जब तक हमारा हृदय स्वच्छ और पवित्र नहीं बनेगा, महानता में नहीं आयेगा तब तक हमारा कल्याण नहीं हो सकेगा क्योंकि प्रकृतिवाद का जो निर्माण होता है, प्रकृतिवाद में जो परमाणुओं का चुनाव होता है वह मानव के विचारों से हुआ करता है। जैसा मानव का विचार होता है वैसा वायुमण्डल बन जाता है जैसा वायुमण्डल होता है वैसा परमाणु आना प्रारम्भ हो जाता है वेसा ही यह जगत बन जाता है। आज मानव समाज का निर्माण मानव के उन विचारों से बनता है जिन विचारों से यह जगत का प्रार्दुभाव होता है, जगत की प्रतिभा का जन्म होता है, राष्ट्रपिता का निर्माण होता है, राष्ट्रीयता आती है, पवित्र बनती है तो मानव के विचारों से बना करती है। एक गृह है वह जब पवित्र बनता है तो विचारों से बनता है। जहाँ गृहस्थ आश्रम में पति पत्नी गृहस्थ के नाम की अग्नि की पूजा करते हैं, जहाँ पति पत्नी प्रसन्न रहते हैं, एक दूसरे से संतुष्ट रहते हैं वह गृह पवित्र होता है। इसी प्रकार वह राष्ट्र पवित्र होता है, मानवता पवित्र होती है जहाँ राजा और प्रजा दोनों एक साथ मिलकर चला करते हैं। जहाँ दोनों का विचार सामान्य हो जाता है।

इस सम्बन्ध में मुझे एक वार्त्ता स्मरण आती चली जा रही है कि एक समय भगवान मनु की परम्परा में स्वांग केतु नाम के राजा हुए। वह बड़े पवित्र थे और महानता में उनकी सदैव संलग्नता रहती थी। उनके एक ही पुत्र था वह बड़ा महान और पवित्र कहलाया जाता था। राजा के राष्ट्र में यह शिक्षा रहती थी कि राजा के राष्ट्र में प्रत्येक

समाज एक दूसरे से संतुष्ट रहना चाहिए। एक दूसरे का कोई ऋणी नहीं होना चाहिए। कर्त्तव्यवाद की वेदी राजा के राष्ट्र में होनी चाहिए। कर्त्तव्य किसे कहते हैं? एक दूसरे को मानव का ऋणी नहीं बनना चाहिए। ऋण किसे कहते हैं? किसी मानव पर देवता का ऋण होता है, किसी पर राष्ट्र का ऋण होता है, नाना प्रकार के मानव पर ऋण होते हैं। सबसे प्रथम देव ऋण होता है। देव ऋण के लिए प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक ब्रह्मचारी को यज्ञ करना चाहिए। देव ऋण से उऋण हो जाता है। उसके पश्चात् राजा के राष्ट्र का जो नियम होता है उस नियम में मानव को अपने को धारण कर लेना चाहिए मानो राष्ट्र ऋण से मानव उऋण हो जाता है। इसी प्रकार ऋषि ऋण होता है, जितना अध्ययन करते हो दर्शनों का अध्ययन, ऋषि मुनियों के विचारों को अपने मानव जीवन में धारण करने के लिए ही मानव ऋषि ऋण से उऋण हो जाता है। इसी प्रकार पित ऋण। माता पिता की सेवा करना, आज्ञा का पालन करना, यह माता पिता के ऋण से ब्रह्मचारी की उऋण हो जाता है।

मेरे प्यारे राजा के राष्ट्र में नियम था कि एक दूसरे का कोई ऋणी नहीं !ऋषिवर ! रहना चाहिए। राजा के राष्ट्र में जब म ानव अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करता है तो उस मानव का स्वभाव परिवर्तित हो जाता है, निर्मोही जीवन बन जाता है। निर्मोही जीवन बन जाने के पश्चात् वह मानव कर्त्तव्य की वेदी पर आ करके जैसे एक न्यायाधीश होता है और जब वह न्याय करता है तो वह पुत्र को और पिता को नहीं दृष्टिपात करता उसे तो न्याय करना है, कर्त्तव्य का पालन करना है। यदि न्यायाधीश के मन में मोह आ गया है, ममता आ गई तो उसको न्यायाधीश नहीं कहना चाहिए। हमारे यहाँ ऐसी परम्परा मानी जाती है कि कर्त्तव्य का पालन करने में न्याय और दया की दृष्टि में दोनों में भिन्नता आ जाती है। इसी को परिवर्तित कहते हैं इसी को जीवन की एक महान अत्रीत कहा जाता है। मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। राजा के राष्ट्र में ऐसी निर्मोही प्रजा हो गई अपने अपने कर्त्तव्यवाद की वेदी पर आ जाने के पश्चात राजा के राष्ट्र में एक महानता छा गई। उस समय राजा के एक ही पुत्र था जिनको सोनमुक कहा जाता है। एक समय ब्रह्मचारी कुल में अध्ययन करते हुए उन्होंने

भयंकर वन में गमन किया। भंयकर वन में भ्रमण करते वह महर्षि पणपेतु ने उनका आदरा किया, आसन दिया और कहा कि हे पुत्रतुम्हारा क्या परिच !य है, तुम्हारा कौन नगर है? क्या नाम है? पिता का क्या नाम है? उन्होंने कहा कि भगवन मेरा जो नाम ! है वह निर्मोही है। मेरे पिता का नाम भी निर्मोही है। मेरा राष्ट्र भी निर्मोही है और प्रजा भी राष्ट्र में निर्मोही रहती है। जब यह वाक्य उन्होंने स्मरण किया तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। महात्मा पणपेतु मुनि ने कहा हे पुत्र मैं यही नहीं जान पाया हूँ कि ! तुम्हारा राष्ट्र कैसे निर्मोही है। निर्मोही किसे कहते हैं। निर्मोही तो उसे कहते हैं जहाँ किसी की ममता नहीं होती। उन्होंने कहा कि मेरे राष्ट्र में कर्त्तव्य के आगे मोह को त्याग दिया जाता है। हे भगवन !ऋषिवर !आपको आश्चर्य है तो इसे देखिये। मेरे प्यारे ! महाराजा पणपेतु ने ब्रह्मचारी को आसन पर त्याग दिया और वहाँ से प्रस्थान कर लिया। भ्रमण करते हुए वह राजा के राष्ट्र में प्रविष्ट हो गये। राजा अपने राजस्थल पर विराजमान थे। राजा ने अपने आसन को त्याग दिया और कहा कि ऋषिवर पधारिए। ऊँचा आसन दिया। ऋषिवर विराजमान हो गये। राजा ने नमस्कार करते हुए कहा कि कहिए भगवन आपके लिए में !मेरे लिए क्या आज्ञा है। उन्होंने कहा कि हे राजन ! आ !एक दुःखद वार्त्ता लेकर के आ पहुंचा हूँ। राजा ने कहा कि भगवनज्ञा कीजिए। उन्होंने कहा कि राजन मेरा पुत्र तो नहीं परन्तु !आपके कोई पुत्र है। हां भगवन ! नामोच्चारण करने के लिए कह देते हैं। उन्होंने कहा कि तुम्हारा पुत्र मेरे आश्रम में पहुंचा और मृगराज ने उसके ऊपर आक्रमण करके उसके दो भाग कर दिये। वह मृतक शरीर विराजमान हौ आप उनको ला करके उनका दाह संस्कार कर दीजिए। राजा ने कहा कि हे भगवन आपको यह प्रतीत है कि मृगराज ने उनके ऊपर आक्रमण ! क्यों किया। उसका कर्त्तव्य था उसका आहार बन गया। जब उसका आहार बन गया हमारा क्या रह गया। संसार में कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। अग्नि कद !तो भगवनापि नष्ट नहीं होती। जल समाप्त नहीं होता। वायु समाप्त नहीं होती। पृथ्वी तत्त्वे समाप्त नहीं होते। अन्तरिक्ष समाप्त नहीं होता। यह तो परमाणुओं का शरीर बना हुआ है अपने अपने कारणों में लय हो गया और जीवात्मा किसी काल में नष्ट नहीं होता तो भगवन हम !

किसका मोह करेकौन किसका पुत्र है वह तो उसका कर्त्तव्य है कि वह उसका आहार बन गया है उसको पान करने दीजिए।
मेरे प्यारे ऋषि के आश्चर्य की सीमा न रही। ऋषि ने कहा कि वास्तव में !ऋषिवर ! राजा तो निर्मोही है। उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया और सोचा कि पिता को इतना मोह नहीं होतामाता को अति मोह होता है। वह उसका आहार बन गया है उसको पान करने दीजिए। वह माता के द्वार पर पहुंचे। माता ने भी उसी प्रकार स्वागत किया। माता को उन्होंने सब गाथा कह सुनाई। माता ने भी वही उत्तर दिया कि हे भगवन आप ! किस मोह में भ्रमण कर रहे हैं। मोह ममता तो मानव के अज्ञान का सूचक है। बिना ममता के संसार का पालन नहीं होता यह मैं जानती हूँ परन्तु जहाँ कर्त्तव्यवाद आता है वहाँ ममता का भाव समाप्त हो जता है। हे ऋषिवर मैं आपके वाक्यों को स्वीकार ! नहीं करूंगी। ऋषि ने विचारा कि ममता को ममता नहीं, चलो पत्नी के द्वार चलते है। चरणों को स्पर्श किया और कहा कि कहिए भगवन क्या आज्ञा है। उन्होंने कहा कि ! मेरा पति है। उन्होंने कहा कि तुम्हारे पति के !तुम्हारा पति है। हां भगवन !हे देवी मृगराज ने दो भाग कर दिए हैं। मेरे आश्रम में स्थिर हो रहा है। उसको ला करके उसका दाह संस्कार कीजिए। उससमय पत्नी ने कहा कि भगवन यह मेरा कार्य ! नहीं यह मृगराज का हो चुका है। आत्मा कदापि नष्ट नहीं होता। आत्मा चेतना में यह जब !आता है कि कौन किसका पुत्र है कौन किसी पत्नी है कौन पति होता है भगवन मैं उस ज्ञान में जाती हूँ तो वास्तव में एक ही चेतना प्रतीत होने लगती है। उस चेतना में सर्वस्व संसार गति कर रहा है। ऋषिवर आश्चर्य से चकित हो गये। वह भोजाई के द्वार पहुंचे। भोजाई से भी उन्हें यही उत्तर प्राप्त हुआ। उस उत्तर को पान करने के पश्चात् उन्होंने एक समाज एकत्रित किया। उस समाज में ऋषि ने अपना उपदेश दिया और कहा कि राष्ट्र पुत्र मेरे आश्रम में विराजमान है। हे प्रजाओं तुम्हें राष्ट्र पुत्र से स्नेह ! यहाँ !है तो उसका दाह संस्कार करो। प्रजा ने भी उन्हें यही उत्तर दिया कि महाराज तो सब निर्मोही हैं। महात्मा पणपेतु मुनि महाराज ने वहाँ से अपना प्रस्थान कर लिया। वह भ्रमण करतेहुए उसी आश्रम में आ गएं और राष्ट्र पुत्र से कहा कि हे राष्ट्र पुत्र !

वास्तव में तुम्हारी नगर निर्मोही है। तुम्हारा पिता भी निर्मोही है और तुम्हारा नाम भी निर्मोही है।

बेटावाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है !? जब हम आत्मवेत्ता के ऊपर जाते हैं, हृदय को अपना पिता स्वीकार करते हैं। देवता, मानव और दानव की चर्चा जब आती है तब यही प्रतीत होता है कि जहाँ कर्त्तव्य का भाव आता है, कर्त्तव्य की वेदना आती है वहाँ मानव को ममता नहीं रहती जैसा मैंने अभी अभी कहा है न्यायाधीश के सम्बन्ध में। राजा भी वही होता है जो निष्पक्ष हो करके अपनी प्रजा में न्याय करता है। माता निष्पक्ष हो करके पुत्र पालन करती है क्योंकि वह जो पालन माता ने किया है माता का उस पर अधिपथ्य नहीं रहता। वह राष्ट्र की सम्पदा हो जाती है। मेरे प्यारी माता ! आज जिस पुत्र को तुमने पनपाया है, जिस पुत्र को तूने अपने गर्भ स्थल में धारण किया है वह पृथक होते ही तेरा अधिपथ्य उस पर नहीं रहता। आज अपने प्यारे पुत्र को जिसको तूने पनपाया है उसे नष्ट नहीं कर सकती। उसका कोई भी अंग भंग नहीं कर सकती। उस समय मानो माता को मूर्ख कह करके बुद्धि की चिकित्सा कराने लगते हैं। मूल कारण क्या कि माता का उस पर अधिपथ्य नहीं रहता यहाँ कर्त्तव्य की वेदना के ऊपर यही आता है कि हे माता(गुहाटी में दिया हुआ प्रवचन) यह तेरा कर्त्तव्य है। !

१६ 02 11 1970 पुष्प 14 यौगिक चर्चाएं

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान सदैव महानता में परणित रहता है। मैंने इससे पूर्व शब्दों में कहा था कि मेरी माता नहीं जानती कि तेरे गर्भस्थल में कौन रचना कर रहा है। वह कितना वैज्ञानिक है अन्धकूप में मानव जैसे शरीर का निर्माण कर रहा है परन्तु भोली माता को यह प्रतीत नहीं होता कि कौन रचना कर रहा ह तो आज हम उस अपने महान प्यारे प्रभु का गुणगान गाने के लिए सदैव तत्पर होते रहें क्योंकि इसी से मानव को आत्म शान्ति प्राप्त होती है।

बेटा मुझे स्मरण है महर्षि भुंजु जी महाराज कितने महान विज्ञान में सदैव परणित !

रहते थे। वह शाण्डिल्य गोत्र में उत्पन्न हुए थे। महर्षि सौपंग गृति महाराज उनके पिता कहलाते थे। वह सदैव ज्ञान विज्ञान में परणित रहते थे क्योंकि यह उनका जन्मसिद्ध अधिकार था। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस ज्ञान और विज्ञान के ऊपर बहुत ही बल दिया जाता है। कहीं आयु का विज्ञान है, कहीं मानो परमाणुवाद का ज्ञान विज्ञान है। इसी प्रकार कहीं अणु का है, कहीं विभु में मानव पहुंच जाता है। मानव यह विचारने लगता है कि हमारा जो अन्तरात्मा है वह अणु है वह विभु है इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचना प्रारम्भ होने लगती है। मानव के मस्तिष्क में एक नवीन से नवीन वार्त्ता प्रारम्भ होने लगती है जब उस मानव का हृदय और मस्तिष्क दोनों का समन्वय होने लगता है।

संसार में मानव का हृदय और मस्तिष्क कैसे एकाग्र होता है इसके ऊपर विचार विनिमय करना है। जब मानव का हृदय और मस्तिष्क, दोनों का समवन्य हो जाता है। उस समय मानव की प्रवृत्तियों में कितना ज्ञान व विज्ञान और प्रभु के सम्बन्ध में कितनी उसकी अगाध श्रद्धा उत्पन्न होने लगती है, मैं इस सम्बन्ध में कुछ सूत्म सी विवेचना करने वाला हूँ।

बेटा मानव का हृदय और मस्तिष्क उस समय एकाग्र होने लगता है जब मानव की ! संसार का जो इच्छायें होती हैं, संसार का जो वैभव होता है, भौतिकतावाद होता है जब वह उनको अपने में संकुचित्त कर लेता है, उस समय मानो हृदय में विशालता आनी आरम्भ हो जाती है। हृदय कैसा विशाल होता है? मानव का हृदय विशालता में उस काल में आता है जब उसके विचारों में एक महान उदारता का, ज्ञान का, विचार का महान वृत्त उत्पन्न हो जाता है। जैसे एक मेरी पुत्री है किसी ब्रह्मचारी के दर्शनों को पान कर रही है, उसके सौन्दर्य, को उसकी प्रतिभा को अपने में समेट लेती है और विचारती है कि यह ब्रह्मचारी कितना सुन्दर है, इसका सौन्दर्य उसके मस्तिष्क में परणित हो जाता है परन्तु जब मैं अपनी पुत्री से यह प्राप्त करने लगता हूँ कि हे बालिका ! आज तू इस ब्रह्मचारी को दृष्टिपात कर कि इसमें वास्तविकता क्या है तो उसका जो हृदय है जब विशालता में परणित होता है तो वह कहती है कि इस ब्रह्मचारी की प्रतिभा

को दृष्टिपात करके मुझे प्रभु का विज्ञान स्मरण आने लगता है। बेटा प्रभु का विज्ञान ! कितना शिरोमणि है? वह उच्चारण करती है कि मुझे प्रभु का ज्ञान होता है। मेरे प्यारे ! प्रभु ने कितना सुन्दर लेपन किया है, कहाँ से चक्षुओं का निर्माण किया है, किस धातु को एकत्रित किया है, कहाँ कहाँ से लाकर के प्रभु ने यह सुन्दर मानव शरीर निर्माण कर दिया है। तो बेटाजब वह पुत्री सदैव अपने विशाल हृदय स !े विचार विनिमय करती है तो उसका हृदय और मस्तिष्क दोनों में ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा आ जाती है, दोनों का समवन्य होने लगता है।

मेरे प्यारे मस्तिष्क के जितने जागरूक तन्तु हैं उनमें हमारा एक !मस्तिष्क !ऋषिवर ! ब्रह्मरन्ध्र नाम का तन्तु होता है। उस ब्रह्मरन्ध्््र में नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों से सम्बन्धी जो सूक्ष्म वाहक नाड़ियां होती हैं उनका सम्बन्ध लोक लोकान्तरों से होने लगता है। एक भौतिक विज्ञानवेत्ता नाना प्रकार के परमाणुओं को जानता हुआ, उनमें जाता हुआ अपने ब्रह्मरन्ध्र में जो नाना प्रकार का अकृत देखो, जिसको लघु मस्तिष्क कहते हैं, हिरात मस्तिष्क भी कहते हैं, उस मस्तिष्क में ऐसे तन्तुओं का जन्म हो जाता है जिसका सम्बन्ध मानो नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों से है। मैं एक सार्वभौम सिद्धान्त तुम्हारे सम्मुख प्रकट किया करता हूँ कि यदि मानव के मस्तिष्क में लोक लोकान्तरां के जाने वाले यन्त्र नहीं होंगे तो मानव लोक लोकन्तरों को किसी काल में जान ही नहीं पाता, उन उनके ऊपर वह टिप्पणी ही कर पाता है।

मैं कल के वाक्यों में तुम्हें नचिकेता की चर्चा प्रकट कर रहा था। जब बालक नचिकेता से आचार्य ने यह कहा कि हे ब्रह्मचारी तू !संसार के राष्ट्र को क्यों स्वीकार करता है, संसार के वैभव को क्यों अपने में नहीं अपनाता है, संसार का राष्ट्र स्वीकार कर जिसमें नाना प्रकार की पत्नियां हैं इसको क्यों नहीं स्वीकार करते हो। बालक नचिकेता ने जब उन्हें आठवां वर्ष प्रारम्भ था, कितने सुन्दर शब्दों में कहा था, कि प्रभु आप मुझे ! संसार का वैभव दे रहे हैं, नाना पत्नियां, राष्ट्र और अश्व मेरे लिए नियुक्त कर रहो हो परन्तु प्रभु यह आज हैं कल नहीं होंगे। मैं यह चाहता हूँ कि जब आत्मा इस शरीर ! को त्याग कर जाएं तो आत्मा के साथ में वह महान ज्ञान होना चाहिए, वह प्रकाश

होना चाहिए जो सदैव बना रहे। मेरे जीवन के साथ में बना रहे मानो मैं संसार में जन्म लेने वाला बनूं अथवा न बनूं परन्तु मेरा ऐसा ही जीवन बना रहे।

ऐसा वाक्य जब नचिकेता ने प्रकट किया तो यमचार्य ने अपने मस्तिष्क में यह जान लिया कि वास्तव में इस मधु विद्या का यह ब्रह्मचारी अधिकारी है, इसी को जानने के लिए इच्छुक है। मैं इन वाक्यों की पुनरूक्ति करने नहीं जा रहा हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि बालक नचिकेता के प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने तीन प्रकार के शरीरों की विवेचना करनी प्रारम्भ कर दी उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मचारी तुम्हें यह ! प्रतीत हो गया होगा कि हमारा यह जो स्थूल शरीर है इसमें पार्थिव तत्त्व प्रधान माना गया है उनको हमारे यहाँ स्थूल शरीर कहा जाता है, इसमें क्षुधा है और तृष्णा है, नाना प्रकार के दुःख और सुख का अनुभव करता है। इसमें अपान वायु अपना कार्य कर रहा है और उदान अपना कार्य कर रहा है, व्यान अपना कार्य कर रहा है। इसी प्रकार प्राण इसमें गति कर रहा है। आज हे बालक नचिकेता तुम्हें प्रतीत होना चाहिए कि मानव ! के एक श्वास की गति में कितने परमाणु उसके साथ में जाते हैं। आचार्य ने ऐसा कहा था कि वास्तव में मैं इसको जानने वाला हूँ कि मानव के एक श्वास में कितने परमाणु जाते हैं। उन्होंने कहा कि हे बालक आज तुम उसको जानना चाहते हो तो निर्णय ! करा देता हूँ परन्तु यह जो परमाणुवाद है इसको क्यों जानना चाहते हो।

बालक ने कहा कि प्रभुमैं इसलिए जानना चाहता ! हूँ क्योंकि इसमें सर्वत्र संसार का विज्ञान है, आत्म विज्ञान है इसी में मानव के जीवन की सुन्दर परिक्रिया रहती है इसीलिए मैं उसको जानने के लिए सदैव उत्सुक रहता हूँ। यमाचार्य ने बालक नचिकेता से कहा कि हे ब्रह्मचारीजब मानव एक श्वास लेता है तो उसमें एक खरब प !ांच अरब पांच सौ बावन परमाणु तो वायु के जाते हैं, इतने ही परमाणु अग्नि के जाते हैं और इतने ही परमाणु जल के जाते हैं, इतने ही परमाणु अन्तरिक्ष के जाते हैं और 2 हजार पृथ्वी के परमाणु माने जाते हैं। इतने 49 लाख 29 करोड़ 92 अरब 65 खरब परमाणु मानो देखो, अन्तरिक्ष से मानव के शरीर में धारण हो जाते हैं जिससे मानव का जीवन संचारित रहता है, मानव के जीवन को सुन्दर परिस्थिति और परिअस्पत

रहता है।

इसी प्रकार ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु वास्तव में मैं यह और जानना चाहता हूँ कि श्वास ! के जाने का अभिप्राय क्या है? बालक नचिकेता से यमाचार्य ने कहा कि हे बालक नचिकेता जब यह आत्मा इस शरीर को त्याग करके जाता है तो उस समय सत्रह ! तत्त्वों का शरीर माना जाता है। सत्रह तत्त्व पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच प्राण उसके साथ साथ पांच तन्मात्रायें, मन और बुद्धि कहलाया जाता है। इस शरीर को त्याग करके यह सत्र यह तत्त्व इसके साथ जाते हैं। इन्हीं के गर्भ में चित्त होता है, अहंकार होता है जो ज्ञानेन्द्रियों का प्रतिनिधि माना जाता है, कुछ तन्मात्राओं का प्रतिनिधि माना गया है। इसी प्रकार श्वासों की गति के साथ साथ उन श्वासों के परमाणुओं को जो वैज्ञानिक जान लेता है वह संसार में मानव शरीर का निर्माण कर सकता है। मानव शरीर को बिना माता पिता के गर्भ के ही उन परमाणुओं को एकत्रित करने की क्षमता योगी में आ जाती है।

मुझे स्मरण आता है संसार में जीवन मुक्त किसे कहा जाता है। हमारे यहाँ योगियों की तीन प्रकार की तो विशेष गति होती है परन्तु चतुर्थ प्रकार की गति अस्वेत कहलाई गई है। ऐसा कहा जाता है, यौगिक आचार्यों ने कहा है कि गति तो योगी की जीवनमुक्त होती है, एक सन्धेवनी होती है, एक जनता जनार्दन में समाधिष्ट होती है, एक सौभनी होती है और एक इन्द्र केतु होती है। यह नाना प्रकार की गति होती हैं योगियों की।

जीवनमुक्त उस प्राणी को कहा जाता है जो मानव अपने इस स्थूल शरीर की परिक्रिया को जान लेता है। श्वासों की गति में उस मानव की प्रवृत्ति हो जाती है। आज कोई मानव योगी बनना चाहता है तो अपने मानव शरीर के अंग प्रत्येक को ओ३म् रूपी धागे से पिरो देना चाहिए। ओ३म् रूपी धागे से कौन पिरोता है? जब प्रत्येक श्वास के साथ में ओ३म् का तारतम्य लग जाता है जैसे परमात्मा की जो ऋत है यह प्रत्येक लोक लोकान्तरों में पिरोई हुई है। जैसे माला का मन होता है इसी प्रकार मानव के प्रत्येक श्वास के साथ में मस्तिष्क और हृदय दोनों का समन्वय करने वाला एक ओ३म् रूपी धागा होता है जैसे मनकों को माला के रूप में परणित कर देता है, जैसे लोक

लोकान्तरों को सौर मण्डल के रूपों में परणित कर देता है, जैसे आकाश गंगा का निर्माण हो जाता है इसी प्रकार आज हम इस महानता को विचार विनिमय करने वाले बनें। हमारा तारतम्य होना चाहिए।

बेटा मैं साधकों की वार्त्ता प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। मैं प्रभु के विज्ञान की चर्चा ! कर रहा हूँ। प्रभु का कितना विशाल विज्ञान है। जीवनमुक्त प्राणियों की विवेचना कर रहा हूँ। जीवनमुक्त कौन होते हैं? जीवनमुक्त वह प्राणी होते हैं जिनके पाप और पुण्य दोनों व्यापक नहीं होते। दोनों के प्रभाव में वह नहीं आ पाता। वह योगी कैसा होता है? आज वह स्थूल शरीर को धारण करना चाहता तो बिना माता के गर्भ के ही स्थूल शरीर को धारण कर लेता है। कैसे कर लेता है? क्योंकि वह जो उसका परमाणुवाद प्राण के द्वारा श्वासों की गति के द्वारा जो वायुमण्डल में रमण कर रहा है, विद्युत में रमण कर रहा है, द्यौलकों में उसकी प्रतिष्ठा हो रही है, उसी में वह रमण कर रहा है। उन परमाणुओं को एकत्रि कर लेता है। एकत्रित करके वह स्थूल रूप में भी परणित हो जाता है और एक क्षण समय में उनको त्यागने वाला भी बन जाता है ऐसा मुझे योगियों से प्राप्त हुआ है।

जीवनमुक्त वही प्राणी होते हैं जो देखो, परमाणुवाद पर गतिशील हो जाते हैं उनका अधिपथ्य उन पर हो जाता है जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ता मंगल की यात्रा करने जा रहा है परन्तु मंगल में जाने वाले जो यन्त्र हैं उन पर जब तक उसका अधिपथ्य नहीं होता जब तक मंगल की यात्रा नही हो पाती। इसी प्रकार जो जीवनमुक्त योगी होते हैं उनके लिए वह जो परमाणु रूपी यन्त्र है उस पर अधिपथ्य होना चाहिए। उसे ज्ञान होना चाहिए कि वायु के परमाणु कितनी मात्रा में होने चाहिए जल परमाणु कितनी मात्रा में होने चाहिए इनका मिलान भी देखो, हृदय और मस्तिष्क दोनों की एकता वाला जो महान होता है इनको एकाग्र करके चन्द्र यात्रा सहज हो जाती है क्योंकि चन्द्रमा ही उनका शरीर बन जाता है सूर्य मण्डल उनका शरीर बन जाता है।

मेरे प्यारेमहानन्द जी ने क !ई काल में प्रकट कराते हुए कहा है कि भौतिक विद्वान नाना प्रकार के परमाणुवाद में गति कर रहा है। आग्नेय शस्त्रों का निर्माण कर रहा है

चन्द्रमा में जाने वाले यन्त्रों के यातायात बन गएं हैं। इस सम्बन्ध में मुझे अधिक विवेचना प्रकट नही करनी है केवल एक वाक्य यह प्रकट करना है कि यौगिक जो विज्ञान है आत्मिक जो विज्ञान है वह मानो जहाँ भौतिकवाद समाप्त होता है वहाँ से आध्यात्मिक बंदका प्रारम्भ होता है। आज तक इतना समय हो गया सृष्टि के प्रारम्भ को परन्तु कोई वैज्ञानिक ऐसा उत्पन्न नहीं हुआ जिसने अपने यन्त्रों से आत्मा को दृष्टिपात कर लिया हो। जो चेतना मानव के शरीर में दृष्टिपात होती है उसे वैज्ञानिक दृष्टिपात नहीं कर सका है। वह इतनी सूक्ष्म है और उसमें विशालता इतनी होती है कि सर्वश ब्रह्माण्ड का ज्ञान और विज्ञान ओत प्रोत रहता है।

आओ मेरे प्यारेजब मानव व्यान प्राण !ऋषिवर ! के ऊपर अध्ययन करना प्रारम्भ कर देता है तो व्यान प्राण का जो क्षेत्र है वह कंठ से ऊपर का माना गया है। व्यान प्राण का सम्बन्ध नाना प्रकार के लोक लोकन्तरों से होता है जब मानव का हृदय और मस्तिष्क और व्यान की धारा उनके साथ में रमण करने लगती है तो ब्रह्मरन्ध्र में जो नाना प्रकार की सूक्ष्म सूक्ष्म वाहक नाड़ियां होती हैं वह जागरूक हो जाती हैं। मानव के मस्तिष्क में कुछ तो लोभ के कारण मानो कामना के कारण, नाना प्रकार के कारण मस्तिष्क के जो तन्तु हैं वह बहुत से ऐसे तन्तु हैं जो किसी काल में जागरूक ही नहीं होते। वह किन प्राणियों के जागरूक नहीं होते जिन प्राणियों के द्वारा यौगिकता नहीं होती, जिन प्राणियों के द्वारा घृणा के क्षेत्र बने रहते हैं। आचार्यों ने कहा है सबसे महान् पाप वह मानव करता है जो घृणा करता है। घृणा का जो माध्यम है वह मानव की बुद्धि को नष्ट करता है क्योंकि मानव के द्वारा नाना प्रकार के जो विशाल प्रकाश वाले तन्तु होते हैं वह सब भस्म हो जाते हैं और भस्मीभूत होने के कारण उस मानव का विकास नहीं हो पात। मानव के मस्तिष्क का विकास उस काल में होता है जब ब्रह्मचर्य उसके साथ होता है। ब्रह्मचर्य की गति के द्वारा व्यान प्राण के साथ साथ जब ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा गति हो जाती है तो नाना प्रकार के तन्तु जागरूक हो जाते हैं। जिनसे नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में मानव की मनोभावना चलायमान हो जाती है। जैसे मन कामवासना पर चलायमान हो जाता है, क्रोध पर चलायमान हो जाता है, घृणा पर

चलायमान हो जाता है, विशाल गति वाला बन जाता है। ऐसे ही ब्रह्मचर्य के द्वारा व्यान प्राण, समान प्राण और मन इन सबका जब तारतम्य लग करके मानव के मस्तिष्क और हृदय का दोनों का जब मिलान हो जाता है तो नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में उस मानव का यातायात स्पष्ट हो जाता है।

आओ मेरे प्यारे परमात्मा के विज्ञान पर विचार करो तो करो कि परमात्मा !ऋषिवर ! का विज्ञान कितना विशाल है, उसने कितनी सुन्दर मानव की रचना की है। मानव की रचना करते हुए क्या क्या नहीं दिया परन्तु मानव महान अपनी उस अग्नि में अपने मानवत्व को ऐसे भस्म कर देती है ऐसे यह जो संसाररूपी चक्र है, संसाररूपी जो घृणा है इसमें अपने को ऐसा भस्म कर देता है जैसे मानव कृत में अपनेपन को नष्ट करता रहता है। जैसे अग्नि सामग्री को यज्ञशाला में भस्म कर देती है इसी प्रकार मानव कहीं घृणा के द्वारा, कामना के द्वारा अपने मस्तिष्क को संकुचित्त बना लेता है। जिसका मस्तिष्क संकुचित्त हो जाता है उसके मस्तिष्क और हृदय का मिलान नहीं हो पाता, वह अपनेपन में नास्तिक भी बन जाते हैं, प्रभु की महत्ता को त्याग देता है अपनेपन में वह इतने रूढ़िवादी बन जाते हैं कि वह विशाल हृदय से संसार को दृष्टिपात ही नहीं कर पाते।

बेटा मैं वाक्य उच्चारण करता हुआ दूर चला गया हूँ। वाक्य यह प्रारम्भ कर रहा था ! जब यह आत्मा इस !कि बालक नचिकेता से यमाचार्य ने कहा कि हे ब्रह्मचारी शरीर को त्यागती है तो उस समय यह आत्मा सत्रह तत्त्वों का कहलाता है, सूक्ष्म शरीर कहलाता है। सूक्ष्म शरीर ऐसा शरीर है जो वायु में रमण करने वाला होता है।

वह जो चेतना है वह सत्रह तत्त्वों के साथ में रमण करता है। मानव के जन्म जन्मान्तरों के संस्कार उस शरीर के साथ होते हैं। मुझे स्मरण है करोड़ो करोड़ों जन्मों के संस्कार उसमें ओत प्रोत होते हैं। जब महान इस सूक्ष्म शरीर को भी यही आत्मा त्याग देता है मानो जिस समय यह सत्रह तत्त्व भी पांचों प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां पांच तन्मात्रा और बुद्धि तो जैसे प्रलयकाल में एक महत तत्त्व बन करके परमात्मा के गर्भ में परणित हो जाता हैं इसी प्रकार उस समय जन्म जन्मान्तरों के संस्कार नष्ट हो जाते हैं, भस्म हो

जाते हैं उज्ज्वल कर्म करते हुए। उज्ज्वलता में, आत्म शान्ति में, परमात्मा के द्वारा जाने पर यही अन्तरात्मा कारण लिंग में चली जाती है जिसको हमारे यहाँ कारण शरीर कहा जाता है। कारणशरीर वह कहलाता हे जिसमें केवल बेटागाढ़निद्र !ा होती है। ज्ञान और प्रयत्न भी आत्मा के गर्भ में परिणत हो जाते हैं क्योंकि आत्मा के संसार में दो ही गुण कहलाए गएं हैं ज्ञान और प्रयत्न। ज्ञान और प्रयत्न ही उसका भौतिक रूप बन जाता है जैसे गुण और गुणी होते हैं कदापि भी पृथक नहीं होते। गुणगुणी में परिणत रहते हैं, दोनों एक ही कहलाते हैं। इसी प्रकार आत्मा के अन्तकृति वही आत्मा का सात्विक गुण माना गया है। केवल उस समय ज्ञान और प्रयत्न रहता है ज्ञान प्रत्यन के साथ में वह भी एक हो करके परमात्मा की महान उस चेतना में रमण करने लगता है। आनन्द को प्राप्त हो जाता है संसार में आनन्द ही आनन्द प्रतीत होने लगता है।

आत्मा कैसे शरीर में आता है, कैसे विकास होता है कैसे मानव के जीवन का विभाजन होता है यह मैंने कई काल में अपनी विवेचना प्रकट की है। आज तो केवल यह वाक्य प्रकट किया कि आज हम इस आत्मा को जानने का प्रयास करें। यह आत्मा इस मानव शरीर को त्याग करके तीन प्रकार की वायु होती है उनमें रमण करने लगता है। सबसे प्रथम यम नाम की वायु कही जाती है। यम नाम वायु वह होती है जिसमें आत्मा प्रथम जाता है। यमराज उसे कहा जाता है। यमाब्रह्मे लोकाः प्रभा अस्ति सुप्रजाः जिसमें आत्मा रमण किया करता है, वह यम कहलाता है जिसको हमारे यहाँ यमराज कहा जाता है। उस समय इस आत्मा का और वायु का दोनों का मन्थन हो जाता है। उसके पश्चात् यदि आत्मा के साथ में सात्विक गुण अधिक है तो यह सौनतिति वायु में चला जाता है। सौनतिति वायु में जब आत्मा चला जाता है तो वहाँ इसकी गति और विशाल बन जाती है और यदि देववत कर्म होते हैं आत्मा के साथ में तो देव आत्मा में जिसको हमारे यहाँ पितर आत्मा कहा जाता है जैसा मैंने कई काल में प्रकट किया है जैसे कणाद, गौतम शाण्डिल्य ऋषि, महर्षि भारद्वाज, अपरेति ऋषि आदि आदि ऋषियों की आत्मा जो वायुमण्डल में रमण किया करती है उन देवत आत्माओं में वह आत्मा रमण करने लगता है। जितना देववत कर्म के अनुसार वह उन आत्माओं में रमण करता हुआ

पुनः संसार चक्र में उन आत्माओं का प्रार्दुभाव हो जाता है, संसार में आवागमन पुनः से हो जाता है।

वेद कहता है आत्मा के साथ जो संस्कार हैं उनके कारण मानव का शरीर मानव को प्राप्त होता है। यदि संस्कार कोई भी नहीं होगा तो संसार में जन्त होने का कोई कारण बना नहीं नहीं करता है क्योंकि बिना संस्कार के मानव जीवन में आत्मा को आने की आवश्यकता ही कोई नहीं रहती। परमात्मा की प्रतिभा के साथ वह जो कर्म से पिरोया हुआ है मानो ज्ञान और प्रयत्न के द्वारा जो आत्मा पिरोया हुआ है जो उसका विशेष गुण माना गया है उसी के कारण संसार में आवागमन का चक्र बना करता है।

तो मुनिवरों आज हम पितर आत्म लोक को जाने और देववत को जानें। आज हम ! यम नाम के लोक को जानें जहाँ हमारा आत्मा रमण करता रहता है। आज हम आत्मवेत्ता बनने का प्रयास करें। आज मानव हृदय और मस्तिष्क दोनों का समवन्य करना चाहता है तो उसे सबसे प्रथम पांच वस्तु त्यागनी होंगी। बेटा जिसके द्वारा ! घृणा है घृणा को त्यागना है, उसके पश्चात जो अधिक मद होता है अभिमान को त्यागना है, अपमान को त्यागना है। कामवासना है उसको त्यागना है, अपमान को त्यागना है चारों वस्तुओं को जो मानव त्याग देता है, उसका मस्तिष्क और हृदय दोनों में विशालता आ जाती है। व्यान नाम का प्राण महान विज्ञान की वार्त्ता विचारने लगता है जब योगी समाधिस्थ होता है। हमारे यहाँ कई प्रकार की समाधियों का विवरण आता है। एक निर्विकल्प समाधि कही जाती है। निर्विकल्प समाधि वह होती है जहाँ परमात्मा का चिन्तन करते करते मानव को यह प्रतीत नहीं होता कि यह जगत भी कोई जगत है। उसके पश्चात् एक अपरात सतसन समाधि होती है जिसमें मानव समाधिस्थ हो करके जड़वत हो जाता है। जड़वत ऐसा हो जाता है कि उसे संसार का तो बोध नहीं, शरीर का भी बोध नहीं होता। उसके पश्चात् एक समाधि होती है जो आत्मा को प्राण के द्वारा मानो अपनी आत्मा का तारतम्य लगा करके वह प्राण और आत्मा दोनों काम मानो सुषुप्ति अवस्था होती है, सुषुप्ति अवस्था में जैसे जागरूक में आत्मा का सम्बन्ध नेत्रों से विशेषकर रहता है उसके पश्चात स्वप्न अवस्था में आत्मा का सम्बन्ध मन के द्वारा

रहता है और सुषुप्ति अवस्था में इस आत्मा का सम्बन्ध प्राण के द्वारा होता है। प्राण के द्वारा गमन करता रहता है और जीवन का सर्वत्र व्यापार शान्त हो जाता है। इसी प्रकार तीन प्रकार की विशेष समाधियों का वर्णन आता है जैसे जागरूक होते हैं और जागरूक समाधि निर्विकल्प मानी गई है वह ब्रह्माण्ड का विस्तार रूप धारण करना है। जैसे स्वप्न में मानव शरीर द्वारा पत्नियां नहीं होती राष्ट्र नहीं होता। परन्तु यह मानव स्वतः उनका निर्माण करता रहता है। स्वप्न अवस्था में द्रव्य नहीं होता परन्तु द्रव्य मानव के द्वारा है। वह मन की प्रतिभा है जो संसार की एक नवीन रचना करने लगता है। निर्धन से धनवान बन जाता है और धनी से निर्धन बन जाता है। तुम्हें स्मरण होगा राजा जनक को एक स्वप्न हुआ था। वह ऐसा ही स्वप्न था कि उसी स्वप्न के कारण वह निर्धन बन गया था। नाना अकृत ब्राह्मणों की सभा की। उसमें नाना शास्त्रार्थ हुए, विचार विनिमय हुए प्रश्नों का उत्तर देने के तत्पर होने लगे। एक नवीन रचना होने लगती है। इसी प्रकार जो मानव परमात्मा को व्यज्ञप्क् रूप में दृष्टिपात करता है जिसको साम्म दृष्टि कहते हैं इस दृष्टि में संसार को दृष्टिपात करने लगता है तो उसके द्वारा पाप और पुण्य भी नहीं होता है। आत्मा का सम्बन्ध केवल प्राण के द्वारा रहता है। ....

एक चेतनित समाधि होती है, लोकेश समाधि होती है, नाना प्रकार की समाधियों का वर्णन है बेटासमय मिलेगा !, समाधि पाठ आयेगा, वेदों के मन्त्र आयेंगे तो मैं इसको किसी काल में प्रकट करूंगा। आज मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। आज संसार में मानव को विज्ञान को जानना है, विज्ञान की प्रतिभा में जाना है। आत्मिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान इन दोनों का मिलान करना है। परन्तु वह कैसे? विचार संकुचित्त नहीं बनाने हैं व्यापक हृदय बनाना है। व्यापक हृदय में वह जो ओ३म् रूपी धागा हे उसको उसमें परणित कर देना है, उसको उसी में अर्पित कर देना है, दोनों का तारतम्य लगा करके मन और मस्तिष्क की जो दूरी है का समन्वय करके उस काल में मानव ऐसी ऐसी वार्ता प्रकट करने लगता है कि न तो वह कही जाती है न श्रवण की जाती हैं और कहीं कहीं तो मानव यह कहता है कि यह सब पाखण्ड है क्योंकि उसके

मस्तिष्क में यह वार्त्ता नहीं आ पाती इसलिए वह इस प्रकार की वार्त्ता किया करता है। तो बेटा मुझे स्मरण आता रहता है जब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव के द्वारा क्रियात्मक ! अपने कर्मों को करता था वह क्षेत्र आज तक मुझे स्मरण आता रहता है। आज तो मैं अपने कर्मों के अनुसार अपने कर्मों को भोगों कोभोगता जा रहा हूँ परन्तु कोई समय था जब मानव के समीप मृगराज उनकी आत्माओं की विवेचनाओं को स्वीकार करते थे। वह समय भी होता है मानव के द्वारा। वही तो एक व्यापक विचार होता है, उसी को साम्य विचार कहते हैं, उसी को साम्य आपृत कहा जाता है। जब मानव संसार में एक क्षुधा पीड़ित व्यक्ति को दृष्टिपात कर सकता है और वह मानव योग की कल्पना करे तो यह असम्भव कहलाता है। मुझे स्मरण आता रहा है संसार का यह साहित्य। आज मैं अधिक चर्चा प्रकट नहीं करना चाहता हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि मानव को अपने हृदय को विशाल बना करके और अपने ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा गति बना करके संसार में जैसा याज्ञवल्क्य जी ने मैत्रेयी को कहा था कि मैत्रेयी ! आज तू यह उच्चारण करे कि पति एक ईश्वर होता है यह तुम्हारा वाक्य असम्भव है। यह विचार तुम्हारा संकुचित्त है। आज तुम्हें यह प्रतीत है पति संसार में आयु नहीं देता। पत्नि का शरीर रूग्ण हो गया है पति स्वास्थ्य नहीं दे सकता। इसी प्रकार आज तुम्हें यह प्रतीत है कि जो मानव स्वयं कर्म करता है वही भोगा करता है। वही उसके समीप आता रहता है। बेटा तुम्हें यह प्रतीत है आज मैंने जिन वेदों के पठन पाठन ! का क्रम लाखों वर्ष पूर्व किया था आज उसी कर्म के वश से उच्चारण कर रहा हूँ। यही तो मानव का जीवन कहलाता है। आज मैं तुम्हें कहाँ तक वार्त्ता प्रकट करूं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि मानव एक पापों का वृक्ष बना लेता है। वह अशुद्ध होता है, वह मानव को स्वयं को नष्ट कर देता है परन्तु जब मानव अच्छाइयों का वृक्ष उत्पन्न करता है, मानवता का वृक्ष उत्पन्न करता है और उस वृक्ष की छाया में जब विराजमान होता है तो प्रभु को धन्यवाद देता है। !

यह है बेटा अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें मैं कल प्रकट !आज का वाक् !

करूंगा, आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जीः धन्यवाद आज के आपके शब्दों में सम्भूति गृत्तम भवे !गुरुदेव !
 अस्तिः सुप्रजाः योगम् ब्रह्मे अस्ति। सुप्रजाः।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य यह तो प्रायः चलता ही रहता है क्योंकि संसार !बेटा.........
 की विलक्षण गति होती है।उसी प्रकार के वह शब्द मानव के द्वारा स्वाभाविक होते हैं।
अच्छा 8 नारायण दास जी गुलाटी के गृह पर रात्री के श्री डा0) अब वेदपाठ होगा। !
(बजे दिया गया प्रवचन

१७ 12 02 1971 पुष्प 15 द्यौ लोक का घृत

देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, हमारे यहाँ नित्य प्रति कुछ मनोहर उस वेदवाणी का प्रसारण होता है जिस पवित्र वेदवाणी का प्रसारण होता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान माना जाता है। यह जो सर्वत्र जगत है यह उस परमपिता परमात्मा का एक विज्ञान है वह नित्य प्रति अपना कार्य करता चला जा रहा है।

आज का हमारा वेद का ऋषि क्या आज्ञा करता चला जा रहा था? मेरे प्यारे !ऋषिवर ! आज का हमारा वेदमन्त्र बहुत ही सूक्ष्म वार्त्ता प्रकट कर रहा था। कल यह उच्चारण किया जा रहा था कि अन्तरिक्ष का घृत क्या माना जाता है इसके ऊपर हमारा विचार विनिमय चल रहा था, नाना ऋषि मुनियों का विचार अथवा उनका अनुसन्धान प्रायः होता रहता है था और नाना टिप्पणियां भी दी हैं। रहा यह वाक्य कि उनके विचारों में, हमारे और भी नाना ऋषियों के विचारों में भिन्नता हो सकती है। उनके शब्दों की जो रचना है और वाक्यों का जो सुन्दर विश्लेषण है वह हमारे लिए प्रायः अनुकूल न हो परन्तु उनका विचार एक महान और सार्वभौम हो जाता है। ऋषियों का विचार ऐसा होता है जो महान एक अनुसन्धान से दूरी हो क्योंकि ऋषि कहते ही उसको हैं जो अपने जीवन सम्बन्ध द्वितीय बाहरीय जगत और अन्तरिक्ष जगत दोनों का समवन्य करने वाला होता है। दोनों की जो धारा हैं उनको एक संगम में लाने वाला होता है। संगम

का अभिप्राय क्या होता है? देखो, हमारे यहाँ मन पर ऋषियों ने बहुत बल दिया है कि मन को पवित्र बनाया जाए। मन संसार में उन वनस्पतियों का सूक्ष्म रस कहलाता है जिसकी प्रतिष्ठा द्यौ लोक में रमण करने वाली होती है। यह जो हमारा मन है यह नाना प्रकार की सुन्दर रचनायें रचने वाला है। क्यों रचता है? इस मन की धारा क्या है? मन की जो उपलब्धि मानी जाती है और इसकी जो धारा है वह जो नाना प्रकार की वनस्पतियां होती हैं, नाना जो औषधियां होती हैं, उनका रस परमाणु बन करके अन्तरिक्ष में रमण कर जाते हैं मानो देखो, उसमें उसकी प्रतिष्ठा हो जाती है उसी को हमारे यहाँ सार्वभौम कहा जाता है क्योंकि मन की एक ऐसी धारा होती है कि यदि पृथ्वी में नहीं होगा तो प्राण का और नाना प्रकार की वनस्पतियों का उत्पादन नहीं होगा। जिस प्रकार वसुन्धरा पृथ्वी के गर्भस्थल में नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है परन्तु वह इसीलिए होता है क्योंकि उसमें एक महानता होती है, उसमें सार्वभौमता होती है और विभाजन करने की इसमें एक महान शक्ति होती है क्योंकि प्रकृति के तत्त्वों का, प्रकृति के परमाणुओं का मन विभाजन करता रहता है इसीलिए हमारे यहाँ इस मन को वनस्पतियों का घृत कहा जाता हैं। वनस्पतियों को हम निदानम प्रेम कृति रूदो भागाः हमारे समीप एक वाक्य आता रहात है जिस प्रकार पशु जो नाना प्रकार की वनस्पतियों को ग्रहण करता है मानो जिस मन्त्र में वह मन्थन किया जाता है यदि आज हम बाहरीय औषधियों के द्वारा उस घृत को लाना चाहें तो वह किस प्रकार ला सकते हैं। यह हमारे यहाँ अनुसन्धान का विषय रह जाता है। इसमें महर्षि वायु मुनि महाराज, दालभ्य और महर्षि सौममुनि महाराज इत्यादि का जो विचार है उसे मैं तुम्हें प्रकट करा रहा हूँ। आज जब हम नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करते हैं और एकत्रित करके अष्टकोण यज्ञशाला बनाते हैं और अष्टकोण यज्ञशाला बना करके यज्ञशाला का जो ऊपरी विभाग होता है उसमें देखो, हरित, श्वेत और पीत वर्ण के उसमें कीर्ति या अस्वात अपग्रीह होते हैं। वह जो वनस्पतियां हम यज्ञशाला में परणित करते हैं, तपाने के पश्चात् उनकी धारा बन करके यज्ञशाला में जब उनका अपरात निदान होता है तो उसी निदान के कारण, महानता के कारण हमारे यहाँ ऐसा माना जाता है कि जिसमें जीवन की

एक धारा पवित्रता में परणित की जाती है क्योंकि हमारे यहाँ यज्ञशाला में एक महानता का सदैव दिग्दर्शन प्रायः होता रहता है जिसके ऊपर हमारा केवल महान विचार होता है उस विचार के साथ में हमारी मौलिक धारा होती है। उस यज्ञशाला में उस याज्ञिक पुरूष की एक महान धारा में परणित होने वाला एक विचार होता है। जब मानव यज्ञशाला में परणित होता है तो उसकी महान धारा एक पवित्रता में परणित हो जाती है।

आओ मेरे प्यारेआज का हमारा आचार्य क्या कह रहा है !ऋषिवर !? हमें विचारना क्या है? हमें यज्ञ के घृत को विचारना है। जिसके ऊपर मानव को सदैव विचार विनिमय करना है। आज मैं ऋषि मुनियों का विचार देना चाहता हूँ और वह क्या कि हमें मन और प्राण की सूक्ष्मता को जानना है वह जो द्यौ लोक में नाना प्रकार की वनस्पतियों का रस है मानो यज्ञ के द्वारा हम उसका पात बना सकते हैं और पात बना करके मानो सूर्य की जो नाना किरणों हैं उनको हम अपने में ला सकते हैं। क्योंकि किरणों के द्वारा ही पशु के उस शरीर में प्रायः उसका निदान होता है महानता में उसकी धारा होती है जिसके ऊपर मानव को एक विचार विनिमय करना होता है।

हमारे यहाँ यज्ञ भूतानां घृतं रुद्रस्य भागा आचार्य कहता है कि यज्ञशाला से याजिक पुरूष जब विराजमान होता है तो सूर्य की किरणों का किस प्रकार निदान किया जाता है? उसको हम अपने में किस प्रकार धारण कर सकते हैं इसके ऊपर हमें विचार विनिमय करना है तो यहाँ वेद का ऋषि कहता है, महर्षि भारद्वाज ने एक वाक्य में कहा है, सम भव प्रभे अकृतानि रुद्रस्य भागाः कि नाना प्रकार की सूर्य की किरणों से नाना प्रकार की किरणों का जन्म होता है, उन किरणों में एक महानता की धारा होती है उन्हीं को लाने के लिए हम सदैव तत्पर रहते हैं जिससे हमारा विचार आचार्यों की दृष्टि में महान माना गया है क्योंकि उसको हम अपने मस्तिष्क की यज्ञशाला में लाना चाहते हैं तो एक महान यौगिक विषय बन जाता है। हमारे यहाँ योगाचार्यों ने कहा कि ब्रह्म योगात प्रभा अस्ति सुप्रजाः मानो जो ब्रह्म विद्या का निदान करना जानता है क्योंकि ब्रह्म की विद्या का निदान मन और प्राण के साथ ही तो होता है। यदि मन और प्राण

दोनों को निदान नहीं ला सकोगे तो जीवन महानता का कदापि भी दिग्दर्शन नहीं हो सकेगा।

आज प्रत्येक मानव को संसार में यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ की प्रतिभा क्या कह रही है कि आज हमें नाना प्रकार का अनुसन्धान करना है क्योंकि यह जो जगत है यह परमात्मा का एक भव्य भवन है, यज्ञशाला है, मानो यही तो ब्रह्म विद्या विचारने का एक यज्ञ प्रभे कृतव्यो देखो, इसको ब्रह्म भवन कहा जाता है। इसमें मानव जितना अनुसन्धान कर लेता है, जितना अपने जीवन का निदान कर लेता है, जितना अपने हृदय को स्वच्छ बना लेता है जितनी मन की धारा को ऊँचा बना लेता है उतना ही उसकी मन की धारा पवित्र बन करके द्यौ लोकों में उनकी प्रतिष्ठा हो जाती है ऐसा हमारे यहाँ वेद का ऋषि कहता है यज्ञं भूतानां प्रभाकृति रूद्राः सन्ति लोके आचार्य कहते हैं, महर्षि भारद्वाज ने यह कहा है कि यज्ञमान के हृदय की गति जितनी शुद्धता होगी, जितनी महानता उसके द्वारा होगी उतनी ही प्रत्येक आहुति अग्नि का स्वरूप माना गया है। हमारे यहाँ कल के वाक्यों में उच्चारण किया जा रहा था कि ब्रह्म वृहाम् लोकः मानो अग्नि को हमारे यहाँ अध्वर्यु कहा जाता है। उद्गाता का अभिप्राय केवल अग्नि और वायु दोनों की पुट हुआ करती है। उस समय वायु उद्गाता कहलाता है, और अग्नि अध्वर्यु कहलाता है, अध्वर्यु का क्या अभिप्राय है? वह मानो वायु की सहकारिता से ही, वायु के साथ मिलान से ही अध्वर्यु कहलाता है, और वह अग्नि के साथ में मिश्रण होने से ही उसको हमारे यहाँ उद्गाता कहा जाता है। क्योंकि वायु ही तो समागान गाती है। उद्गाता ही तो यज्ञशाला में उद्गीत गाता है। यज्ञशाला में परिणत होता हुआ महानता को प्राप्त होता रहता है।

हमारा आज का वाक् क्या कि हमारे यहाँ अग्नि को ही अग्नि प्रभा कृत्रं रुद्रस्य भागा असवतो लोकं मम वाचं प्राणी मानो आत्मा को हामरे यहाँ यज्ञमान कहा गया है, क्योंकि आत्मा ही इसका कृत कहलाया गया है। आत्मा के साथ ही यज्ञभूतस्य प्रभा क्योंकि संसार में आत्मा के कारण मन प्रकृति का जितना परमाणुवाद है, जितना अणुवाद है वह सब आत्मा के आश्रित होता हुआ इस शरीर होता हुआ इस शरीर में गति कर रहा

है। यह मानवीय गति इसी के आश्रित हो करके रमण किया करती है।

ब्रह्म की चेतना संसार में अपना कार्य कर रही है। ब्रह्म विद्या ही मानव को ऊँचा बनाती है, राष्ट्र को ऊँचा बनाती है और राष्ट्र में धर्म को ला देती है। इसलिए आज हमें ब्रह्म विद्या की आवश्यकता है। जब प्रत्येक मानव धर्मनिष्ठ और ब्रह्मनिष्ठ होता है उसी काल में उसकी विचारधारा में एक महानता का दिग्दर्शन, महानता की उसके हृदय में प्रतिष्ठित हो जाती है। जिससे वह महान कहलाता है। मानव को जो वाणी होती है उसका सम्बन्ध अग्नि से होता है। इसलिए हमारे यहाँ किसी किसी ऋषि ने अग्नि को भी उद्गाता कहा है, वायु को अध्वर्यु कहा परन्तु इसका विचार हम किसी काल में वेद पाठ आयेगा तो प्रकट करेंगे। आज का हमारा यह वाक्य आज्ञा नहीं दे रहा है आज तो हम प्रभु की याचना कर रहे हैं कि हे प्रभुतू स्वयं यज्ञ है !, तेरी महानता इन वेदों में परणित हो रही है, वेद की जो अनुपम धारा है, वेद का जो प्रकाश है। यही प्रकाश मानव के अन्तःकरण को पवित्र बनाता है क्योंकि वेद की जो अनुपमता है, ब्रह्म विद्या है, महानता है उसमें उसका एक एक शब्द पक्षपात से रहित है। उसी को तो ब्रह्म विद्या कहते हैं। क्योंकि परमात्मा रूढ़ि नहीं होता इसीलिए वेद भी रूढ़ि नहीं है। इसलिए वेद के अनुसार मानव को अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहिए। जो मानव रूढ़ियों में परणित हो जाते हैं। उनके जीवनों में विनाश हो जाता है, उनका जो संकल्प होता है। उसकी धाराओं में भिन्नता आ जाती है।

आज हमारा वेद पाठ क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए यज्ञशाला में परणित होते हुए अपने विचारों का यज्ञ करते चले जाएं। नाना प्रकार का संकल्प हो। संकल्प के साथ में हमारा एक संकल्प हो, प्राण का ही उसमें निदान हो उसके पश्चात् जब हम आहुति देते हैं, वह आहुति द्यौ लो को प्राप्त होती है, देवता गण उनको प्राप्त करते हैं और देवता जब तृप्त होते हैं तो राष्ट्रवाद को क्या समाज को पवित्र बनाते चले जाते हैं, परन्तु परमाणुवाद को ऊँचा बनाते चले जाते हैं। क्योंकि यह जितना जगत है। यह सब परमाणुओं की ही रचना है। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं यह उच्चारण कर सकूंगा कि द्यौ लोक का जो घृत है उसमें कितने सूक्ष्म परमाणु होते

हैं। और वह परमाणु जब अग्नि उद्गाता बन करके और वायु अध्वर्यु बन करके जब उसका शाकल्प उनमें प्रदान किया जाता है। तो द्यौ लोक में कितनी महान गति होती है। जितना मानव का हृदय स्वच्छ और पवित्र होता है, ममता से रहित होता है, क्रोध से रहित होता है, नाना प्रकार की विडम्बनाओं से रहित होता है, उतना ही द्यौ लोक को मानव का संकलन प्राप्त होता चला जाता है।
आओ मेरे प्यारेआज का हमारा यह वाक्य समाप्त अब मुझ !ऋषिवर !े समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट कर सकूंगा। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् हमारी वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। (लाक्षागृह बरनावा में दिया हुआ प्रवचन)

१८ 13 02 1971 पुष्प 15 द्यौ लोक की समिधाएं

देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया हमारे यहाँ जो पठन पाठन का प्रायः क्रम होता है, वह सदैव विचित्रता में परिणत माना गया है।
आज का हमारा वेद पाठ क्या कर रहा था इसके ऊपर हमें विचार विनिमय करना है। आज मेरे प्यारे महानन्द जी भी दो शब्दों का विवेचन दे सकेंगे। उससे पूर्व मैं कल ! के अपने उस महान विषय को लेना चाहता हूँ। जो आज हमारे वेद मन्त्रों द्वारा प्रतिपादन किया जा रहा था। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों के दो प्रकार माने गएं हैं। कहीं कहीं तो आचार्यों ने वायु को उद्गाता माना है। परन्तु ऋषियों का जो एक विचार है, उसका सन्निधान कर लेना चाहिए। दोनों को विचार करके उसका मिलान कर लेना चाहिए।
तो यहाँ वायु मुनि महाराज ने और भी नाना आचार्यों ने अपने शब्दों में कहा है कि यदि हम संसार में उज्ज्वल स्वरूप को लेकर चलते हैं, महानता पर विचार विनिमय करते हैं। तो हमारे यहाँ वायु और अग्नि दोनों की सहकारिता और मिलान होने पर वह एक उद्गाता की श्रेणी उद्गाता की कृति प्रतिपादिता मानी गई है। परन्तु जहाँ मैं यह विचारने लगता हूँ कि वेद का ऋषि क्या कहता है, इस सम्बन्ध में तो वेद का ऋषि

कहता है, वायु उद्गाता प्रभे आकृति सुप्रजाः क्योंकि वायु को उद्गाता ही माना है। इसमें नाना प्रकार का भेदन माना गया है। ऋषि कहते हैं कि नाभि केन्द्र में जब एक प्रकार का प्रवाहकृत होने लगता है। तो उस समय शब्द का उदगार उत्पन्न होने लगता है तो उस समय शब्द उदगार उत्पन्न होता है। क्योंकि वाणी का जो स्वरूप है वह अग्नि माना गया है। क्योंकि व्यष्टि समष्टि में जब हम पहुंच जाते हैं और विचारने लगते हैं तो इस शरीर में वाणी है और लोक में अग्नि मानी गई है। तो इसलिए अग्नि से उच्चारण किए हुए शब्द को ही हमारे यहाँ उद्गाता कहा जाता है। तो इसमें एक भिन्नता आ जाती है। क्योंकि प्राण का सन्निधान जब तक अग्नि के साथ नहीं होगा तो किसी शब्द की उत्पत्ति होना असम्भव हो जाता है। जैसे हमारे इस सूक्ष्म से पिण्ड में एक ब्रह्मरन्ध्र स्थान माना गया है। जिसमें नाना सूक्ष्म वाहक नाड़ियां होती हैं। एक नाड़ी सूर्यकेतु नाम की होती है। जिसका सम्बन्ध सूर्य से होता है। जिस समय उस नाड़ी का चक्र चलता है। तो उसका निर्माण मेरे प्यारे प्रभु ने इस प्रकार किया है। कि जब वह अपने स्थान से ! दूसरेस्थान पर केवल प्राण का संयम करने से, मन का सन्निधान करने से मन और प्राण दोनों का मिलान करने से अग्नि प्रदीप्त होती है। वह जो हमारी ब्रह्मरन्ध्र वाली अग्नि जिसको हमारे यहाँ द्यौ लोक कहा जाता है। जब इन दोनों का मिलान होता है। उस नाना प्रकार की ब्रह्मरन्ध्र रूपी जो यज्ञवेदी है। जब उसमें घृत की आहुति देता है। तो अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। कौन सी अग्नि? वह जो द्यौ लोक की अग्नि है। उसका जो सूक्ष्म रूप जब वह घृत बन करके घृत की आहुति देते हैं। तो उस समय वह अग्नि प्रदीप्त हो करके वह जो सूर्य केतु नाम की नाड़ी है। उसमें एक गति उत्पन्न होती है। इसी प्रकार उसके साथ में एक नाड़ी इस प्रकार की है। जिसका सम्बन्ध ध्रुव मण्डल से होता है। तो यहाँ आरूणि और ध्रुव और सूर्य इन तीनों नाड़ियों का चक्र चलता है इस अग्नि के द्वारा वह यज्ञवेदी में जो यह तीन समधि होती हैं जब यह तीन समिधाएं यज्ञिक पुरूष की जागरूक हो जाती हैं तो सूर्य मण्डल, आरूणि मण्डल और ध्रुव मण्डल का रहन सहन, वहाँ की विचार योगी स्वतः जान लेता है।

आज मैं इन वाक्यों को अधिक गम्भीर नहीं बनाना चाहता हूँ। केवल वाक्य उच्चारण

करने का अभिप्राय यह है कि उस अग्नि की आहुति हम कैसे दे सकेंगे जिससे हम इन तीनों मण्डलों को जान जाएं। देखो, वह तीन समिधा कहलाती है जो मानव के ब्रह्मरन्ध्र में होती है। हे ब्रह्मचारीहे याज्ञिक पुरूष !? यदि तू यज्ञ का अधिकारी बनना चाहता है, और यज्ञ के द्वारा तू दूसरे लोकों में रमण करना चाहता है और नाना प्रकार के भौतिक परमाणुवाद को जानना चाहता है। तो तुझे मन और प्राण दोनों को सम्बन्धित करके दोनों को मन्थन करके, जो मन और प्राण का सूक्ष्म रूप जिसको हमारे यहाँ महतत्वे कहा जाता है। जिसको प्रकृति का बहुत ही सूक्ष्म स्वरूप माना गया है। जब उसकी आहुति दी जाती है। अरे, कौन देता है? वह ब्रह्मचारी देता है। महर्षि भारद्वाज जैसे ऋषि दिया करते हैं। उस आहुति को, यहाँ महर्षि भारद्वाज जैसे आचार्य दिया करते हैं, व्यास और सुखदेव जैसे मुनि दिया करते हैं। जिनका जीवन एक महानता में परणित माना गया है।

मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा प्रकट नहीं करना चाहता हूँ। मैंने तुम्हें तीन समिधाओं की विशेषता प्रकट की है। तीन समिधायें यह हैं, और तीन समिधाएं इनके साथ और होती हैं। उन समिधाओं में से एक तो इस पृथ्वी मण्डल की होती है, एक समिधा अन्तरिक्ष मण्डल की होती है, और एक समिधा द्यौ मण्डल की होती है। यह तीन समिधा है। जिनको स्वान, अनुतनी और कृति कहते हैं। इनकी ब्रह्मरन्ध्र में जागरूकता होने के कारण तीनों लोकों की वार्त्ता जानने वाला याज्ञिक बन जाता है। यह हमारी आध्यात्मिक समिधाओं का वर्णन होता चला जा रहा है। आध्यात्मिक वेत्ताओं ने कहा है, आदि ऋषियों ने का है कि हमें इनके ऊपर बहुत अनुसन्धान करना है, जिससे हमारे जीवन में महानता की एक ऐसी तरंग उत्पन्न हो जाएं। जिससे हमारा यज्ञ, हमारी मानवता, हमारे ब्रह्मरन्ध्र में विशाल गति उत्पन्न हो करके हम भी इन लाकों को प्राप्त होते चले जाएं।

वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या है कि आज हम उन चार समिधाओं को और जानना चाहता हैं, जिनकी हमें आहुति देनी है। वह चार समिधायें यह हैं कि चार नाड़ियां इस प्रकार की हैं। हमारे ब्रह्मरन्ध्र में जिनको स्वाति, अभेलनी क्रांतनी और

रेनकेतु कहते हैं। जब हम इनको जान लेते हैं। तो जहाँ इन नाड़ियों का मिलान होता है, और मिलान करके चार आहुति बन करके एक आहुति हमें अप्रेत को प्राप्त हो जाती है, दशम को प्राप्त हो जाती है, दशम को प्राप्त हो जाती है, और तीन जो समिधा हैं उनका जहाँ दसों समिधाओं का मिलान करके चार समिधाएं इनके ऊपर छा जाती हैं। छा जाने के पश्चात हृदय रूपी जो हमारी यज्ञवेदी है। उसमें उन समिधाओं की आहुति लगा करके, अग्नि बन करके एक महान गति होती है, उसमें जो संसार के नाना लोक लोकान्तर समाहित हो जाते हैं। उसमें शिव पार्वती अपना नृत्य करने लगते हैं। माता पार्वती प्रकृति हैं और ब्रह्म की आभा बन करके हृदय रूपी यज्ञ वेदी में जब नृत्य होने लगता है। तो वह अग्नि प्रदीप्त हो करके मन और प्राण की जब सूक्ष्म घृत रूपी आहुति लगती है। तो उस समय योगी का हृदय इन सब लोक लोकान्तरों के जानने वाला बन जाता है, और वह पुरूष ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए इस संसार में लोकप्रिय हो जाता है। द्यौ लोक में लोकप्रिय हो जाता है, और द्यौ लोक में जो महान विशेष आत्माएं भ्रमण करती रहती हैं। उनसे भी ऊँची स्वर्ग की आत्माओं को प्राप्त हो जाता है।

कल मैंने यह वाक्य प्रकट किया था कि हम सूर्य की किरण को अपने में धारण करना चाहते हैं। मेरा परम्परागतों से यह विश्वास रहा है। क्योंकि हमने भी इसके ऊपर कुछ सूक्ष्म अनुसन्धान किया है। यह अनुसन्धान इस प्रकार के होते हैं, कि बारह बारह वर्ष तक नाना प्रकार की वनस्पतियों को पान करने से बुद्धि में इनका दिग्दर्शन होता है। एक समय आचार्य ने मुझे निर्णय कराया कि तुम इसके ऊपर अनुसन्धान करो तो मुझे परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से वह सौभाग्य प्राप्त हुआ। यज्ञ ब्रह्म लोकों प्रभा अस्ति सुप्रजा इस विषय पर कि जिससे हम सूर्य की किरणों को अपने में धारण कर सकें। उनमें कितने प्रकार के परमाणु होते हैं, वायु की गति कितनी होती है। सूर्य की किरणों की गति कितनी होती है, और कितने सूक्ष्म परमाणु का आगम्य होता है। ऋषि मुनियों ने यह कहा कि आप इसके ऊपर अनुसन्धान क्यों नहीं करते क्योंकि इससे वृष्टि होती है। वृष्टि यज्ञ वही करा सकता है, जो सूर्य की तपस्या करता हुआ सूर्य की किरणों को शक्ति के द्वारा संकल्प अपने में धारण करके और उन नाना प्रकार की

वनस्पतियों को जान जाएं। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें पृथ्वी के जल को अपने में शोषण कर लेती है, अन्तरिक्ष में वह परमाणु विराजमान हो जाते हैं, अन्तरिक्ष में वह परमाणु विराजमान हो जाते हैं, अन्तरिक्ष में समुद्र का समुद्र ओत प्रोत हो जाता है। इसी प्रकार उन किरणों को जान करके संकल्प बना करके और नाना प्रकार की वनस्पतियां जान करके जो याज्ञिक यज्ञ करता है। यह भौतिक यज्ञ है। उसमें एक सेनमुक एक औषध होती है, एक सेल खण्डा होती है, शंखहुली होती है, किरकल होता है, आभूषणी होती है और जा पवित्र होती है, जायफल होता है, जमनकेतु होती है, अश्ववेगनी होती है, पीपल की दाह दाड़ी होती है, पीपल का पंचांग हाता है, वट वृक्ष का पंचांग होता है, और यह देवदास का पंचांग होता है, मामधोनियों का पंचांग होता है, नाना प्रकार की औषधियां होती है, उनकी गणाना करने में समय लगेगा परन्तु इतना समय आज्ञा दे रहा है। मेरे महानन्द जी भी अपने वाक्य उच्चारण करने के लिए यहाँ प्रतीक्षा कर रहे हैं। दण्डकेतु का एक पंचांग होता है इसी प्रकार सेलकेतु एक वृक्ष होता है तो प्रायः पर्वतों में प्राप्त होता है उसका पंचांग होता है। मानधाता एक वृक्ष होता है उसका पंचांग होता है, गुलकेतु एक वृक्ष होता है उसका पंचांग होता है। इस प्रकार की औषधियां एकत्रित करके और जो गो घृत होता है, और गो घृत को भी सूर्य की किरणों में तपाया जाता है, तापने के पश्चात उसको अग्नि में तृप्त करके उस घृत के साथ में उस अग्नि में एक सौमरस बनाया जाता है। वह सोमरस कैसे बनाया जाता है? उसमें एक रूगणी औषध होती है, और मुनि अनन्त केतु एक औषध होती है, एक आनन्दकेतु औषध होती है, इन तीनों को अग्नि में तपा करके पात बनाया जाता है। पात बना करके इसको देनकेतु कहते हैं, गन्दाशील भी कहते हैं और किसनानी भी कहते हैं, केसल होती है, कस्तूरकान होता है, आभागन होता है, इन नाना प्रकार की औषधियों से पात बनाया जाता है। उस पात में यह विशेषता होती है कि जो आहुति इन औषधियों को लेकर के की जाती है। एक ऋतु का अन्न होता है, ऋतु का जो भी अन्न हो। एक ऋतु का फल होता है। इन सब की एक सामग्री बना करके यज्ञमान भी संकल्पवादी हो, श्रोतागण भी संकल्पवादी हों, ब्रह्मण भी ऊँचा हो। वह उस निदान को अच्छी प्रकार

जानता हो, कर्मकाण्ड भी उसका एक विशेष होता है, कर्मकाण्ड की पद्धति यह है कि उसमें पीपल दाख अन्नेकेतु नाना प्रकार की वृक्षों की समिधा होती हैं। उनको एकत्रित करके जब हम यज्ञ करते हैं। तो उससे वृष्टि यज्ञ हो जाता है। तो मैंने इसका बहुत अनुसन्धान किया। मुझे बारह वर्ष तक निन्द्रा नहीं आ सकी इस अनुसन्धान में। जब यह अनुसन्धान किया, औषधियों को लाया गया, बेटाएक सेनकेतु औषध होती है !, उसका पंचांग होता है। उसकी छाल को लिया जाए तो बड़ी स्वादिष्ट और यदि गूदे को लिया जाएं तो वह रसना बहुत प्रबल कर देती है। उसमें इतनी अग्नि होती है, इन प्रल शक्ति होती है, और उसका जो पत्ता उसको घ्राण के द्वारा सूंघने से ही मानो जिह्वा का शोधन समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार उसका जो पंचांग होता है, उसकी पांचों वस्तुएं ले करके उसको सामग्री में परणित किया जाता है। इसी प्रकार उसमें एक सूर्य घृत को बनाया जाता है। सूर्य घृत किसे कहते हैं? सूर्य घृत कहते हैं। सन्मील अन्ने अन्य आभूषणां अमृत नेमकेतु रूद्राः वेद का ऋषि कहता है कि मानव को संकल्प को दृढ़ बनाना है। क्योंकि वह जो संकल्प है, जिस कार्य को कर रहे हो उसमें निष्ठा संकल्प और यज्ञमान चरित्रवान और संस्कारवादी होना चाहिए। जब वह यज्ञ करेगा तो उसके पश्चात यहाँ वृष्टि यज्ञ हो जाता है।

तो मैं यज्ञों के सम्बन्ध में अधिक विवेचना देना नहीं चाहता हूँ। अब मेरे प्यारे महानन्द ! जी अपना एक वाक्य प्रकट करेंगे। आज मैं यह उच्चारण कर रहा था कि यह जो यज्ञशाला है। इस यज्ञशाला में हमें आहुति देनी है, और आहुति दे करके यज्ञ को पवित्र बनाना है, जिससे यह संसार ऊँचा बनता हुआ और इन यज्ञ जैसे कार्यों को जैसा महानन्द जी ने कहा है कि इसको पाखण्ड कहा जाता है। तो बेटा पाखण्ड उस काल ! में कहा जाता है। जब मानव परमाणुवाद को केवल इस गति से न लेकर के और भौतिकवाद इतना उन्नत आप्रभे अस्ति हो जाता है और ब्राह्मणवेद पाठी रहते नहीं, ब्राह्मण अनुसन्धान वेत्ता नहीं रहते तो उनके ज्ञान का अपमान प्रायः होता रहता है। क्योंकि मुझे स्मरण है कि एक समय प्रायः मैं नग्न रहता था अपने काल में। वह पुरातन काल था आज तो मैं इस आपत्ति काल में कोई वाक्य प्रकट कने वाला नहीं परन्तु नग्न

रहता था जब नग्न को ले जाया जाता था। कजली वनों से तो उस काल में जाते, वैज्ञानिक भी यह प्रश्न करते थे कि महाराज हमें अमुक घातु का निर्णय कराइये ! जिससे हम वायुयान बना ले, जिससे हम वरुणा अस्त्र बना लें, जिससे जलाशय अस्त्रों का निर्माण हो जाएं, जिसको वरुणास्त्र भी कहते हैं, सामनी यन्त्र होता है। तो अग्ने अस्त्रों को शान्त करने वाला होता है। आज तो मैं इस सम्बन्ध में कोई वाक्य प्रकट करने वाला नहीं। मुझे भी इस अनुसन्धान में प्रायः सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। आज मैं इन वाक्यों को उच्चारण करता हुआ दूर चला गया। अब मेरे प्यारे महानन्द जी एक वार्त्ता ! प्रकट करेंगे जो मैं अपने प्यारे महानन्द जी से केवल एक अमृत्तम समन्वये अस्ति !सुप्रजा

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यमा रथम् आभा मानम् तनुः। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ऋषि ! आज मुझे परमपिता परमात्मा की अनुप !भद्र समाज !मण्डलम कृपा से मेरे गुरूदेव ने अपना दार्शनिक विषय समाप्त करके मुझे अमूल्य समय प्रदान किया है। इस सम्बन्ध में कोई अधिक चर्चा प्रकट नहीं करना चाहता क्योंकि सूर्य के समक्ष एक जुगनू का प्रकाश मैं देने लगूं तो कोई शोभा नहीं देता। मेरा विषय अपने पूज्यपाद गुरूदेव से भिन्न रहा करता है, यज्ञशाना बनानी है, और यज्ञशाला में मुझे विराजमान हो करके अनुसन्धान करना है। इस प्रकार का जो अनुसन्धान होता है, वह वास्तव में विचित्र होता है। परन्तु द्यौ लोक की समिधा द्यौ लोक का घृत और सूर्य मण्डल और भी नाना लोक लोकान्तरों को भी जानना है।

आज मैं अपनी एक वार्त्ता प्रकट कर रहा हूँ कि संसार विज्ञान के युग में जी रहा है। विज्ञान कहते किसे हैं? इसके ऊपर विचारना है। विज्ञान नाना प्रकार के परमाणुवाद को जानना, यन्त्र बनाना, चन्द्रमण्डल में जाना और भी नाना लोकों की कल्पना करना यह वास्तव में विज्ञान तो है। **परन्तु जहाँ मन और प्राण का निदान कर दिया जाता है,** और निदान करके दोनों का जब मिलान करके वह जो मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने अभी अभी नाना प्रकार की नाड़ियों का वर्णन किया है, चक्रों का वर्णन किया है। जब वह ग्रन्थियां खुल जाती हैं, तो मानव का यह विज्ञान उसे अन्तर्गत ऐसे आ जाता है। जैसे

गऊ के द्वारा बछड़ा आ जाता है। आज मैं विज्ञान की चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। आज मैं चन्द्रमण्डल की वार्त्ता प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। आज में कोई मंगल की भी व्याख्या करने नहीं आया।

आज मैं प्रायः दृष्टिपात करता रहता हूँ कि मंगल का वैज्ञानिक जितना अनुसन्धान कर रहा है, बृहस्पति का मानव जितना अनुसन्धान कर रहा है। मैं इसकी भी विशेषता करने नहीं आया हूँ, क्योंकि हमारे यहाँ एक दूसरे लोक लोकान्तरों की उड़ान प्रायः होती रहती है, और यह जो उड़ान है, यह महान और पवित्र भी हो सकती है। परन्तु यह विनाश का कारण बना करती है। परन्तु एक याज्ञिक पुरूष के अन्तर्गत दोनों प्रकार का विज्ञान होता है। एक मानव की रक्षा करने वाला और एक मानव को नष्ट करने वाला, समाज को नष्ट करने वाला। समाज की रक्षा कौन करता है? समाज की रक्षा वह करता है, जिसके द्वारा महान सुकृत महानता है। आज जब मैं कल्पना करता हूँ कि आधुनिक जगत में कितना विचित्र बन गया है, कितना अविचित्रता में परणित हो गया है। **आज का मानव वेद के विषय में नहीं विचारता। नाना प्रकार के उन विषयों को विचारने लगता है, जिन विषयों का प्रकाश आया और चला गया।** कितने नाना प्रकार के सम्प्रदाय हैं, और वेद के ऊपर अध्ययन नहीं है, उनका विचार भी नहीं है, और आज परमात्मा के द्वारा मुक्त होना चाहते हैं। मुक्ति की कल्पना करना चाहते हैं। नाना प्रकार के सम्प्रदायों में अपने मन की धारा को ले जा करके के प्राण का सन्निधान न ले करके केवल वह ऐसे क्षेत्र में चले जाते हैं। जिससे मानव हस वैदिक परम्परा का विनाश करता रहता है, और वैदिकता का अपमान होता रहता है।

मैं यह दृष्टिपात करता हूँ कि वेद का अपमान कौन करता है? वेद का अपमान वह प्राणी करता है। जो प्राणी रूढ़िवाद में परणित हो जाता है, और अपने मस्तिष्क में विचार विनिमय नहीं करता है। वह प्रकाशक का प्रायः विरोधी होता है। वह मुहम्मद का मानने वाला हो, दयानन्द का मानने वाला क्यों न हो वह ईसा को मानने वाला क्यों न हो, नाना प्रकार के आचार्यों और ऋषि मुनियों को मानने वाला क्यों न हो जिसकी रूढ़ि बन जाती है। वह अपनी मानवता का हनन कर देता है, धर्म की परम्परा को नष्ट

कर देता है। इसी प्रकार हमारे यहाँ जितना पठन पाठन किया जाता है। उस पठन पाठन के आधार पर हमें विचार विनिमय करना है कि हम अपनी मानवता को कहाँ ले जाना चाहते हैं। परन्तु मेरा तो एक ही वाक्य रहता है कि रूढ़िवाद को त्याग देना चाहिए और अनुसन्धान वेत्ता बनना चाहिए। **वेद के प्रकाश की छत्रछाया में मानव को आ जाना चाहिए जिसमें पक्षपात नहीं है जिसको हमारे यहाँ ईश्वर की वाणी कहा जाता है। यज्ञ में जब विराजमान होते हैं तो यज्ञमान को चाहिए कि अपनी रूढ़ियों को त्याग दे, क्रोध को रूढ़ि को, द्वेष की रूढ़ि को। अपनी महान वाणी और मस्तिष्क को सन्तुलन में करके जब यज्ञ करता है, घृणा और मनसा पाप को त्याग करके यह जो मनसा पाप है। यह मानव के जीवन का विनाश कर देता है, जिस मानव को मनसा पाप हो जाता है, उस का जो सुकृत है वह ऐसे हनन हो जाता है जैसे सांयकाल को सूर्य की किरणें हनन कर जाती हैं। उसके जीवन में प्रकाश नहीं रहता।**

मनसा पापी प्राणी कौन होता है? मनसा पापी प्राणी के हृदय में घृणा उत्पन्न हो करके उसकी मानवता का हनन हो जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव का एक मृत लोक में शरीर माना गया है, मैं उसको दृष्टिपात करता रहता हूँ। परन्तु उनकी किसी किसी काल में भयंकर क्रोध की मात्र उत्पन्न होती है। तो यह भय होने लगता है कि इनकी किसी काल में मृत्यु न हो जाएं। परन्तु जब मैं वह दृष्टिपात करता रहता हूँ, तो एक विचार वह आता है कि मानव को उसका कर्म उसे किस परिस्थिति को परणित कर देता है। मैं तो अपने पूज्यपाद गुरू से सूक्ष्म वार्त्ताओं की किसी काल में प्रेरणा देता हूँ। उन से मैं प्रश्न ही करता हूँ। इन्होंने इस वृष्टि यज्ञ के लिए बहुत अनुसन्धान किया। इन्होंने लगभग वर्ष तक ऐसी महान कठोर तपस्या की कि जिसमें नि 32द्रा भी नहीं आ पाती थी। नग्न रहते थे, औषधियों पर विचार करते रहते थे, औषधि आ करके रात्रि काल में इनसे वार्त्ता प्रकट करती थीं। क्योंकि औषधियों का जो सम्बन्ध है वह मन से होता है, और प्राण से होता है। जहाँ मन और प्राण दोनों का विषय आपस में मिलान होने लगता है। उस समय मानव से आकर के औषधियां यह उच्चारण करती हैं, कि मैं इस गुण की हूँ, क्योंकि मन और प्राण की रचना के आधार पर नाना प्रकार की वनस्पतियों

की रचना प्रायः होती रहती है। इसके पश्चात जब यह वाक्य मेरे मस्तिष्क में आता है। तो मैं यह विचारता रहता हूँ कि पूज्यपाद गुरूदेव का कितना महान तप है, कितना इनका अनुसन्धान रहा है। पुत्रेष्टि यज्ञ में जो जो औषधियां यह लाए, कहाँ कहाँ से एकत्रित की। बारह वर्ष पुत्रेष्टि यज्ञ की औषधियों को एकत्रित करने में अनुसन्धान करने में, उनका निदान करने में लगे, रात्रि दिवस किसी काल में निद्रा नहीं आती थी मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से किसी काल में प्रार्थना करूंगा कि यह मुझे निर्णय करायें परन्तु इस सम्बन्ध में मैं किसी काल में बड़ा चिन्तित होता रहता हूँ। वास्तव में चिन्ता तो नहीं क्योंकि मानव का जो कर्म है, उसके अनुसार मानव का एक विलक्षण कर्म चलता रहता है।

केवल यह वाक्य और उच्चारण करना चाहता हूँ कि संसार में मानवता का निर्माण होना बहुत अनिवार्य है, और मानवता का निर्माण उस काल में होगा जब ब्राह्मण ऊँचे त्यागी पुरूष होंगे। जितना त्याग होगा, जितना ब्राह्मणत्व होगा उतना राष्ट्र और समाज दोनों ऊँचे बनेंगे क्योंकि राष्ट्र में, समाज में दोनों को ऊँचा बनाने वाला ब्राह्मण कहलाता है। वह कौन सा ब्राह्मण है? वह जो अपने में अनुसन्धानवेत्ता है। तप ही से तपस्वी बन जाता है। जो संसार का लोकप्रिय प्राण बन जाता है। वही तो ब्राह्मण कहलाता है। ब्राह्मण कहते उसे हैं, जो अनुसन्धानवेत्ता होता है, जो महान होता है। जिसकी पवित्रता द्यौ लोक और अन्तरिक्ष और पृथ्वी में प्राप्त होती है। मुझे स्मरण है कि उनके पास राजा महाराजा आते, राष्ट्र के निर्माण की चर्चा करते। एक समय मेरे पूज्यपाद गुरूदेव के समीप महाराजा अश्वपति जी आए क्योंकि उन्हें अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य अर्पित करना था। वह चरणों में ओत प्रोत होकर के बोले कि हे प्रभु मैं यह चाहता हू कि ! आपके द्वारा मेरे राष्ट्र का निर्माण हो और मुझे कोई वार्त्ता प्रकट कराए कि मैं उसका निर्माण किस प्रकार करूं। तब कहा गया कि मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि तुम वानप्रस्थ और सन्यास को प्राप्त हो रहे हो। यह तो तुम्हारा सौभाग्य है। परन्तु पुत्र को सुयोग्य बनाओ। राजा के दो कार्य होने चाहिए। एक तो उसके द्वारा मिथ्या नहीं होनी चाहिए। **कोई वार्त्ता ऐसी होती है, जो शुद्ध प्रतीत होती है, परन्तु उनके गर्भ में भी मिथ्या होता**

है। इसलिए वह वार्त्ता भी नहीं होनी चाहिए। दूसरे राजा को अपनी दसों इन्द्रियों पर संयम करना चाहिए। दस इन्द्रियो का संयमी जो पुरूष होता है, वह राष्ट्र का नायक बन जाता है। राष्ट्र को पवित्र बना देता है। इसके पश्चात राजा को यह विचारना है कि जितनी मेरे राष्ट्र में पुत्रियां हैं, माता हैं, इसके शृङ्गार की मुझे रक्षा करनी है, राष्ट्र में सदाचार होना चाहिए। इस प्रकार का संकल्पबद्ध जो राजा होता है अपनी पत्नी को छोड़कर राष्ट्र में जितनी माताएं और पुत्रियां होती हैं। वह उसके लिए त्याज्य मानी गई है। इस प्रकार का गुण राजा में होना चाहिए। यदि यह गुण राजा में नहीं है तो मेरे पूज्य गुरूदेव ने कहा कि राजा को राजा नहीं बनाना क्योंकि राजा बनाओगे तो वहाँ ब्रह्म हत्या हो जाएगी।

ब्रह्म हत्या किसे कहते हैं कि यहाँ बुद्धिमान ब्राह्मणों का अपमान होने लगेगा। बुद्धिमानों का अपमान किस काल में होता है जब राजा सदाचारी नहीं होता। जहाँ राजा को यही ज्ञान नहीं कि क्या वाक्य हमें प्रकट करना है, क्या नहीं करना है, कितना मिथ्या उच्चारण करना है। किस से करना है। जब तक यही ज्ञान नहीं तो उस राजा को मत चुनो। उसे चुनोगे तो संसार नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा। आधुनिक राष्ट्र के सम्बन्ध की चर्चा मैं प्रायः करता रहता हूँ। यह ऋषि मुनियों की भूमि रही है। याज्ञवल्क्य ब्रह्मवेत्ता की भूमि रही है, इस भूमि की चर्चा मैं यदि करने लगूं तो पूज्यपाद गुरूदेव आश्चर्य करेंगे। हमारा यह निश्चय है कि आज राजाओं में इस प्रकार की क्रान्तियां क्यों हैं, अग्निकाण्ड हो रहे हैं, इनका मूल कारण यह है कि मूर्खों को चुना हुआ राजा मूर्ख होता है। क्योंकि जो साधारण प्रजा होती है। उसे योग्य और अयोग्य का ज्ञान नहीं होता। रूढ़िवाद आ जाता है। उस रूढ़िवाद से चुना हुआ जो प्राणी होता है। वह तो मूर्ख ही बनेगा। प्रजा को कोई आनन्दित नहीं कर सकता। उसका मूल कारण यह है कि राजा को ब्राह्मण चुना करते हैं, बुद्धिमान चुना करते हैं।

तो उस समय महाराजा अश्वपति ने पूज्यपाद गुरूदेव से कहा प्रभु !? आप उसके अन्तःकरण को दृष्टिपात कीजिए वह कैसा है। समाधिष्ट हो करके राजाओं का मस्तिष्क आयुर्वेद की दृष्टि से मस्तिष्क का निदान, हृदय का निदान, इन्द्रियों का निदान करने

के पश्चात करने के पश्चात हमारे यहाँ राजा महाराजा बनाया जाता है, और ऐसा राजा जो योगियों के द्वारा, ब्राह्मणों के द्वारा चुना जाता है। वह प्रजा को सुखी बना देता है, और स्वयं सुखी बन जाता है। आधुनिक काल में तो यह भयंकर अग्नि का प्रभाव होने जा रहा है, मुझे तो यह दृष्टिपात आ रहा है कि संसार के एक स्थान पर रक्त की धारायें आने वाली हैं और अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। यह ऐसा क्यों है? न छात्रबल पवित्र, न राष्ट्रवादी ही पवित्र हैं। कारण यह है कि जो नायक होता है। उसका हृदय ब्रह्मत्व से पका हुआ नहीं है, वह ब्राह्मण आचार्यों से तपा हुआ नहीं है, उसका निर्माण यदि बुद्धिमानों के द्वारा होगा तो यह राष्ट्र पवित्र बनता चला जाएगा। इस समाज को दृष्टिपात करते हुए मुझे बहुत समय हो गया है। जो दूसरे को नष्ट करके राजा बनने की चेष्टा करता है वह मेरी पुत्रियों के श्रृङ्गार को हनन करता है। और जो मूर्खों का चुना हुआ राजा होता है। उसके द्वारा नियम और अनियम कुछ नहीं होते इस प्रकार अप्रेत होता है। तभी तो राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति लाता है। रक्त भरी क्रान्ति का मूल कारण क्या है कि जितनी आत्महत्या की जाएगी। आत्महत्या किसे कहते हैं? जितना समाज के विचारों को हनन किया जाएगा, उन्हें उनका अधिकार प्राप्त नहीं होगा, उतना ही अग्नि का प्रभाव चलता रहेगा। एक समय वह आयेगा कि वह जो शान्त होने वाले विचार हैं। **जिनको दमन करने की चेष्टा की गई वह विचार एक समय अग्नि बन करके मानव के समीप आ करके रक्त भरी क्रान्ति का मूल कारण बन जाता है। यह मनोविज्ञानिक सिद्धान्त है।** संसार के नाना उदाहरण मेरे समीप आते रहते हैं। महाभारत के काल में जब पाण्डु पुत्रोंके विचा !रों का दमन हुआ तो उनके विचार भयंकर अग्नि ले करके समीप आ गएं। जिससे संसार का विनाश हो गया। इसी प्रकार जब रावण के आतातायी विचार ऋषि मुनियों को अपमानित करते रहे। तो महर्षि भारद्वाज ने भगवान राम को कहा कि हे राम !? जितना मेरे द्वारा शस्त्र हैं, इससे राजा रावण के आतातायी राष्ट्र को तुझे नष्ट करना है। महर्षि भारद्वाज ने भगवान राम को अपने अस्त्रों शस्त्रों को प्रदान किया और रावण का परिवार नष्ट हो गया। पातालपुरी से लेकर हिमालय तक उन्हीं का राष्ट्र व्याप्त रहता था, एक सूक्ष्म सी अयोध्या पुरी रह गई थी। महर्षि भारद्वाज

ने नारायणतक को चन्द्रमा की यात्रा कराने का प्रयास किया और उनके विभ्राता कुम्भकरण को ऊँचा वैज्ञानिक बनाया। कुम्भकरण मास तक अस्त्रों शस्त्रों की विद्या 6 मास तक अज्ञातवास में रहते थे। वह हिमालय की 6 प्रदान करते रहते थे। और कंन्दराओं में अपनी विज्ञानशाला मेंअस्त्रों शस्त्रों का निर्माण किया करते थे। आधुनिक काल का प्राणी कहता है कि वह मास तक 6 मास तक निद्रा में रहते थे और 6 जागरूक रहते थे। वह महान था, उसका विज्ञान भी महान था।

हे मेरी प्यारी माता तू अपने गर्भ से ऊँची संतान को जन्म दे। यदि तू ऊँची सन्तान ! को जन्‍्म नहीं दे सकेगी, तो तेरा श्रृङ्गार नष्ट होता रहेगा। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव मैं ! आपको निर्णय कराना चाहता हूँ। जब संसार में माता कौशल्या होती है। तो राम जैसी पुनीत आत्मा अन्तरिक्ष में से आ जाती हैं, और जब माता प्राण केतु होती हैं, माता स्नेहलता होती हैं तो स्नेहलता के गर्भ से दयानन्द जैसी आत्माओं का जन्म होता है। इसी प्रकार महात्मा शंकाराचार्य का रूनि रानी के गर्भ से जन्म होता है। यह संसार तब तक ऊँचा बनता है। जब मेरी माता सुचरित्र होती है, पतिव्रता होती है। हे मेरी माता जब तेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक ही यदि !तेरी ही जातियता को किसी की पुत्री के ऊपर कुदृष्टि करता है। तो यह दोष किसका? यह मेरी माता का ही दोष है। क्योंकि माता ने अपने गर्भस्थल में सुन्दर निर्माण नहीं किया। माता भी दुखित रहती है। इसका मूल कारण यह कि अपने गर्भस्थल को ऊँचा बनाना, महान बनाना पवित्र बनाना, यह मेरी प्यारी माता का पवित्र कर्त्तव्य होता है।

मेरी प्यारी माता को मन और प्राण को सुचारू रूप में सुन्दर बनाता है, परन्तु गर्भ में जब परमात्मा निर्माण करता है, कौन कौन से माह में कौन कौन सी नाड़ियों का निर्माण होता है। पूज्यपाद गुरूदेव का यह विषय रहा करता है मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा नहीं करना चाहता, क्योंकि मैं वैद्यराज नहीं हूँ। आज का मानव कहता है कि यह सब पाखण्ड है। पाखण्ड को वह जानते नहीं कर्त्तव्य न करके वह कर्त्तव्यहीन ही तो पाखंड की मात्र को उत्पन्न करता है। मैं समय अधिक नहीं लेना चाहता हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि मानव का निर्माण हो और यज्ञ होने चाहिएं। आज का

राष्ट्र तो यज्ञ को भी पाखंड कह रहा है। आज कहता है कि संसार में तो प्राणियों के लिए अन्न नहीं प्राप्त होता और यह यज्ञ होते हैं। अरे, मूर्ख समाज यह तू क्या ! उच्चारण कर रहा है। आज तुम्हें इसका ज्ञान नहीं हो पा रहा है। क्योंकि वेद का ज्ञान त्याग करके मानव ऐसी वार्त्ता प्रकट कर रहा राजा के राष्ट्र का निर्माण केवल यज्ञ के द्वारा होता है। यज्ञ करना उसका कर्त्तव्य होता है। जिससे प्रजा में सुख आए, आनन्द आए, पवित्रता आ जाए क्योंकि जो राजा जिस कार्य को करता है। प्रजा उस कार्य को करती है, प्रजा उसका अनुसरण करती है, पवित्र बन जाती है। इसलिए राजा को वह कार्य करना चाहिए। क्योंकि संसार में यही तो होता है, जिसको हम ऊँचा स्वीकार कर लेते हैं। उसके अनुकूल चलने की चेष्टा हमारे मस्तिष्क में होती है। जिसको जानने के पश्चात मानव का मस्तिष्क पवित्र बन जाता है। संसार को ऊँचा बनाना, ऊँची सन्तान को जन्म देना, राष्ट्र का निर्माण करना, मूर्खों का चुना हुआ राजा मूर्ख होता है। जहाँ रक्त भरी क्रान्ति का प्रभाव इसलिए होता है, क्योंकि ब्राह्मण बुद्धिमानों के द्वारा राष्ट्र का चुनाव नहीं होता।

मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह वाक्य उच्चारण करने वाला था महाराजा अश्वपति के पुत्र के अन्तःकरण को यौगिकता से दृष्टिपात करके अश्वपति को कहा कि हे अश्वपति ! अभी तुम एक वर्ष तक राष्ट्र पालन और करो एक वर्ष में यह सुयोग्य बनजायेगा। उस समय ऐसा ही हुआ। एक वर्ष तक अश्वपति ने और राष्ट्र का पालन किया उसके पश्चात पुत्र को दृष्टिपात किया गया। वह इस योग्य बन गया कि उसको राष्ट्र देकर के वह ऋषि मुनियों के पास जा पहुंचे। अरे, उन राजाओं का प्रजा पर कितना प्रभाव होता था उनका त्याग दृष्टिपात करके प्रजा भी त्यागी होती थी। जब राजा त्यागी होता है। तो प्रजा भी त्यागी होती है। जब राजा वन की यात्रा करता है, पर्वतों को चला जाता है, तपस्या गायत्रणी छन्दों में अर्पित हो जाता है। उसका आदर करने वाला समाज होता है, उसके पुत्र का भी आदर होता है, और प्रजा उनका अनुकरण करती है, हमारे यहाँ युवा शिक्षालय में शिक्षा देते हैं। गृहणी में मन लगा हुआ है, एक स्थान में ब्रह्मचारियों को शिक्षा दी जा ही है। अरे, तुम्हारे हृदय में जो सूक्ष्म मोह की ममता वशीभूत हो

जाती है। तो ब्रह्मचारी भी उसी प्रकार के बनते हैं। जब शिक्षालयों में वानप्रस्थी शिक्षा देता है, ब्रह्मचारी को अपने जीवन के अनुभव देता है। तो ब्रह्मचारियों का जीवन पवित्र बनता चला जाता है। जब मैं अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा संसार का भ्रमण करता हूँ, तो मैं शिक्षालयों की वर्तमान वार्त्ता ऐसी दृष्टिपात कर रहा हूँ कि संसार का बनेगा क्या? छात्रबल इसलिए समाप्त होता चला जा रहा है। क्योंकि उसका कर्त्तव्य नष्ट हो गया है, क्योंकि अनुभवी व्यक्ति इनको शिक्षा नहीं देता। नव वधू उनके गृहों में परणित हैं, और जब वह शिक्षालयों में शिक्षा देने जाते हैं। तो उनका मन कामना में परणित हो रहा है। जब प्राण में गति है, और प्राण के जो परमाणु हैं वही तो विद्यालय में परणित होंगे। ब्रह्मचारियों का मस्तिष्क उसी विद्या से बनेगा। इसलिए शिक्षालयों में छात्रबल अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकता। यह उसी दिशा को चलेगा जिस दिशा में गुरू की प्रथा होती है। एक जातीय संस्कार होते हैं। माता निर्माण करने वाली है। परन्तु माताओं के ऊपर भी वह जो शिक्षालयों में ब्रह्मचारी ने शिक्षा ग्रहण की है, वही तो पति बन करके गृहों में आता है। उसका जीवन भी तो उसी प्रकार का बना है। ऐसा संसार का वातावरण जब मैं दृष्टिपात करता हूँ, तो मुझे आश्चर्य होता है कि इस समाज का क्या बन गया। जहाँ एक स्थान में ऋषि मुनि रहते थे, पुरोहित शिक्षा प्रदान करते थे। क्या बन गया इस राष्ट्र का? मुझे बड़ा आश्चर्य आता है। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि समाज उस काल में पवित्र बनेगा जब यहाँ राष्ट्रवाद की प्रतिभा सुन्दर होगी। महान होगी, पवित्रता में परणित होगी। आज का हमारा वाक्य अब समाप्त। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा। कोई कटु शब्द उच्चारण हो गया हो तो मैं क्षमा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्यआज मेरे !ऋषिवर !मेरे प्यारे !धन्य हो..... प्यारे महानन्द जी ! ने एक विचार दिया परन्तु वह जो विचार है, वह एक विडम्बना भरा विचार है, और समाज के निर्माण का विचार है। मानव को यह विचारना है कि हमें अपने समाज को उसी प्रकार का बनाना है, और राजा के राष्ट्र में ऊँचे ऊँचे योग स्थान होने चाहिए जिनका राष्ट्र के द्रव्य के खान पान की व्यवस्था होनी चाहिए। और जितने योगी होंगे

उतना ही मानव का सुधार होगा, पवित्रता में परणित हो जाएंगे। यह आज का वाक् अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने बहुत शब्द उच्चारण ! किए। बहुत ही सुन्दर विवेचना की है। कहीं कहीं कटु शब्द भी हुए हैं परन्तु आज का यह वाक्य समाप्त। अब वेद का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जीः प्रकृति भी पूर्ण है, प्रकृति के बिना संसार नहीं हमारा शरीर भी नहीं और ब्रह्म भी पूर्ण है परन्तु प्रकृति के आँगन में जाने में हीनता क्यों मानी जाती है?

पूज्यपरद गुरुदेव जीः जैसे हमारे शरीर में अहंकार है, रसना है, जितनी ज्ञानेन्द्रियां हैं, कर्मेन्द्रियां हैं, इनसे सूक्ष्म मन है, जो इन्हें नियन्त्रण में प्रस्तुत करता है। इस मन से सूक्ष्म बुद्धि है, और बुद्धि से सूक्ष्म अन्तःकरण है। जिसे हम चित्त भी कहते है और चित्त से सूक्ष्म वह आत्मिक ज्योति है। और जितनी यह पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां हैं, यह सब प्रकृति का स्वरूप है, प्रकृति में यह मन और बुद्धि यह चित्त भी आ जाता है। यह सब प्रकृति के आवेशों से आता है, और जब हम इस पर नियन्त्रण करने लगते हैं। और यह जितना प्रकृति का सूक्ष्म रूप है, यह हममें समाहित हो जाता है। उसके पश्चात हम अन्तिम ज्योति पर जाते हैं। आत्मा प्रकृति से सूक्ष्म है, और परमात्मा आत्मा से भी सूक्ष्म है। प्रकृति जड़ है, और परमात्मा आत्मा से भी सूक्ष्म है। प्रकृति जड़ है, और परमात्मा चैतन्य है, और उनके माध्यम में यह आत्मा है। सबसे सूक्ष्म गुण प्रकृति में है, और उसके पश्चात जीव में है, और सबसे अधिक गुण परमात्मा में है। जो जैसे गुणों वाले के द्ववारे सत्संग करता है वैसे गुण उसमें ओत प्रोत हो जाते है। जैसे कोई मनुष्य दुराचारी का सत्संग करता है, तो उसमें दुराचारी के अंकुर विराजमान हो जाते है। इसी प्रकार प्रकृति सूक्ष्म गुणों वाली होने के नाते और जीव उससे अधिक गुणों वाला होने के नाते यदि वह जीव अपनी उन्नति चाहता है। तो अधिक गुण वाले से उसका सम्पर्क होना चाहिए, और जब वह प्रकृति के आँगन में आ जाता है, प्रकृति का सत्संग करता है। तो उस समय उसके द्वारा हीनता ही आती चली जाती है, और वह हीनता को प्राप्त करता रहता है। उसे ब्रह्म के आँगन मे जाने से महान आनन्द प्राप्त

होता है। प्रकृति सत है, जीव सतचित्त है वह आनन्द के लिए इच्छुक रहता है और आनन्द परमात्मा मे मिलता है, और प्रकृति में आनन्द नहीं है। इसलिए प्रकृति का जो सम्पर्क है वह इतना लाभदायक नहीं होता। (लाक्षागृह बरनावा पर दिया हुआ प्रवचन)

१९ 12 04 1971 पुष्प 15 आध्यात्मिक ज्योतियां

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ जो पठन पाठन का कर्म है। वह परम्परागतों से ही, पवित्र माना गया है। क्योंकि जिस वेदमन्त्र के साथ में मानव का हृदय जुड़ा हुआ होता है अथवा मानव के जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है उस वेद की प्रतिभा में एक महानता की ज्योति जागरूक हो जाती है। क्योंकि जब तक वेदमन्त्र के साथ में हृदय का मिलान नहीं होता, बेटा तब वेदमन्त्र में आनन्द भी प्राप्त नहीं ! होता है। मानव प्रायः शब्दों को अच्छी प्रकार ज ान नहीं पाता है, परन्तु जो हृदय से उच्चारण किया हुआ जो शब्द होता है, वह मानव के मन को प्रायः बहुत ही प्रिय लगा करता है।

मुझे स्मरण आता रहता है, बेटा आज मैं कोई विशेष वार्त्ता प्रकट करना नहीं चाहता ! हूँ वेद के सम्बन्ध में क्योंकि वेद का ज्ञान और विज्ञान तो अनन्तवत माना गया है। इसका जो अनुपम प्रकाश है, वह मानव के हृदय को ही पवित्र बनाता चला जाता है। वह इन शब्दावलियों में, उस महान, द्यौ लोक में, जो घृत समिधाओं के सहित प्रदीप्त हो रहा है। उसका जब शब्दावलियों से विशेष सम्बन्ध हो जाता है। तो बेटा मानव ! का हृदय व िभोर हो जाता है, और वेद की प्रतिभा में, एक महानता की ज्योति जागरूक हो जाती है। एक महान पुरूष जब अपनी लेखनी को बद्ध करने लगता है, तो जितना उसका हृदय के हृदय से घृत उत्पन्न की हुई लेखनी होती है, जितनी हृदय का सम्बन्ध होता है वेदों सेदेखो !मुनिवरों ,, मन की एकाग्रता होती है, उतना ही उन शब्दों में बेटाव्यापकवाद आता चला जाता है। जब हम यह विचारने लगते हैं !, कि यह जो वेद की प्रतिभा है, यह मानव के सुचरित्र, सुविचार और जितना सूक्ष्मतम होता

है उतना बेटाशब्दावली में विचित्रता आती चली जाती है !, उतना एक महानता का दिग्दर्शन होने लगता है। उतनी ही महान ज्योति जागरूक होने लगती है।

आओ मेरे प्यारे आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा है। आज के वेद !ऋषिवर ! जिन विचारों से हमारे ऋषि मुनियों ,पाठ में अपने नाना यौगिक विचार देना चाहता हूँ ने अपना एक महत्वदायक विचार दिया है। जिनका विचार परम्परागतों से ही, महान रहा है। हमारे यहाँ दार्शनिक क्या, और नाना अभ्यासी जब विराजमान होते हैं तो बेटा ! उनकी एक विचारधारा होती है, उस विचारधारा को मैं पुनः से तुम्हारे समक्ष लाना चाहता हूँ। जिन विचारधाराओं को बेटाहमारे यहाँ !, परम्परागतों ऋषि मुनियों ने अभ्यास करने के पश्चात और अनुभव करने के पश्चात अपनी नाना प्रकार की विचारधाराएं अपना विचार ऋषि मुनियों ने बेटा निर्णयात्मक करने के लिए वह प्रायः प्रकट करते रहते ! थे।

आज का हमारा जो एक महान विचार है, ऋषि मुनियों ने कहा है बेटा महर्षि प्रवाहण ! ने और शाण्डिल्य जी ने और महर्षि पोपली ऋषि महाराज ने तीनों जिज्ञासुओं ने महर्षि भृंगी से एक वाक्य कहा कि महाराज यह मानव किसी विषय को जानता हो अथवा ! न जानता हो परन्तु मानव को पिपासा रहती है। मैं इस विषय को भी जानना चाहता हूं, ऐसी पिपासा मानव के हृदय में क्यों जागरूक होती है? इस पिपासा के सम्बन्ध में, हम कुछ जानना चाहते हैं। उस समय बेटा ऋषि मुनियों के विचारकों के इन विचारों ! को सुनने के पश्चात महर्षि भृंगी जी ने कहा कि मेरे विचारों में तो ऐसा आ रहा है कि उसका ,मानव के मस्तिष्क में मानो जिससे हम मानव का हम मस्तिष्क कहते हैं हृदय से सम्बन्ध होता है तो उस समय ऐसा आचार्यों ने माना है कि मानव के हृदय में, मानव के मस्तिष्क में बेटावह अंकुर होते हैं वह उपज होती है !, उनके द्वारा जिनका अन्तःकरण में सूक्ष्म अंकुर विराजमान होता है। जिस प्रकार एक मानव चन्द्र मण्डल के सम्बन्ध में जानना चाहता है। वही मानव मंगल की कल्पना कर रहा है, वही मानव बेटासूर्य की नाना किरणों की कल्पना कर रहा है !, वही मानव और भी नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की कल्पना करता रहता है, ऐसा मानव की हृदय में पिपासा क्यों

जागरूक होती है? उसको मानव जानता नही हैं और ऐसी उसकी पिपासा उस मानव के हृदय में जो होती है ऐसा बेटा अपना निर्णय दिया। !ऋषि मुनियों ने ऐसा बेटा ! महर्षि भृंगी जी ने इन वाक्यों को ले करके परणित हो गए महर्षि भारद्वाज आश्रम में प्ररिणत हो गएं। क्योंकि महर्षि भारद्वाज भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान का समन्वयकरना जानते थे। हमारे यहाँ वाणी के सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार प्रगट करते रहते थे और मन के सम्बन्ध में बहुत कुछ विवेचना प्रकट करते हुए रहते थे , बुद्धि के सम्बन्ध में भी नाना प्रकार की विवेचना प्रकट करते रहते थे। !और मुनिवरों देखो !उसके पश्चात मुनिवरों, आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों का समन्वय करने की उनकी बड़ी प्रबल इच्छा रहती थी कि मैं संसार को उस मार्ग को देना चाहता हूँ , जिससे आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों का समन्वय होता चला जाएं। ऐसी ऋषि की प्रायः पिपासा रहती थी, परन्तु उस सम्बन्ध में जब जिज्ञासुओं का वह समूह जब उनके द्वार पर पहुंचा तो महर्षि भारद्वाज ने कहा कहिए महर्षि भृंगी आप किस प्रकार ! मेरे द्वारा तुम्हारा आगमन क्यों हुआ !आए हैं अग्नि गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषिवर? उन्होंने कहा प्रभु मैं यह जानना चाहता हूँ क्या मानव के हृदय में इस प्रकार की ! पिपासा क्यों जागरूक होती है? इसका मूल कारण क्या है जब ऋषि !तो मुनिवरों ? ने कहा क्या मानव का जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं उसमें सूक्ष्म सूक्ष्म वाहक नाड़ियां होती हैं जिनका सम्बन्ध नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों से होता है, पञ्च तन्मात्राओं से होता है जिन पञ्च तन्मात्राओं से यह सर्वस्व जगत की रचना है मानो द्यौ लोक की रचना मानी गई है। इस प्रकार मुनिवरोंदेखो !, परमात्मा का जो हृदय है वह द्यौ लोक माना जाता है। जैसे मानव का हृदय है मानव के हृदय में बेटा नाना प्रकार की तरंगे ! सूक्ष्मतम हो करके, उनमें जागरूकता आती रहती है। मानो सुषुप्ति अवस्था वाले जो अंकुर होते हैं वह जागरूक होते रहते हैं। इसी प्रकार प्रभु का जो हृदय है जिसे हमारे यहाँ द्यौ लोक कहा जाता है। मुनिवरोंदेखो !, जिसमें शब्दावली विराजमान हो जाती है, जिसमें मानो पञ्च तन्मात्राओं में जो नाना प्रकार की ध्वनि होती है, मिलान करने के पश्चात, उनका भी समूह भी इस महान परमात्मा के हृदय से जिसे हमारे यहाँ द्यौ

लोक कहा जाता है अथवा द्यौ कहा जाता है जिसमें सहस्त्रों प्रकार की मन की तरंगे , जिसमें मानव का ,बुद्धि की तरंगें रमण करती रहती है ,रमण करती रहती हैं आन्तरिक विचार और बाहरीय विचार दोनों ही भ्रमण करते रहते हैं। आज हमें उनको विचारना है। क्या वह जो द्यौ है, जो परमात्मा का हृदय माना गया है, जैसे मानव का हृदय है इसमें मन की तरंगे ओत प्रोत होती रहती हैं, प्राण की तरंगे ओत प्रोत होती है। जिससे बेटामानव यौगिकवाद में चला जात !ा है। मानो अपने चित्त में जो रमण करने वाला जगत है उसको जानने लगता है जिससे मानव के अहंकार में कितनी मात्रा है, मानो कितनी मात्रा है इसी प्रकार बेटाइस आँगन में परणित होता रहता है !, इन्हीं का अनुसन्धान करता रहता है। इन्हीं में वह संलग्न रहता है।

मेरे प्यारे मुझे स्मरण आता रहता है कि वह जो मानव के हृदय में जो !ऋषिवर ! उसका मूल कारण है कि हमारा जो लघु मस्तिष्क है ,पिपासा उत्पन्न होती है, जिसे ऊपरी भाग में ब्रह्मरन्ध्र भी कहा जाता है, ब्रह्मरन्ध्र में एक चक्र होता है, उमसें नाना प्रकार की वाहक नाड़ियां होती हैं, जिनका सम्बन्ध मन से होता है। उस मन की नाना तरंगों का सम्बन्ध नाना प्रकार की नाड़ियों से होता है। किसी का सम्बन्ध ध्रुव मण्डल से होता है, किसी नाड़ी का सम्बन्ध जेठाय नक्षत्र से होता है, किसी का मंगल से होता है, किसी का चन्द्र मण्डल से होता है, किसी का सूर्य मण्डल से होता है, किसी का आरुणि मण्डल से होता है, किसी का अरूणधति मण्डल से होता है, किसी का रोहिणी नक्षत्र से होता है, किसी का मानकेतु नक्षत्र से होता है, किसी का वशिष्ठ मण्डल से और कृक मण्डल से होता है। नाना प्रकार के मण्डलों से उन नाड़ियों का सम्बन्ध होता है। बेटावह जो तरंगे होती हैं !, वह जो अंकुर हैं, वह केवल मन की एक पिपासा होती है क्योंकि मन के द्वार से ही इन नाड़ियों में बेटा तरंगे होती हैं। क्योंकि मन का जो ! सम्बन्ध है वह प्रकृति से है। प्रकृति का जो सूक्ष्मतम मानो स्वरूप है वह प्रकृति का ही एक मन रूप माना गया है। इसीलिए मुनिवरोंदेखो !, प्रकृति का जितना यह ब्रह्माण्ड है जितना यह चक्र है इसमें जितने भी लोक लोकान्तर है जहाँ भी प्रकृति का सम्बन्ध है वहीं बेटा मन की तरंगें नाड़ियों के द्वारा होती हुई और नाड़ियों में चेतना देती हुई !

मानो देखो, इसका प्रायः सम्बन्ध हुआ करता है।
मेरे प्यारे महर्षि भारद्वाज मुनि ने यह कहा हमारे यहाँ इस प्रकार की जो !ऋषिवर ! चौरासी प्रकार की धारा !बेटा ,धारा है वह चौरासी प्रकार की धारा स्वीकार की हैं इसी प्रकार चौरासी प्रकार की धारा मन की धारा ब्रह्मरन्ध्र में होती ,होती है मन कीहैं और ब्रह्मरन्ध्र में से वह जो नाना प्रकार की कृति है मानो उनमें भी बेटादेखो !, एक एक नाड़ी में से लगभग मुनिवरोंदेखो !, बहतर बहतर इस प्रकार की धारा होती है जिनका सम्बन्ध नाना प्रकार के मण्डलों से होता है, नाना सौर मण्डलों से होता है। मुनिवरोंदेखो !, वह सूक्ष्म शरीर में रमण करने लगता है जब वह धारा मानो देखो, परणित होती हुई सूक्ष्म शरीर में रमण करने लगती हैं उस समय बेटायह मानव को !, योगी को, सूक्ष्म शरीर वाले महापुरूष को, यह भान होने लगता है कि वास्तव में यह जो जगत है यह कितना विशाल है, इसमें कितनी विशालता है, लोक लोकान्तरों में मेरा आवागमन हो गया है, आज देखो, मैं विष्णु लोक में रमण करने वाला बन गया हूँ और भी नाना प्रकार के मण्डलों में प्रायः उसकी गति होने लगती है।
आओ मेरे प्यारे इस विषय को और अधिक गम्भीर बनाना नहीं !मैं बेटा !ऋषिवर ! चाहता हूँ। हमारे यहां इसी प्रकार इस बुद्धि का मानो देखो, मन का जो आभास है, प्रायः उत्पन्न होने लगता है वह प्रायः बुद्धि से उत्पन्न होने लगता है और बुद्धि में भी इसी प्रकार इक्कीस प्रकार की तन्मात्राओं का जन्म होने लगता है जिनका सम्बन्ध इस , महान प्रकृति के मण्डलों से, उन द्यौ लोक से होने लगता है। जिस प्रकार अग्नि में घृत की आहुति देने से अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, इसी प्रकार देखो, यह जो मन ,बुद्धि , चित्त की प्रवृत्तियां हैं इसी प्रकार यह जो महान कृति बुद्धियां हैं श्वेतकेतु, ऋणी का, अध्यात प्राची अस्तम नाना प्रकार की यह जो बुद्धि की तरंगें होती हैं बुद्धि की जो श्रेणियां होती हैं इनका सम्बन्ध जब द्यौ लोक से होता है। तो जिस प्रकार यज्ञशाला में यज्ञमान जब आहुति देता है और अग्नि प्रदीप्त हो जाती है इसी प्रकार बेटा जब इस ! बुद्धि की नाना प्रकार की तरंगे, नाना प्रकार की चेतनाएं जब द्यौ लोक में चली जाती हैं तो द्यौ लोक में जो नाना प्रकार के सुन्दर अणु हैं जिनका सम्बन्ध घृत से विशेष माना

गया है। जैसे नाना प्रकार की औषधियों का पशु के शरीर में जाकर के मन्थन होने के पश्चात् वह घृत उत्पन्न हो जाता है इसी प्रकार बेटायह जो नाना प्रकार की बुद्धि !यों का अभृत हो जाता हैं !वह जो नाना प्रकार की जो बुद्धियां की श्रेणी होती है बेटा , सामभूनि होती है, रेनकेतु होती हैं, मानकेतु होती है यह जो नाना प्रकार की बुद्धियों , जब यह द्यौ लोक में रमण करने लगती हैं !की तरंगें होती हैं बेटा, तो मुनिवरोंदेखो !, ऐसी सुन्दर महान तरंगों का जन्म हो जाता है। ऐसी सुन्दर जिस प्रकार मुनिवरोंदेखो !, घृत है।

द्यौ लोक का जो घृत है, वह क्या है? मुनिवरोंदेखो !, हमारे यहाँ वही !उसी को बेटा ! देखो !बेटा, बुद्धि में नाना प्रकार के रूपों से अवृत्त होने वाला क्योंकि जब प्राण और मन का जब दोनों का द्यौ लोक में समन्वय हो जाता हैदेखो !उस समय बेटा ,, योगी की साम्य अवस्था हो जाती है। उस समय वह योगी एक महान धारा को प्राप्त करने लगता है। वह जो इन्द्रियों में जो विशेष चेतना होती है, इन्द्रियों में ज्ञानेन्द्रियों की चेतना है कर्मेन्द्रियों की चेतना ,है अन्तःकरण में जिसे हमारे यहाँ चित्त !वह चेतना भी बेटा , भी कहा गया है उनकी प्रेरणा तो मानो देखो, स्वभाविक रहते हैं परन्तु उनका स्वभाव , बना रहता है। परन्तु जब योगी द्यौ लोक के घृत को जान लेता है, और योगी बेटा ! अपने ब्रह्मरन्ध्र के घृत को और द्यौ लोक के घृत को दोनों का समन्वय कर लेता है तो उस समय ये जो मानो अन्तःकरण में जिसे चित्त कहा जाता है चित्त में जो इन्द्रियों की चेतना है वह बारह प्रकार की जो वह एक एक में से बाहर प्रकार की चेतनाओं का जन्म होता है। मानो उन चेतनाओं का समवन्य इस महान द्यौ लोक वाले जगत से कर लिया जाता है तो उस समय बेटायोगी एक महान सूक्ष्म शरीर !, कारण शरीर और और मुनिवरोंदेखो !, स्थूल शरीर तीनों की गतियों को अच्छी प्रकार से जानने लगता है बेटा ।!

मेरे प्यारे आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना नहीं देना चाहता हूँ। इसमें !ऋषिवर ! महर्षि भारद्वाज ने नाना प्रकार का अनुसन्धान किया है महर्षि भारद्वाज मुनि ने बेटा ! अनुसन्धान करते हुए कहा है कि यह मानव के शरीर में जिसे वाणी कहते हैं समष्टि

में ले जाने के पश्चात जब हम इसे व्यष्टि में ले जाते हैं तो साधारणतया कहलाती है परन्तु जब समष्टि रूप धारण करा देतेहैं तो इसमें से तीन प्रकार की अग्नियों का अग्नयाधान होने लगता है। वह जो अग्नयाधान है, ऋषि भारद्वाज ने कहा है व्यापक प्रभागृतं रुद्र भागाः सहस्त्रणी रुद्रो व्तापनोति कामाः ऋषि कहते हैं हे मानव इसलिए ! तुझे वाणी पर संयम करना है क्योंकि यह वाणी सबसे प्रथम योगका एक विशेष अंग कहलाया गया है। क्योंकि यह जो वाणी है, मानो इसमें सतोगुण प्रधान होता है और मुखारविन्द से उत्पन्न होती है तो एक क्षण समय में पृथ्वी की दो सौ चारौसी बार परिक्रमा कर जाती है ओर जिस समय इसी वाणी मे रजोगुण प्रधान होता है उस समय तीन सौ चारौसी बार एक क्षण में पृथ्वी की परिक्रमा कर आती है और जब तमोगुण प्रधान होता है उस समय यह चार सौ चारौसी बार एक क्षण समय में इस पृथ्वी की परिक्रमा कर देती है। इसीलिए ऋषि कहते हैं कि हे मानव तू इस वाणी ! से अशुद्ध उच्चारण मत कर। यदि इस तेरी अशुद्ध की हुई वाणी का किसी मह ापुरूष के मस्तिष्क से मिलान हो गया तो हो सकता है कि तेरी तमोमयी वाणी योगी की बुद्धि को भ्रष्ट न कर जाएं। ऐसा हमारे ऋषिजन कहते हैं कि हे मानव आज तू इस वाणी ! से अशुद्ध उच्चारण न कर। यदि तेरी वाणी का अस्तित्व न रहा तो संसार में तेरी मानवीयता का विनाश हो जाएगा। इसलिए ऋषि कहते हैं आचार्य कहते हैं कि आज हमें इसके सूक्ष्मतम रहस्यों को जानना है। जिससे आज हम स्थूल शरीर को जानने वाले बनें।

आओ, तुम्हें मैं बेटास्थूल जगत में ले जाना चाहता हूँ। स्थूल जगत क्या है !? यह जो हमारा हृदय है और मानो हृदय और मस्तिष्क दोनों को हमारे यहाँ मस्तिष्क माना गया है। महर्षि सोमकेतु ऋषि महाराज ने वास्तव में हृदय तो एक ही होता है जैसा महर्षि दधीचि ने कहा है यह परन्तु दो प्रकार का हृदय यहां हमारा माना गया है मानो जिस हृदय और मस्तिष्क कहा जाता हैवैसे तो हृदय एक ही होता है परन्तु दो प्रकार , का इसलिए स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि इसमें कुछ अर्न्तद्वन्द्व आ जाता है, दोनों की कुछ दूरी हो जाती है, कुछ प्रकृति के, कुछ रजोगुण, तमोगुण आवरण आने के कारण

क्योंकि मन जो होता यह त्रिगुण माना जाता है त्रिगुणात्मक माना गया है। इसलिए इसमें कुछ अर्न्तद्वन्द्व आ जाता है। इनकी दोनों की चेतना को हमें जानना है। क्योंकि इन्द्रियों से जो चेतना जागरूक होती है जैसे हमारी स्पर्श इन्द्रियां हैं, श्रोत हैं, नेत्र हैं, इसी प्रकार घ्राण इन्द्रियां हैं। ऋषि भारद्वाज ने कहा है कि हे मानव यह जो श्वास ! है इसका नाभि केन्द्र से जन्म होता है। नाभि केन्द्र से जब यह प्राण चलता है घ्राण , के द्वार पर आ जाता है। तो इसमें से अरबों खरबों परमाणु चले जाते हैं। महर्षि भारद्वाज ने तो ऐसा कहा है कि एक भौतिक विज्ञानवेत्ता एक यन्त्र बनाता है परन्तु उस यन्त्र में चित्रावली आ जाती है तो वह केवल देखो, घ्राण के द्वारा जो श्वास की गति होती है उन्हीं परमाणुओं को एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है। वह नाना प्रकार के यन्त्रों के द्वारा उन्हीं परमाणुओं को एकत्रित करने से चित्रावली वाला यन्त्र का निर्माण हो जाता है। तो इसलिए ऋषिजन कहते हैं और ऋषिजन जो होते हैं उन परमाणुओं को जानने के पश्चात् वह एक एक परमाणु को जान लेते हैं कि घ्राण के द्वारा कितना परमाणु वायु का आया गया है, कितना परमाणु आपो का गया है, कितना परमाणु पृथ्वी का गया है, कितना अन्तरिक्ष का गया है। इसी प्रकार प्रत्येक परमाणु पर जब बेटासंयम हो ज !ाता है तो योगी में मुनिवरोंदेखो !, वह गति हो जाती है कि शरीर से जैसे नाभि केन्द्र से उत्पन्न होता हुआ प्राण मुनिवरों प्राण उन परमाणुओं को ले ! !करके जब वह संसार में प्रसारित हो जाता है उन परमाणुओं की गणना कर बेटा योगी ही कर सकता है। महर्षि मुनि ने ऐसा कहा है महर्षि भारद्वाज ने कहा है कि , वह जो परमाणु होते हैं, उनमें अरबों परमाणु वायु के होते है, इतने परमाणु अग्नि के होते है, इतने ही परमाणु जल के होते हैं, पार्थिव इतने ही होते हैं, अन्तरिक्ष के भी इतने ही होते हैं। मानो देखो, इन परमाणुओं पर जो योगी संयम करने वाला होता है उस योगी में वह गति उत्पन्न हो जाती है कि जिस प्रकार वह परमाणु गएं हैं उन परमाणुओं का मिलान करके वह अपने सूक्ष्म शरीर को प्राप्त हो करके स्थूल शरीर , को भी धारण कर सकता है।

मेरे प्यारेबारम्बार यह वार्त्ता स्मरण आती रहती है !मुझे बेटा !ऋषिवर !, ऋषि मुनियों

ने इन बाह्य क्रियाओं को जानने का प्रयास किया है। आज मैं इन सम्बन्ध में कोई अधिक विवेचना देना नहीं चाहता हूँ। वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः केवल यही है इसी प्रकार मानव के जो चक्षु होते हैं इनमें से नाना प्रकार की तरंगे उत्पन्न होती रहती हैं वह जो तरंगे होती हैं वह एक महान स्वाभाविक चेतना होती है। जो चेतना मानव के महान चित्त में विराजमान होती है। चित्त से ही उस महान आत्मा का विशेष सम्बन्ध होता है। मानो देखो, उससे ही यह तरंगे उत्पन्न हो करके इन्हीं तरंगों से संसार का परिचय किया जाता है इन्हीं तरंगों से कुदृष्टिपात किया जाता है इन्हीं तरंगों से बेटा ! मानो यौगिक परम्पराओं को जाना जाता है। इसी प्रकार इन्हीं तरंगों से मानव वायु मण्डल में भ्रमण करने वाली गति को प्राप्त हो सकता है। आज जब हम यह जानने लगते हैं कि जो मानव के नेत्रों से नाना प्रकार की ज्योति उत्पन्न होती है, इन्हीं ज्योतियों से माता का दिग्दर्शन किया जाता है उन्हीं आचार्यों का दिग्दर्शन किया जाता है, इन्हीं ज्योतियों के अन्तर ध्यान हो करके सूर्य इत्यादि चन्द्र लोकों का दिग्दर्शन कर लेते हैं। यदि उन तरंगों को योगी वहीं अपने मस्तिष्क में ही, अपने हृदय में ही ज्यों का त्यों स्थित कर देता है और उनमें शनैः शनैः अभ्यासी बन करके मानो देखो, उन तरंगों को जान सकता है तो उस महापुरूष को नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों के जानने में विशेष गति उत्पन्न हो जाती है।

इसी प्रकार बेटादेखो !, मानव के नेत्र मैं तो यह कहा करता हूँ कि प्रत्येक इन्द्रिय की एक ही चेतना नहीं नाना प्रकार की चेतना उत्पन्न होती हैं। नेत्रों से हमारे यहाँ प्रायः चौबीस प्रकार की तरंगों का प्रार्दुभाव हो जाता है। आज यह नहीं कि जितना मैं जानता हूँ उतना ही जगत है। जगत बहुत विशाल है क्योंकि यह महान परमात्मा का जगत है। यह ऐसा विशाल है कि इसमें मानव को प्रत्येक तरंगों पर अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। मुनिवरोंदेखो !, एक समय महर्षि भारद्वाज से महर्षि सोम केतु ऋषि महाराज ने कहा कि हे प्रभुआपने जितनी हमें गणना कराई है !, वाणी की परिक्रमा की क्या इतना ही यह जगत है? उन्होंने कहा कि यह मेरा ही कोई निर्णय नहीं है आगे महापुरूष आयेंगे मुझसे आगे और भी निर्णय कर सकते हैं मैं जितना जानता हूँ उतना

मैं निर्णय दे सकता हूँ। बेटाऋषियों का हृदय विशाल होता है !, निरभिमानी होता है। उनके हृदय में महानता होती है क्योंकि वह अपने को प्रभु को समर्पित कर देते हैं। प्रभु को समर्पित कौन करता है? जो प्रभु के मण्डल को जानने के लिए जिज्ञासु बना रहता है। वह जिज्ञासा में परणित रहता है, जब वह जिज्ञासा मुक्त हो जाता है तो परमात्मा निकट रह करके बेटा वह दोनों से दूरी हो जाता हैं। !

मेरे प्यारे यह जो पिपासा रहती ,जिज्ञासा बनी रहती है जानकारी के लिए !ऋषिवर ! जब तक बालक को उसकी ,माता उसी काल में प्रिय पुत्र को दुग्ध पान कराती है ,है पिपासा होती है, क्षुधा होती है क्षुधा समाप्त हो जाती है, तो माता उस प्यारे बालक को अपने हृदय से दूर कर देती है। इसी प्रकार मुनिवरोंदेखो !, मानव को जितनी पिपासा होती है, यह प्रकृति और चेतना उतना ही चेतनित करती रहती है यह तो द्यौ लोक का हृदय का घृत माना गया है कि उसमें विचारों की आहुति देते रहो। आहुति दे करके विचारों का जितना जगत बना लोगे उतनी तुम्हें जानकारी होती रहेगी अन्त में देखो, वह विचार कहाँ तक जा सकता है, इसको बेटा कोई माप नहीं सकता। ऐसा मुझे ! प्रायः स्मरण होता रहा है।

महर्षि भारद्वाज ने कहा है कि इसी प्रकार मानव की स्पर्श इन्द्रियां हैं इसी प्रकार मानव के श्रोत्र हैं, नाना प्रकार की तरंगों का जन्म होता रहता है। तरंगे उत्पन्न होती रहती हैं। ऋषि मुनियों ने कहा है कि हमारी जो यह श्रोत्र इन्द्रियां हैं इन श्रोत्र इन्द्रियों में जो , यन्त्र बना हुआ है जिसको सूर्यनित नाम का यन्त्र कहा जाता है, शब्दावली यन्त्र भी उसे कहा जाता है, सोधनी यन्त्र भी कहते हैं, रेणकेतु यन्त्र भी कहा जाता है, मानकेतु यन्त्र भी कहते हैं, सुभागनी यन्त्र भी कहा जाता है, अन्तांगनी यन्त्र भी उसको कहा जाता है। बेटा इसमें मैं अधिक विवेचना देना नही चाहता हूँ वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः ! यह है कि वह जो यन्त्र है उसमें लगभग एक क्षण समय में लगभग साठ अरब तरंगों को सहन कर सकता है। जब यदि साठ से इक्कसठ अरब तरगों का जन्म होने लगता है तो उस समय मानव कहता है मैं अब तुम्हारे शब्दों को ग्रहण नहीं कर , सकता, क्योंकि मेरे श्रोत्र इन्द्रियों में इतनी शक्ति नहीं रही। तो मेरे प्यारे इससे हमें !

सिद्ध होता है प्रतीत होता है कि हमारा प्रभु का बनाया हुआ जो यह प्राकृतिक यन्त्र है हमारे इस यन्त्र की भी सीमा होती है, परन्तु जब शब्दों पर विचार विनिमय किया जाता है, सात्विक शब्दों के ऊपर अनुसन्धान होता है, तो एक एक शब्द में से कई कई शब्दों का निकास होने लगता है। क्योंकि हमारे यहाँ नाना प्रकार की वह जो चित्त में से जो चेतना स्वाभाविक है, जिसका सम्बन्ध मानव के ब्रह्मरन्ध्र से होता हुआ, हृदय से होता हुआ मानव की श्रोत्र इन्द्रियों से विशेष सम्बन्ध रहता है, उन्हीं तरंगों का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से रहता हैजिसे हम द्यौ लोक भी कहा करत ,े हैं। अन्तरिक्ष से ऊपरला जो मण्डल है वह द्यौ मण्डल कहलाया गया है उससे विशेषकर सम्बन्ध रहता है। सम्बन्ध होने के नाते मानो देखो, वह चित्त कहलाया है। उनमें जो नाना प्रकार की चेतनाओं का जन्म होता रहता है जिसे बेखरी कहते हैंसयांगनी कहते हैं ,, सिरिगनी कहते हैं, रोमणी कहते हैं और भी नाना प्रकार की वेदों की शब्दावली का मुझे नाना प्रकार की शब्दवालियां स्मरण आती रहती है परन्तु उन तरंगों का जब जन्म होता रहता है। वह स्वाभाविक चेतना के साथ में उनका सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से होता हुआ नाना प्रकार की यह जो दिशाएं हैं इन दिशाओं से सम्बन्ध होता हुआ वह अंगगृत प्रभे सुतम ब्रह्मा अस्वेति रुद्रो भागाः भारद्वाज जी कहते हैं कि उन्हीं का सम्बन्ध भी द्यौ लोक से माना गया है। इसी प्रकार मैं यह स्थूल जगत की चर्चा कर रहा हूँ। आज मुझे स्थूल जगत में जाना नहीं था क्योंकि वेद का पठन पाठन जो मैंने किया था वह सूक्ष्म जगत और स्थूल जगत दोनों का समन्वय करने वाला ही था।

आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है कि हमें प्रत्येक इन्द्रियों के जो विषय हैं , इन्द्रियों के जो विषय हैं मानो यह जो स्वाभाविक चेतनाओं का जन्म होता है, नाना प्रकार की चेतनाओं को, बेटादेखो !यह मन जो महान सूक्ष्मतम है और मुनिवरों !, प्राण इसके समीप रहने वाला है, मन जो प्राण के अधीन रहने वाला है जब इनसे सब सामग्री जकड़ दिया जाता है इनको कटिबद्ध कर दिया जाता है, इन सबकी सामग्री बना करके बेटा तो मानव हृदय और ,इन सबकी सामग्री बन जाती है !मस्तिष्क दोनों का समन्वय हो जाता है। दोनों का जब समवन्य हो जाता है तो बेटा योगी को स्थूल !

जगत और सूक्ष्म जगत दोनों का ज्ञान हो जाता है। दोनों का ज्ञान हो करके मानो क्योंकि आत्मा तो इनसे सन्निधान मात्र से !दोनों को अपने में भासने लगता है बेटा ही अपना कार्यकर रही है। केवल सन्निधान मात्र से ही इस आत्मा को स्वीकार किया गया हैयह सब प्रकृति की रचना है ,, मानो यह मन की रचना है, प्राण की रचना है इसी रचना के आश्रित ही सर्वस्व जगत अपना कार्य कर रहा है।

मुनिवरों हमारे यहाँ योगियों ने इसी को घृत माना है। हमारे यहाँ !जो भौतिक यज्ञ होता है उस यज्ञ में यज्ञमान गो घृत की आहुति देता है। इसी प्रकार गो नाम इन्द्रियों का है, और इन्द्रियों के जो विषय हैं मानो इनकी जो चेतना है इन चेतनाओं को जब कटिबद्ध करके मानव मन रूपी कृत में रमण कर दिया जाता है, इनको तन्मय कर दिया जाता है, हृदय रूपी जो यज्ञशाला है जिसको द्यौ लोक माना है जब इसमें आहुति दी जाती है तो बेटा उसी को स्थूल जगत का हमारे यहाँ दर्शन कहा गया है। यही तो मन ! दर्शन है। इसी को आत्मदर्शन कहा गया है इसी को हमारे आचार्यों ने किसी ने आत्म दर्शन माना है, किसी ने ब्रह्मदर्शन माना है, किसी ने यौगिक दर्शन माना है, किसी ने बेटाद्यौ दर्शन माना है। परन्तु देखो !, जिस प्रकार हमारे हृदय, मस्तिष्क दोनों का समन्वय करने वाला जो घृत है वह जो अग्नि प्रदीप्त होती है, यह जो चेतनाओं में और भी जागरूकता होने लगती है जिससे बेटाहम सूक्ष्म जगत में ! चले जाते हैं। स्थूल से सूक्ष्म जगत में जो एक महान याग हो रहा है कैसा सुन्दर यज्ञ हो रहा है उसमें केवल आत्म स्वरूप मानव बन जाता है। उसमें आत्मा केवल सन्निधान मात्र ही दृष्टिपात आता हैउस समय योगी अपने में ही मग्न रहता है ,, बाह्य जगत में उसकी प्रवृत्ति उत्पन्न ही नहीं होती। प्रवृत्ति तो रहती है परन्तु उस प्रवृत्ति का विकास नहीं होता वह इतनी बलवती बन जाती है, उस महान सुगन्धि में, उन सूक्ष्म चेतनाओं में इतनी चेतनित हो जाती है कि वह जो तरंगे हैं, मानो जो जगत में आने वाली तरंगें उनका प्रार्दुभाव होना बहुत सूक्ष्म सा क्या न होने के तुल्य बन जाता है। बेटा !

मेरे प्यारे आज मैं यह क्या उच्चारण करने चला गया। आज हमारा यह कोई !ऋषिवर ! विषय नहीं था परन्तु आज का हमारा वेद का पाठ यह क्या कह रहा था। कि आज

हमें इस महान उज्ज्वलता को जानना चाहिए जिसने हमारा मानव दर्शन उज्ज्वलता को प्राप्त होता चला जाएं। हमारे यहाँ महर्षि भारद्वाज का साहित्य प्रायः स्मरण (पुस्तक से) आता रहता है। महर्षि भारद्वाज जहाँ भौतिक विज्ञान में इतने प्रकाण्ड थे, इतने महान थे कि नाना लोक लोकान्तरों में भौतिक परमाणुओं से जाना जानते थे वहाँ वह आत्मा की विवेचना भी, आत्मा का दर्शन भी उनके यहाँ एक विशालता को प्राप्त होता रहता था।

मेरे प्यारे यह जो पथ है यह इस प्रकार का पथ है जो संसार को ऊँचा !ऋषिवर ! बनाने वाला है, मानवीयतव को ऊँचे शिखर पर ले जाने वाला है, भौतिकवाद की निष्ठा को समाप्त करने वाला मार्ग। आज हमें इस मार्ग को पुनः अपनाना चाहिए। मेरे प्यारे ! महानन्द जी से मुझे यह प्रेरणाएं प्राप्त होती रहती हैं कि इन विषयों को पुनः से जागरूक करो, मैं यह कहा करता हूँ कि अपने प्यारे से कि आज इन वाक्यों के उच्चारण करने का समय नहीं है परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी बारम्बार !प्रेरणा देते रहते हैं, उन्हीं प्रेरणाओं के साथ में हमारा कुछ वाक्य प्रारम्भ हो जाता है। उन वाक्यों साथ में ही हमारा अग्निमय जीवन प्रारम्भ होने लगता है।

आज हमें उस द्यौ लोक वाली महान अग्नि को जानना चाहिए। उस चेतना को जानना चाहिए जिस चेतना को जानने के पश्चात् हम स्वयं चेतनित हो जाते हैं और हमारे जीवन में अन्धकार का जन्म नहीं होता, सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है। इसी को वेद का विचार कहते हैं, इसी को प्रकाश का विचार कहते हैं, इसी को हमारे यहाँ दर्शनां का विचार कहा जाता है। आज का इन वाक्यों को उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि आज हृदय और मस्तिष्क दोनों का मिलान करना हमारा कर्त्तव्य कहलाया गया है। मन और प्राण दोनों का जब मिलान कर दिया जाता है, दोनों का समन्वय कर लिया जाता है तो हृदय और मस्तिष्क दोनों का मिलान हो जाता है और इनमें सहस्त्रों सहस्त्रों प्रकार की तरंगों का जन्म हो जाता है।

अब हमारा यह आदेश समाप्त होने जा रहा है कल समय मिलेगा, तो शेष चर्चाऐं कल

होंगी। अब वेद का पाठ होगा इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त। (योग निकेतन ऋषिकेष)

२० 13 04 1971 पुष्प 15 लोक लोकान्तरो का योग

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ जो पाठय क्रम है, वह परम्परागतों से ही, विचित्र माना गया है हमारे यहाँ वेद मन्त्रों के उच्चारण करने के नाना प्रकार होते हैं परन्तु आज मैं उन प्रकारों का वर्णन करने नहीं आया, क्योंकि हमारे यहाँ वेद एक अनुपम प्रकाश को कहा गया है, जो मानव के अन्तःकरण की ज्योतियों को अथवा विचित्रता को जन्म देता है। अन्तःकरण में जो अन्तर्द्वन्द्व होता है, उसका स्पष्टीकरण प्रकाश में परिणित कर देता है। जब हम यह विचारने लगते हैं, कि जिस प्रकार सूर्य की रश्मियां, सूर्य की अनुपम धारा मानव के नेत्रों का देवता बन जाती है, इसी प्रकार वह नेत्रों का प्रकाश मानव के लिए प्रकाशमान बन करके संसार के व्यापार में संलग्न हो जाता है, इसी प्रकार हमारा जो वैदिक सूर्य है, वेद का जो प्रकाश है मानो अमूल्य है परम उसे कहा जाता है वह ऐसा सुन्दर प्रकाश है, कि वह मानव के अन्तःकरण में जो अन्तर्द्वन्द्व होता है, उसे समाप्त कर देता है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश के आने के पश्चात, मानव के नेत्र प्रकाशमान हो करके व्यापारित होने लगते हैं, इसी प्रकार जैसा वेद रूपी प्रकाश का जब उदय हो जाता है, वेद रूपी प्रकाश का जब भानु उदय हो जाता है, आदित्य उदय हो जाता है, उस समय बेटा मानव का जो ! अन्तःकरण है, उसमें मुनिवरोंजन्म जन्मान्तरों के संस्कारों की उपलब्धि ! होने लगती है, और वह जो नाना प्रकार के संस्कारों की उपलब्धि है वह मानव के अंकुर रूप में मानव के समीप आने लगते हैं। वह जो अन्तःकरण है जिसमें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार मानो एक समूह का नाम कृत माना गया है उसमें बेटा दिव्य ज्योतियों की जागरूकता ! होने लगती है।जब हम विचारने लगते हैं बेटाकि उसको हम ब्रह्म विचार कहते हैं !, उसी को हमारे यहाँ एक महान विचार कहा गया है वही तो एक विचार का विषय कहलाया गया है। जितना भी मानव का आध्यात्मिक विचार होता है, उसकी उपलब्धि

बेटावेद के द्वार से उत्पन्न हुआ करती है। मैंने बहुत प !ूर्व काल में अपने प्यारे ऋषि से कहा है, कि वेद पोथियों में बद्ध नहीं किया जाता, वेद तो मानव के अन्तःकरण की सुन्दर रश्मियों का नाम ही माना गया है।
एक समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था हे प्रभु यह जो वेदों की शब्दावलियों ! की धारायें हैं इसकी उपलब्धि कहाँ से होती है। उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक्य कहा था कि हमारा जो ब्रह्मरन्ध्र है मानो जिसको हम अनाहद कहते हैं, जब हृदय और मस्तिष्क दोनों का समन्वय होता है दोनों का मिलान हो जाता है मानो देखो, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों का जो इसका विषय है उसकी सामग्री बन करके मानो देखो, जब हृदय रूपी यज्ञशाला में आहुति देने के पश्चात् वह जो सामग्री है वह कई गुनी वनस्पतियों की धाराओं को लेकर के सातवें जन्म प्रतीत करने लगती है इसी प्रकार जब इन्द्रियों की सुन्दर सुन्दर आभाओं की धाराओं को हृदय में अन्तःकरण की आकृत धाराओं के साथ में जब हृदय में उसकी आहुति दी जाती है जो इन्द्रियों की सहस्रों सहस्रों प्रकार की धाराओं का जन्म होकर के उनका सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से होता है और ब्रह्मरन्ध्र में जो चक्र है उसमें गति आती है। जब उसमें दिव्यमान गति होती है तो सहस्रों सूर्य भी उसको प्रकाशमान करना चाहते हैं तो उसके समान वह प्रकाश नहीं हो पाता। वह जो ब्रह्मरन्ध्र की प्रकाशमयी ज्योति है, धारा है, जब उसका चक्र चलता है, नृत्य करने लगता है तो उसमें नाना प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न होने लगती हैं और उन ध्वनियों का समन्वय नाना प्रकार की सूक्ष्म धाराओं से होता है, इन नाड़ियों से होता है, इन नाड़ियों का सम्बन्ध नाना प्रकार के लोकान्तरों से होता है अथवा उसको हम द्यौ लोक से भी माना करते हैं। उसमें जो ध्वनियों हैं उसको हमारे यहाँ अनहद भी कहा जाता है। उन ध्वनियों का जब योगी जान लेता है, लेखनीबद्ध करता है, उसी ब्रह्मरन्ध्र की ध्वनि से व्याकरण की उत्पत्ति हुआ करती है।
मुझे स्मरण आता रहता है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो यह वाक्य बड़े गौरव के साथ स्मरण था, वह वाक्य मुझे आज तक स्मरण आता रहता है। हमारे यहाँ करोड़ों करोड़ो वर्षो की जो ऋषियों की वाणी होती है, जो ऋषियों के योग के विचार होते हैं वह आज

भी इस द्यौ लोक में रमण कर रहे हैं, उन विचारों को वह योगी अपने में धारण कर लेता है, वह योगी अपने उन विचारों को आकाशित कर लेता है जो सूक्ष्म शरीर है उसकी रश्मियों को अच्छी प्रकार जान लेता है।

आज मैं अधिक इस विचार में जाना नहीं चाहता हूँ। आज मैं वेदों के कुछ मन्त्रों को उच्चारण कर रहा था। बहुत पूर्व काल में मैंने कहा था कि वेद केवल पोथियों में बद्ध नहीं किया जाता। वेद तो इतना व्यज्ञप्क् शब्द है, वेद प्रकाश को कहते हैं जो मानव के अन्तःकरण का प्रकाश है, जो मानव के अन्तःकरण को पवित्र बना देता है, स्वच्छ बना देता है, निर्मल बना देता है। वह जो अनहद नाद बजता है वहाँ गायत्री और छन्दों का निर्माण होता है, उन्हीं गायत्री और छन्दों में रमण करने वाला बन जाता है।

गायत्री कहते हैं जो गाई जाती हो। जो ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा गाई जाती हो, मानो रश्मि का नाम गायत्री है जिस तेज के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र भी नृत्य करने लगता है। जिस प्रकार सूर्य भी नृत्य करने लगता है अपने आसन, जिस प्रकार नाना प्रकार के लोक लोकान्तर अपने आसन पर नृत्य करने लगते हैं इसी प्रकार वह जो महान आभा है, वह जो धारा है, उसी धारा का नाम हमारे यहाँ गायत्री कहा गया है जिसके प्रकाश में, जिसके प्रभाव से प्रत्येक लोक लोकान्तर अपने अपने आसन पर नृत्य कर रहा है। इसी प्रकार आज हमे विचार विनिमय करना है कि आज हम अपनी उस महान पवित्र धाराओं को जानने के लिए चल जाएं। जैसा हमारे यहाँ बाहरीय जगत है, बाहरीय यह शरीर है इसमें जो प्रत्येक इन्द्रिय का सम्बन्ध है वह मन के साथ होता है, मन का सम्बन्ध बुद्धि के द्वारा होता है, इन सबका सम्बन्ध मानव के हृदय से होता है और हृदय का सम्बन्ध मानव के मस्तिष्क से हुआ करता है, मस्तिष्क का सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से हुआ करता है और ब्रह्मरन्ध्र का जो सम्बन्ध है वह उस महान सर्वश भगवान के भूमण्डल से माना गया है।

आज इस विज्ञान पर जब हमारी टिप्पणियां प्रारम्भ होने लगती हैं तो हमें प्रतीत होने लगता है कि आज हम वास्तव में उस महान प्रभु के हृदय में विराजमान हैं। जैसे मानव का हृदय है इसी प्रकार सर्वत्र भूमण्डल, सर्वश ब्रह्माण्ड जिसे हम द्यौ लोक भी कहते हैं जिसमें नाना प्रकार की विद्युत रश्मियां रमण कर रही हैं, मानो तेजों में

ज्योतियां रमण कर रही हैं, तेजों में वाणी रमण कर रही हैं, अग्नि का स्वरूप धारण करके वाणी का नृत्य हो रहा है। वही द्यौ लोक परमपिता परमात्मा का हृदय माना गया है, उस हृदय का और मानवीय हृदय, दोनों का ही समवन्य करता है, इसी को हमारे यहाँ योग कहा जाता है। आज हमें परमात्मा के हृदय का मिलान करना है। इसी को हमारे यहाँ यौगिक परम्परा में विचित्र ध्वनि कहा गया है, विचित्र रश्मियां कहा गया है। आज हम उस परमपिता परमात्मा का गुणगान गाने वाले बनें क्योंकि जब हम अपने को परमपिता परमात्मा को समर्पित कर देते हैं, अपने को यह जान लेते हैं कि प्रभु के विज्ञान के आगे हमारा क्या विचान है। आज हम सूर्य मण्डल को भी जान लेते हैं चंद्र मण्डल को भी जान लेते हैं और भी नाना लोक लोकांतरों को जान लेते हैं। यह जो हमारा शरीर है इसमें जो इन्द्रियां कार्य कर रही हैं इनकी ज्योतियों को भी जान लेते हैं परन्तु इस स्थूल शरीर को त्यागने के पश्चात् जब हृदय जो पेच मीन तन्मात्राओं का बना हुआ कृत माना गया है, इससे जब सूक्ष्म शरीर में जान लेते हैं, इसकी द्यौ ज्योतियों में रमण करने वाले बन जाते हैं, दिव्य आत्माओं से जब हमारा मिलान होने लगता है, सतसंग होता है, विचार विनिमय होता है मानो देखो, द्यौ लोकों में जाने के पश्चात् द्यौ लोक का जगत भिन्न होता है जैसे यह ससांर है, यह ब्रह्मण्ड है, यह पृथ्वी मण्डल है, स्थूल शरीरों का यह जगत माना गया है इसी प्रकार दिव्य आत्माओं का यह भूमण्डल जगत माना गया है, वह भी एक संसार है, द्यौ लो को भी संसार माना गया है जिसको हमारे यहाँ जीवन मुक्त होने के पश्चात् यह स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीरों की गतियों को जानने वाला ही प्राणी दिव्य पुरूष कहलाया गया है। उस दिव्य पुरूष का जो समन्वय है वह भूमण्डल से हो जाता है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने कुछ ऐसा माना है, कि कुछ दिव्य आत्माएं ऐसी होती हैं जिसमें अग्ने तत्त्वे प्रधानता में परणित हो जाता है, उसमें ममता अधिक नहीं होती केवल अग्निमय पुरूष कहलाया गया है, उसको दिव्य पुरूष कहा जाता है। वही जो दिव्य पुरूष है वह आत्मा अन्तरिक्ष में रमण करते वाली है। द्यौ लोक में जिस प्रकार शब्द भ्रमण करते हैं। शब्द भी तो एक अणु माना गया है। परमाणुओं के समूह का नाम ही तो शब्द है यह द्यौ लोक में रमण करने वाला

है जब वह द्यौ लोक में रमण कर रहा है वह किसी भी काल में समाप्त नहीं होता। प्रकृति का जितना वाद है, जितना प्रकृति वाद है, इसको कितना शुद्ध बनाया जाता है उतना ही वाणी के द्वारा शुद्ध अन्तःकरण के द्वारा, मानवियत्व के द्वारा जितना शुद्ध बनाया जा सकता है, जितना अशुद्ध कर दिया जाता है उतना ही अशुद्ध हो जाता है। एक समय बेटा भृंगि मुनि महाराज ने महात्मा सांडल्य जी से कहा था कि मैं यह ! जानना चाहता हूँ कि राष्ट्र में, समाज में यह रक्त भरी कांति क्यों आ जाती है। उस समय ऋषि ने कहा, हे भ्रंगि जी इसलिए आ जाती है क्योंकि मानव समाज की वाणी ! भ्रष्ट हो जाती है। जब वाणी में भ्रष्टपन आ जाता है तो वह हृदय मे आ जाता है। जब समाज के हृदय अशुद्धवाद आ जाता है तो वही परमाणु वायुमडल में परणित हो जाते हैं उन्हीं परमाणुओं के द्वारा मानव का अन्तःकरण बन जाता है। जब अशुद्ध परमाणुवाद प्रबल हो जाता है, सत परमाणु सूक्ष्म हो जाता है उस समय समाज में, जगत में रक्त भरी क्रान्ति का प्रहार हो जाता है ऐसा माना गया है। मैं इसका अच्छी प्रकार विश्लेषण करने नहीं जा रहा हूँ। जब इन्द्रियों का स्वार्थ संसार में इतना बलवती हो जाता है कि इन्द्रियों के स्वादन में ही मानव रमण करता रहता है, वाणी अशुद्ध हो या पवित्र हो इसका भी ध्यान नहीं होता, उस काल में जगत में रक्त भरी क्रान्ति आ जाती है।

मैं यह वाक्य उच्चारण कर रहा था कि वह जो दिव्य आत्माएं हैं उनसे अपना सम्बन्ध करना है। मेरे प्यारे तुम्हें स्मरण होगा कि हमारा जो परम्परा का !महानन्द जी ! अभ्यास माना गया है, जन्म जन्मान्तरों के योगियों के अभ्यास के कारण ही मानव दिव्य आत्माओं से अपना समन्वय कर लेता है और उसके विचार, उसकी महान धारा, उसके मन की धारा, वाणी की धारा, और बुद्धि की धारा और अन्तः करण की धारा इतनी पवित्र हो जाती है। इन्हीं धराओं में तीनों शरीर रमण करने वाले होते हैं। तीनों शरीरों की रश्मियां होती हैं ऐसा हमारे यहाँ माना गया है। मन की ही लगभग एक सौ छत्तीस प्रकार की धारा मन की होती है। यदि हम एक धारा को जानते हे तो दूसरी धारा उपलब्ध हो जाती है और दूसरी धारा को जानते हैं तो तीसरी धारा उपलब्ध हो जाती है। देखों छत्तीस प्रकार की धारा तो स्थूल की मानी गई है और लगभग बहतर

धारा सूक्ष्म शरीर की मानी गई है। इसी प्रकार धारा तो बहुत कुछ है यह तो केवल में सूक्ष्म वर्णन कर रहा हूँ। इसी प्रकार बुद्धि की एक सौ चौरासी प्रकार की धारा होती हैं। मानो कुछ धारा चौरासी धारा स्थूल शरीर से स्वच्छ अन्तःकरण से सम्बन्धित होती है और मुनिवरोंदेखो !, निन्यानवें धारा इस प्रकार की होती हैं जो सूक्ष्म शरीर से जिसका सम्बन्ध होता है और धारा लिंग शरीर की मानी गई है परन्तु इसी प्रकार नेत्रों की जो दिव्य ज्योति है उसकी तीन सौ बहतर प्रकार की धारायें मानी गई हैं। कुछ धारायें ऐसी हैं जो स्थूल शरीर से सम्बन्धित हैं, मानो देखो, ऋषि मुनियों ने कुछ धारा इस प्रकार की हैं जो सूक्ष्म शरीर वाली हैं, शेष धारा लिंग शरीर की मानी गई है। इसी प्रकार श्रोत्रों की जो धारा है वह लगभग छह सौ चौरासी प्रकार की मानी गई हैं। यह सब धारायें मन और प्राण दोनों से सम्बन्धित रहने वाली हैं क्योंकि मन और प्राण दोनों का जब सम्बन्ध हो जाता है तो मुनिवरोंदेखो !, जब इन धाराओं का मन और प्राण का जब मिलान हो जाता है तो एक लिंगमयी ज्योति बनकर के मोक्ष के पद को प्राप्त हो जाती है। उसे बेटा मोक्ष कहा करते हैं। जब तक मन और प्राण दोनों का ! समन्वय नहीं होता। इन धाराओं को जागरूक कौन से घृत से करोगे? जैसा मैंने कल के वाक्यों में कहा है कि जैसे यज्ञशाला में गो घृत जो वनस्पति का पान करने वली गो के दुग्ध से बनता है वह घृत है अग्नि को प्रदीप्त करता है वह ऐसी उज्ज्वल बन जाती है, सहस्त्रों प्रकार की अग्नि की धाराओं का जन्म हो जाता है। इसी प्रकार हमारी इन्द्रियों का जो विषय इन्द्रियों की जो रश्मियां हैं। जिसे हम चित्त कहा करते हैं, चित्त में जो स्वाभाविक रश्मियां मानी गई हैं मानो देखो, उन रश्मियों को कौन से घृत का प्रदीप्त करना है? वह घृत कौन सा है? वह कौन सी आहुति है? मुनिवरोंदेखो !, इसमें भृंगी ऋषि और भी नाना ऋषियों की टिप्पणियां चला करती हैं। ऐसा हमारे यहाँ माना है कि इसमें कुछ विचार का घृत होता है, कुछ बेटादेखो !, नामांकुरों का घृत होता है कुछ उसका पात बनाया जाता है। जैसे नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करके सोम रस बनाता है इसी प्रकार जो सोम रस बनाने वाला योगी होता है वह सोम रस किसका बनाता है प्राणों का बेटादेखो !, दस प्राणों का सोम रस बना करके, मन की धारा हैं

उनको जब प्राण में मिश्रित कर देता है तो वह ऐसा सुन्दर घृत बन जाता है कि इन्द्रियों को जो सामग्री विषय है उसको दीप्तयमान बना करके वह महापुरूष दिव्य लोकों में रमण करता हुआ परमात्मा के महान पद को प्राप्त हो जाता है।
आज मैं इस वाक्य को और अधिक गम्भीर नहीं बनाना चाहता हूँ, क्योंकि और भी गम्भीर बनाया जा सकता है इन वाक्यों को मैं केवल इतना ही उच्चारण करने आया हूँ कि हम परमपिता परमात्मा की छत्र छाया में रहने वाले बनें और उस घृत को जानने वाले बनें जो घृत महान परमात्मा के सन्निधान मात्र से उत्पन्न होता है। वह जो घृत है वह प्रकृति को भी दीप्तयमान करता है। प्रकृति की जो स्वाभाविक गुण होता है प्रकृति की जो चेतना होती है उस चेतना को भी चेतनित करने वाला जो घृत होता है वही मानव के जीवन को प्रकाशवान बनाता है, वही मानव को दीप्तयमान करता है, वही दिव्य लोकों में रमण करने वाला महापुरूष कहलाता है। इसी प्रकार इन धाराओं को जानने वाला जो महापुरूष होता है वह सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर और जिसे हमारे यहाँ स्थूल शरीर भी कहा जाता है इन तीनों शरीरों में (पुस्तक से) जो नृत्य हो रहा है, वह जो नृत्य हुआ जो प्रकाश है जिसके कारण में नृत्य करता है वह दिव्य लोकों में क्या जितने नाना सूर्य प्रभु के मण्डल में हैं, नाना आरुणि हैं, नाना बृहस्पति हैं उन सब में योगी का आवागमन हो जाता है, यातायात बन जाता है। जिस प्रकार भौतिक वैज्ञानिक परमाणुओं को यन्त्रों को जानता हुआ नाना लोकों में यात्र करने वाला बन जाता है इसी प्रकार योगी का दिव्य शरीर होता है, उसमें सर्वस्व भूमण्डल के नाना लोक लोकान्तर ऐसे प्रतीत होने लगते हैं जैसे आज तू अमुक में विराजमान हो।
मैं वाक्य उच्चारण करता हुआ दूर न चला जाऊं। वाक्य उच्चारण करना क्या है कि आज हम लोक लोकान्तरों की विवेचना करने जा रहे हैं। मैं लोक लोकान्तरों की चर्चा करने जा रहा था कि सूर्य मण्डल में कैसा योग है, मंगल में किस प्रकार का है, ध्रुव में किस प्रकार का है और जेठाय नक्षत्र में किस प्रकार का है। अचंग और मचंग लोकों में किस प्रकार है। आसस्वती लोकों में किस प्रकार का है, वशिष्ठ, अरूणगति, सप्तऋषि मण्डल, मानकेतु मण्डल, आध्रुव मण्डल नाना प्रकार के मण्डलों में किस प्रकार के योग की

परम्परा मानी जाती है यह एक हमारा विषय है।

वास्तव में तो यह माना जाता है जो आज मैंने तुम्हें विषय वर्णन किया कि दिव्य आत्माओं के लिए कोई लोक ऐसा नहीं रहता जिस लोक में वह न जा सकें परन्तु उसके पश्चात् भी साधारण वाक्य यह कि सूर्य मण्डल में विचारों का यज्ञ होता है, विचारक यज्ञ होता है, विचार के साथ साथ अन्तर्ध्यान हो जाते हैं क्योंकि वह आत्मा सूर्य मण्डल में जाती हैं जो इस पृथ्वी मण्डल पर कुछ तपी हुई आत्मा होती है। इनका सूर्य मण्डल में प्रवेश होता है, पार्थिक तत्त्व से उनका विशेष सम्बन्ध नहीं होता। उनका अन्तःकरण अग्नि से तपा हुआ होता है, उसमें अग्नि तत्त्व वाले शरीरों की प्रधानता प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार जैसे मंगल का मण्डल है उसका प्राणी इसी प्रकार का योगाभ्यास, इसी प्रकार का विज्ञान, इसी प्रकार का राष्ट्र प्रायः वहाँ माना जाता है। चन्द्र मण्डल सौम्य प्रकृति वाला प्राणी अधिक रहता है मानो वहाँ सौम्य विचार होता है। वहाँ भी योग प्रभा कृत्त होता रहता है, उसमें भी ब्रह्मरन्ध्रों में नृत्य की प्रतिभा होती है।

आज मैं तुम्हें एक दिव्य वाक्य प्रकट करा रहा हूँ। मुझे स्मरण आता रहता है, वर्तमान के समय में जैसे मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे स्मरण कराया है कि सौममिती नाम ! का एक वैज्ञानिक इस पृथ्वी मण्डल पर कितने समय परिक्रमा कर गया है। एक रिधीकेतु नाम का आध्यात्मिक वेत्ता जिसकी आध्यात्मिक विज्ञान में बहुत ही प्रगति मानी गई है ऐसा मुझे भान आ रहा है, वायु मण्डल का परमाणु मुझे बाध्य कर रहा है इन वाक्यों को उच्चारण करने के लिए कि उस आध्यात्मिक वेत्ता की आत्मा की गति विशाल है, उसकी आत्मा इस पृथ्वी मण्डल से भ्रमण करके अपने आसन को परणित हो जाती है। इसी प्रकार सूर्य मण्डल में विचार विनिमय होता रहता है जैसे दिव्य ज्योतियों का विचार और दिव्य ज्योतियों का दिग्दर्शन इस पृथ्वी मण्डल पर होता रहता है इसी प्रकार नाना प्रकार के मण्डलों में होता रहता है जहाँ अग्ने तत्त्व प्रधान होते हैं, जल तत्त्व प्रधान होते हैं जैसे इस पृथ्वी मण्डल पर पार्थिव तत्त्व प्रधान माना गया है वहाँ गो घृत भी इसी प्रकार का होता है। जहाँ अग्ने लोक हैं उनमें तो विचारों से यज्ञ होता है, वहाँ विचारों को ही घृत माना गया है और जिसमें पार्थिव तत्त्व प्रधान हो वहाँ पशु

इत्यादि का उसी प्रकार का घृत माना गया है कि देखो, उनमें किसी में गो घृत से यज्ञ होता है, किसी में विचारों का यज्ञ होता है, किसी में प्राग जलों से यज्ञ होता है, इसी प्रकार एक दूसरे लोक से भी मानव का सम्बन्ध रहता है।

बेटा !आज तुम्हें कई समय से यौगिक वाक्यों में ले जाता चला जा रहा है। बेटा ! यह हमारा लाखों वर्षों का अनुभव रहा है। लाखों वर्षों से इस पर बड़ा अनुसंधान करते रहे हैं। आज तो अपने आपत्तिकाल के कारण कुछ नहींकहा जाता है न इस की परिस्थिति को जान पाते हैं परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि न उच्चारण करने से कुछ करना बहुत ही सुन्दर है। वह समय कितना भव्य और महान था जिस समय में मध्य रात्रि होती उस समय अपने अन्तःकरण के प्रकाश से साधारण अक्षरों का बोधिक किया जाता था। मुझे स्मरण आता रहा है जिस योगी के दिव्य चक्षु हो जाते हैं उनके लिए अक्षर रात्रि में भी निकट आ जाते हैं, उनको आभास होता है इस प्रकार का। इसी प्रकार आज मैं यह वर्णन करने जा रहा हूँ कि मानव का जो अन्तःकरण होता है उसी से सन्निधान मात्र से आत्मा के तीन प्रकार के स्वरूप माने गएं हैं। यह मन की एक पवित्र धारा के ही तीन प्रकार के स्वरूप माने गएं हैं।

यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब मन और प्राण दोनों का समन्वय हो जाता है उस समय मन और प्राण दोनों को पृथक पृथक उच्चारण किया जाता है या और कुछ उच्चारण किया जाता है। गुण से गुणी कदापि भी पृथक नहीं होता है सन्निधान मात्र से ही मन को चेतनित किया जाता है मानो प्राणों को विभाजित किया जाता है, सन्निधान मात्र से ही यह प्रकृति का एक महान चक्र चल रहा है। वह जो सन्निधान है जिसे हम आत्मा कहते हैं, जिसको अणु भी माना है, किसी ने उसको कृत्त अभ्रष्ट माना है परन्तु मैं इस सम्बन्ध में जाना नहीं चाहता हूँ न हमारा यह विचार रहा है। हमारे यहाँ वायु मुनि महाराज से यह प्रश्न किया गया कि महाराज आत्मा को अणु माना गया है या ! विभु माना है कि यह जो आत्मा है यह अणु के स्वरूप में माना जा सकता है इसका प्रकृति से सन्निधान होने के नाते ही तीनों प्रकार के शरीरों की जो दिव्य ज्योति है उसमें एक जागरूकता हो जाती है उनका प्रादुर्भाव इस हृदय से ही माना है और हृदय में ही

उस आत्मा का सन्निधान होता रहता है। सन्निधान मात्र से ही हृदय का चक्र चला करता है ऐसा ऋषि मुनियों ने माना है।

मेरे प्यारे महानन्द जी कहा करते हैं कि इस सम्बन्ध में आपका क्या विचार रहता है। ! मैं तो यह कहा करता हूँ कि जो मानव यह जान लेता है कि यह जो हृदय है? इसकी जो गति है वह अन्तरिक्ष में भी जा सकती है। ऐसा भी माना है कि जिस हृदय से दिव्य आत्मा आपस में अपना समन्वय करती हैं, आपस में उनका सत्संग होता है। उसको दिव्य हृदय कहा जाता है परन्तु है वह भी मन और प्राण का मण्डल मानो देखो, सूक्ष्म जो इन्द्रियों का स्वाभविक चेतना है उस चेतना का सम्बन्ध दिव्य चेतना से होता हुआ उन धाराओं में दिव्य आत्मा कटिबध हो करके, वही एक आसन स्थित करके मानो अपना सतसंग, अपना ब्रह्म विचार, आत्मविचार, सर्वज्ञ किया करते हैं। मेरे प्यारे ! पाखण्डम् ब्रह्मे !महानन्द जी ने प्रायः यह कहा है कि यह संसार आज मुझे प्रभो लोकम् प्रभा अस्ति सुप्रजा आज के समाज में इस प्रकार की गति होती रहती है, नृत्य होता रहता है। मैं अपने प्यारे ऋषि से कहा करता हूँ कि संसार में जब हृदय की गतियों को नहीं जानते, हृदय में देखो, एक हजार पांच सौ बावन तरंगों का जन्म होता है। वह जो हृदय में जन्म होता है उसमें लगभग प्रकार की योग तरंगों का जन्म 84 होता है जिससे साधक योग की प्रणालियों में जा करके उन हृदय की 1, तरंगों 552 72 को जानने वाला बनता है। वह जो तरंगें हैं उनमें से एक एक तरंग में से, 72 धाराओं का जन्म होता है उन धाराओं का सम्बन्ध दिव्य शरीरों से होता है उन्हीं धाराओं के समूह का नाम दिव्य शरीर माना गया है।

यह जो योग का विषय है यह एक भयंकर वन है उन धाराओं में सतोगुणी धारायें मानो लोक लोकान्तरिक धारायें, विमुख धारायें, कितनी ही प्रकार की धारायें होती हैं। उनकी कितनी मन की धारायें हैं कितनी प्राण की धारायें हैं। ब्रह्म लोक् प्रभा अस्ति सुप्रजा ! लोक चम् ब्रह्म कृति रू असवान्ति वाणी उन्होंने कहा है कि अग्नि में भी लगभग 1, तरंगों का जन्म होता है इसी प्रकार इतनी तरंगें वाणी में होती हैं और एक 552 72 एक तरंग में से, 72वीं तरंग होती तरंगों का जन्म होता है वह जो वाणी की 72

है वह वाणी का एक वैश्य रूप होता है जहाँ उस वाणी से दिव्य आत्मा मिलान करती है।

वाणी उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि आज हम इस योगी की प्रक्रिया को अच्छी प्रकार जानने वाले बनें क्योंकि परमपिता परमात्मा का जो विज्ञान है वह कितना महान है। सन्निधान मात्र से ही इस प्रकार का विज्ञान है कि मानव उसमें चकित रहता है। जब धाराओं को वर्णन करने लगते हैं तो साधारण प्राणी उनको पाखण्ड ही कह देते हैं क्योंकि उनका मस्तिष्क वहाँ तक पहुंच नहीं पाता। अपने हृदय स्थल की, मस्तिष्क की, मन की रश्मियों को जब तक नहीं जाना तो वह कैसे उच्चारण कर दे कि वास्तव में यह यथार्थ है क्योंकि अपनी कुछ वार्त्ताओं को प्रकट करने वाले प्राणी इस प्रकार की वार्त्ताओं को एकत्रित कर लेते हैं जिससे साधारण समाज में उसका नृत्य होता रहता है। जब उज्ज्वल पुरूषों में जाते हैं, महान पुरूषों में जाते हैं, दिव्य आत्माओं में जाते हैं तो वहाँ यह प्रतीत होता है कि वेद क्या है, समाज क्या है, दिव्य जगत क्या है और मोक्ष किसे कहा जाता है।

मोक्ष को वही प्राणी पहुंच सकता है जो नाना प्रकार के पञ्च महाभूत, पञ्च तत्त्व जो होते हैं इनमें जो तरंगों का जन्म होता है इन तरंगों को अच्छी प्रकार जान लेता है कि इतनी तरंगे अपने में अपृत्य अग्नि में होती है, इतनी वायु में होती हैं, इसी प्रकार कृतों सन्निधान होने लगता है उनका दिव्य स्वरूप जो है वह दिव्य आत्मा अच्छी प्रकार जान लेते हैं। इस सम्बन्ध में नाना प्रकार के प्रश्न उपलब्ध होने लगते हैं परन्तु मैं प्रश्नों का उत्तर देने नहीं आया हूँ केवल वाक्य उच्चारण करने आया हूँ कि आज हम अपने इस महान पवित्र धारा को जानने वाले बनें जहाँ मानव दिव्य आत्माओं के सतसंग करता है, दिव्य आत्माओं से अपनी शंकाओं का निवारण करने लगता है वहाँ वाणी का एक सूक्ष्म नृत्य होता है उसको दिव्य वाणी कहते हैं उसी दिव्य वाणी का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से होता है लिंग शरीर से होता है और जहाँ इन सब तत्त्वों की तरंगे होती हैं जो मानव देखो, दिव्य आत्माओं से भी सम्बन्ध होता है उनका जब निग्रह हो करके मन और प्राण दोनों की एकाग्रहता हो जाती है। बेटाअणु की दो धाराओं का ज !ब मिलान हो जाता

है उस समय यह अणु जिसे आत्मा कहते हैं यह परमपिता परमात्मा के आनन्द में आनन्दित हो जाती है जिसे मोक्ष कहा जाता है।

मेरे प्यारे आज का हमारा यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। आज के !ऋषिवर ! वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय है कि हम परमपिता परमात्ामा की पवित्र धारा को जानने का प्रयास करते रहें। इन्द्रियों का जो विषय होता है इसको जब हृदय में एकत्रित किया जाता है और उसमें ब्रह्मरन्ध्र का चक्र चलता है जिसको अनहाद कहते हैं उस अनहाद की जो ध्वनियां होती हैं उन ध्वनियों को जानने वाला जो पुरूष होता है वह व्याकरण की उत्पत्ति को जान लेता है। शब्दों की जो धारायें होती हैं वह भी मानव की रश्मियों से होती हैं। आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। अब मुझे समय मिलेगा शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। योग)निकेतन ऋषिकेष(

२१ 23 08 1971 पुष्प 15 राम नगर तहसील आंवला जिला बरेली का का इतिहास

देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन किया। हमारे यहाँ जो पठन पाठन का कर्म है वह परम्परागतों से ही, विचित्र माना गया है क्योंकि उस पठन पाठन के उत्तम कर्म में उस परमपिता परमात्मा जो आनन्दमयी स्रोतमयी है, रचनामयी है उसका प्रायः वर्णन आता रहता है क्योंकि वेद उसी को कहते हैं जहाँ प्रभु के ज्ञान और विज्ञान की आभा का हमें दीर्घ दर्शन होता है। जब हम सर्वत्र जगत विज्ञानमयी दृष्टिपात आने लगता है क्योंकि एक एक कण उसके विज्ञान से पिरोया हुआ है। जिस प्रकार मनके आ जाते हैं उस समय मनके और धागे दोनों का समन्वय होने का नाम ही माला कहलाया जाता है। इसी प्रकार यह जो सर्वत्र जगत है उस परमपिता परमात्मा के ऋत और सत में पिरोया हुआ होने के नाते एक सृष्टि कहलाई जाती है। जब हम वेदों का पठन पाठन करते है तो प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण होता है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने इस सम्बन्ध में नाना टिप्पणियां की हैं

वेद का जब हम उच्चारण करते हैं तो ओ३म् का उच्चारण प्रायः प्रत्येक ऋचा के साथ में आता है एक मन्त्र आता है ओ३म् सूर्ये सम प्रवः ओ३म् रुद्रभागा इन्द्रश्चम मेघः प्रवस्ति सुप्रय तेजा हमारे यहाँ ओ३म् का उच्चारण पूर्व आता है इसका मूल कारण क्या है? आज से बहुत पूर्व काल में मैंने अपने पूज्यपाद गुरूदेव ने मुझे स्मरण कराते हुए कहा, कि हे वत्स यह जो ओ३म् है यह ओ३म् रूपी धागा है जिस प्रकार मनके में धागा ! होता है इसी प्रकार यह जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड है, लोक लोकान्तर है, प्रकृति का एक एक जो कण कण है परमाणु मात्र है वह ओ३म् रूपी धागे से पिरोया हुआ है यह जो सर्वत्र जगत है चेतना से पिरोया हुआ है जैसे माला और मनका एक ही सूत्र में पिरोया हुआ होता है। हास्य महर्षि भुंजु मुनि !आचार्य ने बहुत सुन्दर कहाँ एक समय बेटा ..... महाराज महात्मा दीधिची के आश्रम में प्रविष्ट हुए महात्मा ददीचि से महर्षि भुंजु ने एक वाक्य कहा कि यह जो उष्णा है यह किसके गर्भ में ओत प्रोत रहती है। महात्मा ददीचि ने कहा कि हे ऋषिवर यह जो उष्णा है यही तो उस प्रकृति को एक सूत्र में लाती है, परमाणु मात्र में जो गति आ रही है वह गति उष्णाता से आ रही है यही उष्णाता मानव का जीवन है, सूर्य मण्डल का जीवन है। जब मुझे यह स्मरण आता है कि मंगल मण्डल का जो प्राणी है वह पार्थिव तत्त्व वाला कहलाता है। वहाँ हमारे पूर्व ऋषि मुनियों का आवागमन भी होता रहता है। मैं इस सम्बन्ध में विज्ञान के क्षेत्र में नहीं ले जाना चाहता हूँ। वाक्य क्या है बेटा कि जो यह !ओ३म् रूपी धागा है यह संसार में ओत प्रोत है वेदों में जो ज्ञान और विज्ञान आता है वह उस सूत्र में पिरोया हुआ होता ! प्रकृति कदापि गतिमान नहीं हो सकती !है यदि वह धागा सूत्र नहीं होता तो बेटा प्रकृति जो हमें गतिमान दृष्टिपात आ रही है। यह उसी सूत्र के कारण है वेदों में ज्ञान आता है ज्ञान की आभा बेटा अभी तक रहती है जिस काल तक धागे में पिरोई हुई ! होने के नाते ही माला कहलाई जाती है इसी प्रकार वेदों का ज्ञान विज्ञान उसी चेतना में पिरोया हुआ है। यदि वह सूत्र में नहीं रहेगा तो माला के मनकों का भी अपना कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। आज हमें उस वेदी पर जाना है जिस वेदी पर जाने के पश्चात् हमारे जीवन में एक महानता का दिव्यदर्शन होता है। मेरे प्यारे महानन्द जी !

ने मुझे कई काल में प्रकट कराते हुए कहा है कि आज का मानव तो चन्द्रमा पर विश्राम कर रहा है। वहाँ उपग्रह जा रहे हैं, यान जा रहे हैं और आप केवल आत्मा और परमात्मा और मानवता की चर्चा प्रकट करते रहते हैं। हास्य.....
मैंने अपने प्यारे महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि बेटा यह संसार ! चन्द्रयान पर जाने से कदापि ऊँचा नहीं बना करता। द्वापर के काल में महाराज भीम और उनके पुत्र्र घटोत्कच्छ दोनों की चन्द्रशालायें होती थी। जब वो शालाओं में विराजमान हो करके निर्माण करते थे तो चन्द्रयान का निर्माण किया और चद्रमा से उपरले भाग में भ्रमण कर रहे हैं। यदि आज का मानव जब चन्द्रयान से उर्ध्वागति को पहुंचेगा उस समय उन्हें वह यान प्राप्त हो सकते हैं। वह यान कितने विशाल हैं कितनी उर्ध्वागति है उनकी एक समय व्यास मुनि आश्रम में महाराजा घटोत्कच्छ विराजमान थे और वह उनसे विनय कर रहे थे हे भगवन मेरा विज्ञान विशालता को प्राप्त हो रहा ! हो और चन्द्रमा से ऊँचे हमारे उपग्रह पहुंच चुके हैं परन्तु आप केवल वेदान्त की चर्चा प्रकट करते रहते हैं, एकोमसीह की चर्चा प्रकट करते रहते हैं, तत्त्वे मसिह की चर्चा प्रकट करते रहते हैं। व्यास मुनि ने कहा हे पुत्र यह जो हमारा वेदान्त दर्शन है तुम ! यह जानते हो कि यह चद्रमा तक की वार्त्ता को नहीं जानता? यह तुम्हारे मन में विश्वास है? परन्तु यह वहाँ तक मानव को पहुंचाता है वहाँ तक के यानों का निर्माण करता है जहाँ यह नाना लोक लोकान्तरों का निर्माण होता है उस निर्माणवेत्ता की वार्त्ता का स्पष्टीकरण करता है। घटोत्कच्छ आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने कहा प्रभु यह कैसे हो ! सकता है वेदान्त में ऐसा क्यों प्रकट किया? उन्होंने कहा वेदान्त कहते हैं वेदों के रस को वेदों के रस का नाम ही वेदान्त कहा जाता है जिस प्रकार अन्तरिक्ष के रस का मन्थन किया जाता है जिस प्रकार नाना प्रकार की वनस्पतियों के रसों को धारण करने वाला गो नाम का पशु होता हैं हमारे यहाँ गो रस कहा जाता है। तुम वैज्ञानिक हो गो नाम पृथ्वी का है इसका जो रस है इनका जो मन्थन करने के पश्चात् जब पृथ्वी को वैज्ञानिक मन्थन करता है तो खनिज पदार्थ और खाद्य पदार्थों को उत्पन्न करता हे वही तो इस गो रूपी पृथ्वी का मधुमेह कहलाया जाता हैं उसी को हमारे यहाँ घृत कहा

जाता है। इसी प्रकार गो नाम का पशु नाना प्रकार के पदार्थों को, वनस्पतियों को पान करके गो रस देती है। यज्ञमान यज्ञ करता है। मेरी प्यारी माता अपने पुत्र को उसी गो रस से पनपा रही है। मुनिवरोंवह गो रस कहाँ से आता है !? उसका सम्बन्ध अग्नि से है उसका सम्बन्ध जल से है, वायु से है, अन्तरिक्ष से है महतत्व से लेकर द्यौ मण्डल तक उसका सम्बन्ध होता है इसी प्रकार यह जो वेदान्त है यह वेदों का मन्थन किया हुआ रस है और यह कहाँ ले जाता है मानव को जो इसके अनुसार चलता है। तुम चन्द्रयान बना गएं हो चन्द्रयान से ऊँचे मंगलयान बना गएं हो यहाँ ध्रुवयान भी बना सकते हो परन्तु देखो, उस प्रभु के द्वार जाने वाला तुमने कोई यन्त्र का निर्माण अभी तक नहीं किया। मेरे प्यारे हमें प्रभु के द्वार पर जाने के लिए वह जो महान वैज्ञानिक ! है जिसका विज्ञान नितान्त है उस महान वैज्ञानिक है जिसका विज्ञान नितान्त है महान है उस महान वैज्ञानिक के द्वारा जाने का हमारे द्वारा कोई यन्त्र नहीं है। वह केवल यन्त्र अगर कोई है तो उसकी वाणी है, उसका वेदान्त, उसका जो मन्थन किया हुआ गो घृत है उसको अपनाते हुए उस यन्त्र पर विराजमान हो करके के हम प्रभु के द्वार पर जा सकते हैं। क्योंकि माता अपने प्यारे पुत्र को उसी काल तक अपने हृदय में धारण करती है जब तक बेटावह इसके अनुकूल है और जब वह प्रतिकूल हो जाता है !, प्रकृति के आवेशों में हो जाता है तो माता से दूर हो जाता है। मेरे प्यारे माता अपनी !ऋषिवर ! प्यारी लोरियों मे ं तभी उसको पान कराती है जब तक वह लोरियों का अधिकारी है उससे दूर चला जाता है तो माता अपने हृदय से दूर कर देती है। इसी प्रकार बेटा ! प्रभु मानव को उसी काल में अपनाता है जब वह उसके अनुकूल अपने आचरणों को बना लेता है उसके अनुकूल बन जाता है।

आज हमें विचारना है, अनुसन्धान करना है और अनुसन्धान की वेदी पर जाना है यह जगत सर्वत्र एक प्रकार की अनुसन्धान शाला है। गो मेघ यज्ञ करने को ही शाला है। इस पर प्रत्येक मानव यज्ञ करता है, अनुसन्धान करता है। मुनिवरों मैं आज अधिक ! चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। वाक्य उच्चारण करना हमें ें क्या है कि हमें अपने विरों को सुन्दर बनाना है। हे माँ तू कितनी भोली है, माँ तू कितनी पवित्र है। वह प्रभु

तेरे कितने निकट रहता है तेरे अंग संग रमण करता है। जिस समय माता के गर्भस्थल में पुत्र का निर्माण होता है उस समय निर्माणवेत्ता का मेरी भोली माता को ज्ञान नहीं होता मेरी भोली माता उस निर्माणवेत्ता से सुन्न रहती है। हे माँ यदि तू अपने प्यारे प्रभु को, अपने प्यारे प्रभु को, अपने निर्माण वेत्ता को जानने लगती है तो तुझे सर्वत्र ज्ञान हो जाता है तेरे गर्भस्थल से अज्ञानी पुत्र का जन्म नहीं होता। ज्ञान युक्त होता है, बलिष्ट होता है, उस समय ओज और तेज की उत्तम मात्र होती है। मेरे प्यारे मुझे !ऋषिवर ! स्मरण है जब महात्मा भुंजु मुनि महाराज की धर्मदेवी रेणकेतु ने अपनी घोषणा की को चाहती हूँ। परन्तु दोनों पुत्र !और यह कहा कि मैं अपने गर्भ से केवल दो पुत्रों सोम याग करने वाले हों। बेटासोम नाम चद्रमा का है !, सोम नाम समुद्र को कहा गया है। महात्मा भुंजु मुनि महाराज हमारे यहाँ मनु वंशज में पुरोहित होते थे मनु महाराज का जो वशंज था वह लगभग साढ़े सात हजार वंशजों ने राज्य किया। सबसे पूर्व शम्भु मनु हुए और उसके अद्त्वा मनु हुए और अद्त्वा मनु के पश्चात् सूर्य मनु हुए और सूर्य मनु के पचात रूभानकेतु मनु हुए और मुनिरो कातयाणी नाम के मनु हुए, घोषणा केतु नाम के मनु हुए विपरय नाम के मनु हुए सोमभूक नाम के मनु हुए चाक्राणी नाम के मनु हुए इस वंशज में। यह साढ़े सात हजार राजा हुए। मैं आज इनके वंशजों की चर्चा करने नहीं आया हूँ। इसी वंशलज में ज्ञानश्रुति मनु हुए और निर्मोहन केतु मनु हुए उसके पश्चात् मनु वंशलज का केतु वंशलज में परिवर्तन हो गया था। इसके बहुत पश्चात् काल में हमारे यहाँ विष्णु वंशलज आया और विष्णु वंशलज के पश्चात् सूर्यकेतु नाम का वंशलज था जो सूर्य वंशलज में ही उसका परिवर्तित हुआ। इसी प्रकार मानो चन्द्र वंशलज हुए उसके पश्चात् यहाँ रघु वंशलज आया। मेरे प्यारे मैं इस सम्बन्ध में ! साहित्य चर्चा अधिक प्रकट करने नहीं आया यह तो बहुत विशाल है मैं इस जगत की चर्चायें, साहित्यिक चर्चाओं का कल संक्षिप्त में परिचय दे सकूंगा। आज का हमारा वाक्य क्या कह रह है कि हमें अपने उस देव की महिमा का गुणगान गाना चाहिए मेरी भोली माता को बेटा यह ज्ञान नहीं होता कि कौन रचना कर रहा है नेत्रों की रचना ! कौन कर रहा है? मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इस मानव शरीर की रचना उस आत्मा के

साथ आती है। मेरे प्यारे जब मैं इन वाक्यों को विचारने लगता हूँ तो मेरा !ऋषिवर ! !हृदय गदगद होने लगता है। मैं अपने प्यारे प्रभु से यह कहा करता हूँ कि भगवन तू वास्तव में विज्ञान की धारा में हमें ले चल। हम प्रभु की इस विशालता में आ पहुंचे हैं। इस संसारको हम कर्मक्षेत्र भी उच्चारण कर सकते हैं। इसको हम नाना रूपों में वर्णन कर सकते हैं। हे मानवयदि तू अपने मानवीय जीवन को ऊँचा नहीं बनाएगा !, आत्मा तत्त्व को नहीं जान सकेगा तो तेरा संसार में क्या बनेगा? क्योंकि जो भी मानव जैसा कर्म करता है वैसा ही उसके समीप आता रहता है। कर्मों का विचार जब मेरे स्मरण आने लगता है तो मुझे अपना जीवन भी स्मरण आने लगता है। हमारा जीवन किस प्रकार की आभा में रमण करने वाला परन्तु देखो, उसकी गति। प्रभु की और कर्मों की गति कितनी गहन होती है बेटा इसी प्रकार हमें विचार विनिमय कर लेना ! चाहिएकि हम वास्तव में ऊँचा से ऊँचा कर्म करने वाले बनें। हम चन्द्रयान बनाएं परन्तु मानवता हमारे द्वार से कदापि न चली जाए। यदि मानवता चली गई तो इन यानों का कुछ नहीं बन पाता। इस सम्बन्ध में एक वार्त्ता मुझे स्मरण आ रही है। मैंने वह वार्त्ता कई काल में प्रकट भी की है। एक समय बिना समय के वृष्टि हुई। वृष्टि हो जाने के पश्चात् प्रजा में त्रहि त्रहि हो गई। सब प्रजा अपना एक समूह बनाकर के प्रजापति के द्वार पर जा पहुंची। प्रजाति ने प्रजाओं से कहा हे प्रजाओं आप मेरे द्वार पर किसलिए ! आई हो क्या कार्य है तुम्हारा? उन्होंने कहा भगवन हम इसलिए आए हैं कि बिना ! समय के वृष्टि हो गई है प्रजा का विनाश हो गया है प्रजा में त्रहि त्रहि हो गई है। उन्होंने कहा कि यह बिना समय वृष्टि कहाँ से हुई? उन्होंने कहा यह बिना समय के वृष्टि मेघ मण्डलों से हुई है। प्रजापति ने मेघ मण्डलों को निमन्त्रण दिया और उनसे कहा हे मेघोयह तुमने बिना समय के वृष्टि क्यों की !? मेघ मण्डलों ने कहा कि प्रभु इसमें हमारा कोई दोष नहीं। मेरे से तो भगवन महाराजा इन्द्र ने कहा था। अब ! परमपिता परमात्मा प्रजापति ने महाराज इन्द्र को निमन्त्रण दिया और इन्द्र से कहा हे तुमन !इन्द्रे बिना समय वृष्टि क्यों की? इन्द्र ने कहा भगवन इसमें मेरा कोई दोष ! मेरी पत्नी शची ने कहा था। अब प्रजापति ने शची को निमन्त्रण !नहीं है मेरे से तो प्रभु

दिया और शची से कहा हे शची यह तुमने बिना समय के वृष्टि क्यों कराई? उन्होंने कहा भगवन इसमें मेरा कोई दोष !नहीं है। मेरे से भगवन समुद्रों ने कहा था। अब ! प्रजापति ने समुद्रों को निमन्त्रण दिया। समुद्रों से बोले, हे समुद्रों यह तुमने बिना ! समय के वृष्टि क्यों की? इसका मूल कारण क्या है? उन्होंने कहा प्रभु इसमें मेरा ! कोई दोष नहीं है। मेरे से तो भगवन आदित्य ने कहाथा। अब प्रजापति ने आदित्य को निमन्त्रण दिया और आदित्य से कहा कि आदित्य? यह तुमने बिना समय के समुद्रों को तेज क्यों दिया? क्यों वृष्टि हुई? उन्होंने कहा भगवन इसमें मेरा कोई दोष नहीं मेरे ! से तो पृथ्वी ने कहा था। अब प्रजापति ने पृथ्वी को निमन्त्रण दिया और पृथ्वी से कहा कि हे पृथ्वीयह तुमने बिना समय के वृष्टि की क्यों इच्छा प्रकट की !? उस समय बेटा इसमें !इसमें मेरा कोई दोष नहीं है भगवन !पृथ्वी माता ने कहा कि हे भगवन ! तो प्रजा का ही दोष है क्योंकि प्रजा मे ऊपर पाप कर्म करती है जब यह पाप कर्म करने लगती है तब मैं पापों से सन जाती हूँ मेरी स्नान करने की इच्छा होती है वहीं मैं अपनी प्रेरणा प्रकट करती हूँ और वह प्रेरणा आदित्य को प्रकट करती हूँ आदित्य मेरी प्रेरणा को स्वीकार कर लेता है।

आदित्य नाम सूर्य का है। बेटा सूर्य की तीखी किरणों समुद्र को तपाती हैं और समुद्र ! से जलों का उत्थान होता है। जलों का उत्थान होते हुए उसी जल से मेघ मण्डल बना करते हैं और शची नाम विद्युत का है और इन्द्र नाम वायु का है जब मेघों और इन्द्रों का और शची तीनों का संघर्ष होता है तो धीमी वृष्टि होती है उस जल में मैं स्नान कर लेती हूँ और प्रजा अपने किए हुए पाप कर्मों का फल भोग लेती है।

तो मेरे प्यारे वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि यदि तूने अपनी !ऋषिवर ! का जो ब्रह्माण्ड है यह जो प्रकृतिवाद है वायुमण्डल !मानवता को त्याग दिया तो प्रभु है यह मानव के विचारों से इसका शोधन हुआ करता है क्योंकि विचारों से ही प्रकृतिवाद बना करता है। जिस प्रकार एक गृह में तो यज्ञ होता है पति पत्नी एक दूसरे से संतुष्ट होते हैं प्रसन्न रहते हैं, पिता और माता, माता और पुत्र उनकी प्रसन्नता रहती है और गृह में कलह रहता है। माता पिता में विरोध है पुत्र और माता में विरोध है वह जो

विरोध वाला ग्रह है वह नारकीय बन जाता है और जिसमें प्रसन्नता रहती है बेटा वह ! स्वर्ग बन जाता है। इसलिए मानव जब प्रसन्न रहता है उस मानव का शरीर ही स्वर्ग आज हमें अपने कर्मों को विचार विनिमय !ऋषिवर !में विचरण करता है। मेरे प्यारे करते हुए इस संसार सागरसे पार होना है। आज मेरे प्यारे महानन्द जी को समय ! समय तो समाप्त होता जा रहा है समय मानो !देना था संभवः गच्छन्ती रुद्रभागः बेटा दूर चला जा रहा है हम अपने मानव वाले कर्मों को करें। देवता बनने की हमें क्षमता होनी चाहिए। देवता बनने की प्रेरणा होनी चाहिए। वह प्रेरणा हमें कहाँ से प्राप्त होगी। वह मानव के हृदय से प्राप्त होगी और हृदय उस काल में पवित्र बनता है जब इन्द्रियों के विषयों को लेकर यह मन स्थित हो जाता है तो इस हृदय से सुन्दर सुन्दर प्रेरणाओं का जन्म होता रहता है। उन्हीं प्रेरणाओं के प्रकाश में पनपते रहते हैं प्रकाश आता रहता है जीवन आता रहता है और जीवन के आश्रित हो करके बेटा हम संसार की उत्तम ! आभाओं का दीर्घ दर्शन करने लगते हैं और उन्हीं को विचार विनिमय करते हम ज्ञान महानन्द जी केवल !और विज्ञान की आभाओं में भ्रमण करते रहते हैं। अब मेरे प्यारे दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः यमा भद्रानी विप्रजा गच्छतो रुद्रो व्यापकम मयाहा देवम् मेरे ! मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने अभी अभी !मेरे भद्र समाज !ऋषिमण्डल !पूज्यपाद गुरूदेव कुछ अमूल्य समय प्रदान किया। इस अमूल्य समय में आज हमे कुछ अधिक चर्चाएं प्रकट नहीं करनी हैक्योंकि पूज्यपाद गुरूदेव के समीप कोई वाक्य प्रकट करना मानो सूर्य और जुगनू का यह प्रमाण है। आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना प्रकट नहीं करना चाहता हूँ मेरे पूज्यपाद गुरूदेव अभी अभी आध्यात्मिकवाद और भौतिक विज्ञान दोनों का समन्वय करने के लिए अपनी घोषणा कर रहे थे और यह घोषणा आज कोई नवीन नहीं है परम्परा से यह घोषणा महापुरूषों के आँगन में पनपती रही है। यह घोषणा बुद्धिमानों के मस्तिष्क में रहती है। जो महान विचारक होते हैं, जिनका अन्तर्रात्मा ऊर्ध्वागति को प्राप्त होने वाला होता है, उनके आँगन में यह प्रेरणा और यह घोषणा पनपती रहती है जिनके आधार पर आज मैं भी अपने कुछ शब्दों का उच्चारण करने आ

पहुंचा हूँ। हमारे पूज्यपाद गुरूदेव का अमूल्य जीवन है जब मैं इन जीवनों का दृष्टिपात करने लगता है तो मुझे बड़ा एक हर्ष होता है। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव के मृत लोकीय शरीर साधारणतया क्रिया में दृष्टिपात करता हूँ तो मेरा हृदय किसी किसी काल में दुखित और किसी किसी काल में प्रसन्नता होती है। आज मैं उन वाक्यज्ञे। को प्रकट करने जा रहा हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव अभी अभी भीम और घटोत्कच्छ की चर्चाएं प्रकट कर रहे थे। आज इस पृथ्वी मण्डल में यह जो हमारी आकाशवाणी जा रही है यह उस स्थल पर जा रही है जहाँ महाराज भीम और घटोकच्छ दोनों विज्ञानशालाओं का निर्माण होता रहा है जिस स्थान पर इस वाणी का प्रादुर्भाव हो रहा है उसी से दूरी से ही मानव अवशेष और नाना प्रकार के पदग्रत ही उनके अवशेष हमें प्राप्त होते हैं। कल मेरे पूज्यपाद गुरूदेव को ही मुझे प्रकट कराना था परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने मुझे समय प्रदान नहीं किया। आज मैं यह उच्चारण करने के लिए तत्पर हूँ कि भीम और घटोत्कच्छ दोनों का ही यह स्थल था क्योंकि पांडवों की जो सेना थी उसके सेनापति के रूप में महाराजा घटोत्कच्छ रहते थे। महाभारत काल में जो हस्तिनापुर काल था उनकी विशाल सेनाएं रहती थी। नगर था। सोम कामुक केतु नाम का नगर कहलाया जाता था जहाँ विज्ञानशालाएं रहती थी जहाँ नाना प्रकार के वैज्ञानिक अस्त्रों शस्त्रों का निर्माण करते रहते थे। आज मुझे कोई अधिक चर्चा प्रकट नहीं करनी है। यह गंगा के पूर्वी भाग में ही अप्रत स्थान कहलाया जाता था जिसमें गंगा के जलों का अवशेष ले करके उनसे नाना प्रकार के अणुओं का निर्माण करते रहते थे। आपो ज्योति लेते हुए उसी के द्वारा यहाँ नाना प्रकार के अक्रीत और सुदानी रहती थी उसके पश्चात् महाभारत का काल हुआ। महाभारत के काल में वह अक्रीत सेनाएं सब उस महासंग्राम में समाप्त हो गई। घटोत्कच्छ भी संग्राम में समाप्त हो गए। परन्तु यहाँ भीम का बहुत समय तक अपना विशेष स्थान रहा हैं यह स्थान वह भी कहलाया जाता है जहाँ कुछ समय तक अपना विशेष स्थान रहा है। वह स्थान वह भी कहलाया जाता है जहाँ कुछ समय महाराज युधिष्ठिर का यज्ञ भी चलता रहता था। जब वन प्राप्त हो गया था तो उसके पश्चात् इस स्थल पर रहने का उन्हें सौभाग्य मिला। ऋषि मुनि आते और यज्ञ

चलता रहता था। ऋषि मुनियों ने जो महाराजा युधिष्ठिर महारानी द्रौपदी को बटलोही प्राप्त की थी वह इसी स्थान पर प्राप्त होती रही महात्मा दुर्वासा का यहीं आगमन हुआ था जब पाण्डवों को श्राप देने आने का उन्होंने अप्रत किया। उसके पश्चात् जब महाभारत का काल समाप्त हो गया था तो उन्होंने कुछ भवनों का निर्माण किया। पाण्डव काल में मुनिवरों यहाँ महाराजा युधिष्ठिर का न्यायालय भी रहा है। महाराजा अर्जुन और उनके ! अप्रीति भगवान कृष्ण इत्यादियों ने यहाँ विज्ञानशालाओं में अपने अवशेषों का निर्माण करना भी आरम्भ किया। उसके पश्चात् वह काल भी समाप्त हो गया। काल समाप्त हो जाने के पश्चात् यहाँ अभिमन्यु के पुत्र परीक्षत का भी न्यायालय रहा है उस काल के भी उनके राष्ट्र की नाना सेनाएं रही थी। उसके पश्चात् यह स्थली निरमानव बन गई यहाँ रमकेतु नाम की एक नगरी थी जिसमें क्षुधा प्राणी रमण करते थे। इसी प्रकार मानो उसके पश्चात् वह भूमि भी समाप्त हो गई। कुछ अवशेष रह गये। उसके पश्चात् देखो, जैन काल आया जैन काल में ही एक महामुनि ने यहाँ तपस्य की। तपस्वी बनने के पश्चात् उनके अवशेष के कारण उस समाज में यहाँ आज से 2 हजार वर्ष 3 पूर्व यहाँ एक देवालय का निर्माण किया उस देवालय में तपस्वी की मूर्ति को स्थापित किया स्थापित करने के पश्चात् यहाँ रेभकेतु, सुहागिन, मृदानी, केकरू आदि यह जैन हुए परन्तु इन्होंने इन मन्दिरों का देवलायों का निर्माण किया। निर्माण करने के पश्चात् यह अप्रेत निर्माण इसी प्रकार चलता रहा। यहाँ एक पुस्तकालय होता था जिसमें घटोत्कच्छ, भीम और महाराजा परीक्षत की हस्तलिखित पोथियां जिनमें नाना प्रकार का विज्ञान था, चन्द्रयान से ऊपर ले लोकों में जाना, यान बनाना उन यानों के निर्माण करने का कर्म था यह उस काल में जब देवालय बना। किसी कारण से जैन काल में साहित्य अग्नि के मुखारविन्द में समाप्त हो गया। इसी प्रकार अवशेषों की मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। मैं केवल भूमि का निर्णय देने के लिए आ पहुंचा हूँ यह वह स्थली है जब महारानी द्रौपदी का बटलोई में से अन्न पाना और वह भंडार समाप्त हो जाता था पांडवों को विपत्ति काल में अपने जीवन को व्यतीत करने का यहाँ सौभाग्य प्राप्त हुआ। गंगा से पार होकर के इस स्थली पर आकर के अपने

जीवन का कुछ भाग बिताया। इसके पश्चात् जब उनका एक साल वन के लिए रह गया वह बृहार पुरी को चले गये। बृहार पुरी इन्द्रप्रस्थ से दक्षिण भाग में मानी जाती है। जहाँ उन्होंने अपने जीवन को गुप्तचर रूपों से व्यतीत करने का प्रयास किया। यह तो वह स्थली है जहाँ मुझे भी, मेरे पूज्यपाद गुरूदेव को और भी नाना ऋषि मुनियों को उस काल में आने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है।

एक समय महाराजा घटोत्कच्छ ने यह कहा था और भीम ने कि हम यहाँ एक यज्ञ करना चाहते हैं। उस समय महाराजा व्यास, सौमकेतु शीर्य और महर्षि कुम्भ, महर्षि जमदगनि, शाममुनि ऋषि जिनको हमारे यहाँ सांख्य का वक्ता कपिल जी कहा जाता था उनका जब आगमन हुआ तो यहाँ सुन्दर सुन्दर यज्ञों के निर्माण हुए। ऐसे सुन्दर यज्ञ हुए कि माह तक यज्ञ प्रारम्भ रहा। उसी यज्ञ को इस प्रकार की ज्ञान वैज्ञान 6िक सुगन्धियों में परणित किया जिन सुगन्धियों को, जिन परमाणुओं को उन्होंने अपने में धारण करते हुए चन्द्रयान से ऊँचे मंगल यानों का निर्माण भी प्रायः इस यज्ञ के पश्चात् किया गया।

मुझे स्मरण है आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मुझे बड़ा आश्चर्य होता है जब मैं संसार की वार्त्ताओं को स्मरण करने लगता हूँ। इस यज्ञस्थली पर आज मैं यज्ञों को दृष्टिपात करता हूँ तो आज का मानव यह कहता है कि यज्ञ से कोई लाभ नहीं होता। जब यज्ञ का कर्मकाण्ड सुन्दर नहीं है, कर्म पवित्र नहीं है तो उसका फल भी क्या तुम्हें प्राप्त हो सकता है। किसी कार्य का फल उसी काल में प्राप्त होता है जब उसका कर्मकाण्ड सुन्दर होता है, महान होता है। आज मैं यज्ञों का विवरण करने नहीं जा रहा हूँ क्योंकि यज्ञों का विशेषज्ञ बुद्धिमता नहीं हूँ। यह उच्चारण अवश्य कर सकता हूँ कि ब्राह्मण को चाहिए कर्म काण्ड पवित्र होना चाहिए। कर्मकाण्ड यदि पवित्र नहीं करोगे तो पद्धति भ्रष्ट हो जाएगी, अपराध तुम्हारे द्वार पर आ जाएगा। इसलिए संसार में अपराधी मत बनो।

वाक्य उच्चारण करना केवल हमारा यह है कि आज का मानव चन्द्रमा में यात्र कर रहा है। आज के विज्ञान में आज का मानव यह कहता है कि हमारा विज्ञान बहुत विशाल

हो गया है। चन्द्रमा की नाना प्रकार की वनस्पतियां क्या वहाँ से पृथ्वी के पार्थिक रज लेकर पृथ्वी मण्डल तक आ पहुंचे। परन्तु उस काल में यह विज्ञान ऊँचा बनेगा जब चन्द्रमा का प्राणी इस पृथ्वी मण्डल पर यह उस यान में विराजमान हो करके आ जाएगा। मैं तो तभी जान सकूंगा। यहाँ संसार बहुत ऊँचा रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कल महाराज गरूड़ की और भी नाना वैज्ञानिकों की चर्चाएं प्रकट की हैं। आज का मानव चन्द्रमा की यात्र नहीं कर सका है। सोम केतु नाम का जो वैज्ञानिक है वह 120 समय पृथ्वीकी यात्र करके मंगल को चला गया है। यहाँ इस पृथ्वी मण्डल पर उनको उड़ान तश्तरियों के नाम से वर्णन किया गया। सोभागिनी, रे भव केतु, स्वाचिनी मानो उनका एक यन्त्र था जो समुद्र में अर्पित हो गया था। मानव को उसके कुछ अवशेष भी प्राप्त हुए। आज का जो विज्ञान है इसकी मैं चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ केवल वाक्य उच्चारण करना हमारे लिए यह है कि आज का जो वैज्ञानिक है, आज के मानव ने तो केवल यही निश्चय किया है कि चन्द्रमण्डल पर प्राणी नहीं रहते। अभ्ी तक यह राष्ट्र में कहाँ पहुंचे हैं जहाँ मंगलमय राष्ट्रों के राष्ट्रों का निर्माण है। यह अवश्य माना जाता है कि वहाँ जैसा पृथ्वी पर प्राणी रहता है ऐसा प्राणी चन्द्रमण्डल पर नहीं रहता। वहाँ जल और वायु की प्रधानता वाली प्राणी रहता है। आज का मानव कहता है कि चन्द्रमा पर हमारा जीवन क्यों सुरक्षित नहीं रहता। इसका मूल कारण यह है कि चन्द्रमण्डल का जो वायुमण्डल है वहाँ पार्थिक परमाणु वायु में अधिक रमण नहीं करते हैं इसलिए मानव शरीर वहाँ जीवित नहीं रह पाता और वह अपने जीवन को समाप्त कर देता है। यहाँ बहुत से वैज्ञानिक हुए। राजा रावण के काल में चन्द्रमा और पृथ्वी का जहाँ दोनों की आकर्षण शक्ति एक दूसरे को आकर्षित करती है वहाँ स्थानों के निर्माण किए गए। चन्द्रमण्डल का जो विज्ञान है वह आज से लगभग देखो, वर्ष 200 वर्ष ऊँचा 150 आगे वहाँ का विज्ञान है इस पृथ्वी मण्डल के विज्ञान से लगभग माना गया है। इसी प्रकार मंगल मण्डल का जो विज्ञान है इस पृथ्वी मण्डलके प्राणियों के विज्ञान से लगभग वर्ष आगे चला गया है। इसी प्रकार नाना प्रकार 50 के वैज्ञानिक नाना लोक लोकान्तरों में होते रहते हैं क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में नाना

पृथ्वियां हैं नाना मण्डल हैं नाना मंगल हैं नाना चन्द्रमा हैं नाना यहाँ ब्रह्मा माने गएं हैं। यह तो संसार है एक दूसरे लोक को जानने की मानव की प्रेरणा होती रहती है। एक दूसरे लोक के प्राणी एक दूसरे लोक के प्राणी को जानना चाहते हैं, निकट आना चाहते हैं परन्तु विज्ञान की वेदी इतनी विशाल है कि मानव इससे चकित रहता है। विज्ञान इतना विशालता में चला गया है। आज के संसार ने इस प्रकार के यन्त्रों का निर्माण किया है कि किस प्रकार के यन्त्रों का प्रहार होते ही राष्ट्र के राष्ट्र अग्नि के मुख में जा सकते हैं। परन्तु आज के विज्ञान ने कोई ऐसा यन्त्र नहीं बनाया जो राष्ट्र अग्नि के मुख में चला जाए वह यन्त्रों के द्वारा विज्ञान के द्वारा उसके जीवन की रक्षा हो सके। रक्षा का कोई साधन नहीं बना है।

भगवान राम के काल में रावण राज्य में जहाँ अग्ने अस्त्र, ब्रह्म अस्त्र थे वहाँ जल अस्त्र भी माने गएं हैं। जहाँ एक ने अग्ने अस्त्र का प्रहार किया दूसरे ने जल अस्त्र का प्रहार किया जिससे जल के परमाणु अग्नि के परमाणुओं को निगल जाते। जैसे अग्नि प्रदीप्त हो रही है परन्तु जल का प्रहार करने से अग्नि शान्त हो जाती है उसी प्रकार राजा रावण के राष्ट्र यन्त्र थे। राजा रावण के पुत्र इन्द्रजीत ने जिस समय एक अग्नोत केतु नाम के यन्त्र का प्रहार किया था तो ऊपर से अग्नि की वर्षा हो गयी। राम की सेना अग्नि में जब भस्म होने लगी तो उस समय भगवान राम ने एक जलास्त्र जो महर्षि भारद्वाज से उन्हें प्राप्त हुआ था, उसका प्रहार करते ही वह जो इन्द्रजीत के यन्त्र के जो परमाणु थे जलास्त्र का प्रहार करते ही अग्नि भी शान्त हो गई और वह अग्नि के परमाणुओं को वह आपो शस्त्र निगलता चला गया। इसी प्रकार विज्ञान हमारे यहाँ परम्परा से रहा है आज कोई नवीन नहीं है। आज का मानव यह कहता है कि केवल घोषणा ही घोषणा है। घोषणा नहीं है क्योंकि वेद में यह सर्वत्र विज्ञान की आभा प्राप्त होती है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने अभी अभी प्रकट कराया था कि संसार कर्म की वेदी पर आ जाना चाहिए, मानवता की वेदी पर रहना चाहिए। इस विज्ञान में मानवता को जो समाप्त कर देता है, भंयकर अग्नि के मुखारविन्द में परणित हो जाता है।

आज मैं कोई अधिक चर्चाएं प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। मैं केवल एक स्थान का कुछ

साहित्य प्रकट कर रहा था और वह साहित्य प्रकट करना केवल यही था कि नाना प्रकार की जहाँ विज्ञानशालाएं होती हैं अरे, वहाँ श्मशान भूमि भी होती हैं। जहाँ श्मशान भूमि होती हैं वहाँ देवालय भी होते हैं। यह तो संसार का विचार है और परिवर्तता प्रायः चलती रहती है इस संसार में। अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने अभी अभी हमें प्रकट कराते हुए कहा था कि संसार में मानवता की ऊँची घोषणा होनी चाहिए एक महान घोषणा होनी चाहिए आध्यात्मिकवाद और विज्ञानवाद दोनों का भौतिकवाद विज्ञानवाद का समन्वय हो जाना चाहिए। यह राष्ट्र और मानवता की रक्षा हो सकेगी अन्यथा यह संसार तो भंयकर अग्नि के मुख में जाने के लिए तत्पर हो रहा है। आज मुझे ऐसे परमाणु वायुमण्डल में भ्रमण करते दृष्टिपात आते हैं, मेरे मस्तिष्क को छूते रहते हैं जिससे मुझे यह प्रतीत होता है कि संसार में बहुत सूक्ष्म समय रह गया जब अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी। उस अग्नि का भयंकर परिणाम यह होगा कि जितना विज्ञानवाद है सब अग्नि के मुखारविन्द में भष्म हो जाएगा। आज मुझे भविष्य की चर्चा तो प्रकट नहीं करनी है परन्तु वाक्य उच्चारण करना यह है कि मैं संसार को सूक्ष्म शरीर के द्वारा दृष्टिपात करता रहता हूँ। मनोभावना अशुद्ध हो चुकी है समाज की। धर्म के प्रति मानव की दूरी बढ़ती चली जा रही है। मानव धर्म को न जान करके नाना प्रकार की अधर्मता को अपनाता हुआ अनुशासन को नष्ट करता हुआ इस समाज को, राष्ट्र को भ्रष्ट करता चला जा रहा है। राष्ट्र इसलिए भ्रष्ट है क्योंकि राष्ट्र में जो समाज है उस समाज ने धर्म और मानवता और परम्परा को नष्ट कर दिया है इसलिए यह अनुशासनहीनता है। अनुशासनहीनता होने के कारण यहाँ भंयकर अग्नि प्रदीप्त होने वाली है।

यह है आज का हमारा वाक्य। अधिक चर्चा प्रकट करना मेरा कर्त्तव्य नहीं है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने मुझे समय प्रदान किया मैं इस समय के अनुसार अपने वाक्यों को प्रकट करने चला हूँ। जिन स्थानों पर जहाँ जैनी देवालय है आज उसको जैन देवालय में भी उच्चारण कर सकता हूँ। वास्तव में वेद की सन्धि की जाए तो जैन नाम अहिंसा परमोधर्म को कहा जाता है। जहाँ अहिंसा परमोधर्म को पवित्र वेदी होती है उसी को

जैन समाज कहा जाता है। संसार में अहिंसा परमोधर्म की वेदी परम्परा से रही है इसीलिए उसको देवालय प्रवेश कहा जाता है। आज जिन महापुरूषों का देवालय है उनका जीवन अहिंसा परमोधर्म में रहा है, उनके जीवन की नाना घटनाएं मुझे स्मरण आती रहती है। एक समय जब वह तपस्या कर रहे थे उनके पगों पर अहा! उनकी कृतियों में क्योंकि प्रकृति का स्वभाव है। प्रकृति सभी की परीक्षा लेती है। जब तपस्वी के मुखारविन्दु के द्वार पर सर्पराज आ गए सर्पराज उनके चरणों के समीप। उनका जपन चल रहा है, तपस्या और निग्रह चल रहा है। आत्मनिग्रह वाला जो प्राणी होता हे वही तपस्वी होता है। देखो, इन्दियों का निग्रह ही अहिंसा परमोधर्म कहलाता गया है। सर्पराज आ गए चरणों के द्वार पर और उनके जपन जापन की क्रियाएं प्रारम्भ हैं जैसा उनका निग्रह है। महर्षि पातंजली जी ने कहा है कि चित्त वृत्ति निरोधय चित्त की वृत्तियों को निरोध करने का नाम योग कहलाया गया है, उसी का जापन चल रहा है परन्तु कितना महान तपस्वीमृगराज आ गएं उनके द्वारा !, उनके जपन को श्रवण कर रहे हैं। ऐसे महापुरूषों को मैं हृदय से प्रशंसा करता हूँ। उन तपस्वियों का वेद का विचार था, अहिंसा परमोधर्म वाला विचार है उनके द्वारा सदैव रमण करता रहता था। आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने इस सम्बन्ध में नहीं आया कि उनके मानने वाले कहाँ चले गये, किस हिंसा में चले गये। इस सम्बन्ध में चर्चा नहीं प्रकट करने आता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव को यह निर्णय कराना है कि वह स्थान जिस पर मेरे पूज्यपाद भी कजली वनों से आते थे और महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में भाग लेते थे आज उसी स्थान पर देवालय है। वहाँ अकृत्तम उस समय के अवशेष भी प्रायः प्राप्त होते रहते हैं ऐसा मेरा निश्चय रहा है दृष्टिपात भी किया गया है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गरुदेवः हास्य महानन्द !आज मेरे प्यारे !ऋषिवर !धन्य हो। मेरे प्यारे ..... जी ने कुछ चर्चायें की है। मानो उस पुरातन काल की चर्चायें की हैं मुझे तो इसका अधिक भान नहीं है जैसा इन्होंने कहा है। उस यज्ञ शाला को तो दृष्टिपात करने का तो प्रायः हमें भी सौभाग्य प्राप्त होता रहा है परन्तु उसका साहित्य कुछ प्रतीत नहीं।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने उस साहित्य की पुनारोक्ति की है। अभिप्राय यह कि हमें ! महानन्द जी ने कुछ !विज्ञान की वेदी पर महान और पवित्र बनना चाहिए। मेरे प्यारे एसा कहा है कि वायुमण्डल में ऐसे परमाणु हमारे हृदय को छूते हैं मानो जिससे यह प्रतीत होता है कि कुछ समय के पश्चात् इस संसार में अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। ऐसा यह उच्चारण कर रहे हैं। हो सकता है। परन्तु इस विचार में हमें भी अधिक नहीं जाना चाहिए। वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि हमें अपनी मानवता की रक्षा करनी है, अपने जीवन को सुन्दर बनाना है, वैदिक परम्परा को अपनाते हुए अपनी मानवीयता की रक्षा करते हुए इस संसार सागर से पार होना है। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। अच्छा भगवन् आनन्द मंगलम्। शान्ति। आंवला ! बरेली में महाराज परमेश्वर दयाल जी के निवास स्थान रात्रि कि बजे दिया हुआ 9 प्रवचन